वाणी-सरोवर

विश्व हिन्दी — सम्मेलनांक

जनवरी, १९७५

भुवन वाणी ट्रस्ट
लखनऊ-३

नन्दकुमार अवस्थी —प्रतिष्ठाता

[भुवन वाणी ट्रस्ट (पंजीकृत) लखनऊ का मुखपत्र (त्रैमासिक)]

वाणी सरोवर

प्रत्येक क्षेत्र प्रत्येक संत की बानी।
संपूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी ।।

संपादक—नन्दकुमार अवस्थी   प्रब०सं०—विनयकुमार अवस्थी

वर्ष—६   जनवरी, १९७५   अंक—१

विद्वत्-परिषद्

असमिया—प्रो. पी.सी. देव शर्मा, प्रिंसिपल, हिन्दी शिक्षक प्रशिक्षण म०वि० गौहाटी

अरबी—क़ारी मुहम्मद उस्मान सिद्दीक़ी, दारुल्-मुबल्लग़ीन, लखनऊ

ओड़िया—सुरेशचन्द्र नन्द, एम. ए. हिन्दी-ओड़िया, रा० भा० रत्न, कटक

अंग्रेज़ी—डॉ. एम. डी. पटियाल प्रि. उ. भा. धर्ममहाविद्या. बरेली

उर्दू—डॉ.स० असदअली एम.ए.,पीएच्. डी. सुश्री माजदा असद एम.ए. पीएच्.डी.

कन्नड—डॉ. वी. बी. पुत्रन, एम. ए., पीएच्. डी., बंबई

कश्मीरी—डॉ. शिबनकृष्ण रैणा, एम. ए., पीएच्. डी., नाथद्वारा (राज.)

गुजराती—डॉ.दीनेश हरिलाल भट्ट,एम.ए. पीएच्.डी., रा०भा० रत्न, बंबई

गुरुमुखी—डॉ० अमरसिंह खालसा, डा० आफ़ डिविनिटी (यू. एस. ए.) सरदार कृपालसिंह ऐबट, बी. काम., एल. एल. बी.

तमिऴ—प्रा० श्रीमती राजम् पिल्लै, एम.ए.हिन्दी,बम्बई
श्रीमती मीनाक्षी शेषन् ,, ,, ,,

तेलुगु—डॉ. भीमसेन 'निर्मल', एम. ए., पीएच्.डी.,रीडर,उस्मानिया वि.वि.

नेपाली—नन्दकुमार आमात्य
सुश्री तपेश्वरी देवी आमात्य

पारसी—सुश्री नाजू दारा देबू, 'दिलनवाज़'

फ़ारसी—स० मस्ऊदहसन रिज़्वी, भारत-सरकार-सम्मानित, भू.पू. (फ़ारसी) विभागाध्यक्ष लखनऊ वि० वि०

बंगला—प्रबोध मजुमदार

मराठी—प्रा० गजानन साठे,एम.ए.,मराठी-अंग्रेजी, हिन्दी, बी.टी., पीएच्. डी. (हिन्दी), बंबई

राजस्थानी—डॉ. सत्यनारायण स्वामी एम. ए. पीएच्. डी., बीकानेर

मलयाळम—के. ए. एस. अय्यर, भू. पू. उपकुलपति लख० वि० वि०

संस्कृत—बिहारीलाल शास्त्री,का.तीर्थ, बरेली
डॉ जनार्दन गंगाधर रटाटे, एम. ए., पीएच्. डी.

सिन्धी—प्रा० कु० पी. टी. आसवाणी, एम. ए., साहित्यरत्न
एन. के.केवलरामानी, सा.मं.सिं.स.

हिन्दी—कविराज कृष्णकुमार अवस्थी, आयुर्वेदाचार्य, बी. आई. एम. एस.

वार्षिक मूल्य १०·००   एक प्रति २·५०

विषय-सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
१	विद्वत्परिषद्	... ...	१
२	विषय-सूची	... ...	२
३	सम्पादकीय—विश्व हिन्दी सम्मेलन आदि···	...	३-१४
४	(फ़ारसी)	सिर्रे अक्बर—शा. दाराशिकोह कृत ५० उपनिषदों की व्याख्या (क्रमशः) अनुवादक—डॉ. हर्षनारायण एम.ए.,पीएच्.डी.	२३३-२४०
५	(मलयाळम)	कवि तुञ्चत्त् एळुत्तच्छन्कृत महाभारत (क्रमशः) सानु.लिप्य.—श्री के.ए.एस.अय्यर,भू.पू. उपकुलपति लख. वि.वि.	२४१-२४८
६	(बंगला)	कृत्तिवास रामायण लं.कां.—(क्रमशः) लिप्य.—नन्दकुमार अवस्थी, अनु.—श्री प्रबोध मजुमदार	२४१-२४८
७	(तमिळ)	तिरुक्कुरळ्-सानु० लिप्य०-श्रीमती राजम् पिल्लै,श्रीमती मीनाक्षी शेषन्; पद्य-भावानुवाद—नन्दकुमार अवस्थी (क्रमशः)	२०९-२१६
८	(उर्दू)	गुज़श्तः लखनऊ—मौ० अब्दुल हलीम शरर, (क्रमशः) लिप्यन्तरणकार—सुश्री कु० हुमैरा सिद्दीक़ी	८९-९६
९	(अरबी)	रियाज़ुस्सालिहीन (ज़ादें सफ़र)—(क्रमशः) लिप्यन्तरणकार—नन्दकुमार अवस्थी	२०१-२०८
१०	(ओड़िया)	वैदेहीश-विळास—उपेन्द्र भञ्ज कृत—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—श्री सुरेशचन्द्र नन्द, एम.ए., कटक	२१७-२२४
११	(मराठी)	श्रीराम-विजय—श्रीधर स्वामी कृत—(क्रमशः) अनु०—डॉ० गजानन साठे,पूना एम.ए.,अंग्रेज़ी-मराठी-हिन्दी	१७७-१८४
१२	(असमिया)	माधव कन्दली कृत रामायण—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—श्री प्रबोध मजुमदार	१५३-१६०
१३	(गुजराती)	गिरधर-रामायण—(क्रमशः) सानु. लिप्य०—डॉ. गजानन साठे,पूना,डॉ. दीनेश भट्ट,बंबई	१४५-१५२
१४	(तेलुगु)	रंगनाथ रामायण—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—डॉ० भीमसेन 'निर्मल',एम.ए.,पी.एच्. डी.	१३७-१४४
१५	(सिन्धी)	सामीअ जा सलोक—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—प्रा० कु० पी. आसवाणी, एम.ए. सा०र०	१३७-१४४
१६	(कन्नड)	पम्प रामायण—रच० अभिनव पम्प नागचन्द्र (क्रमशः) सानु. लिप्य.—डॉ. वी. बी. पुत्रन, एम.ए., पीएच्. डी.	१२१-१२८
१७	(नेपाली)	भानुभक्त-रामायण—(क्रमशः) अनु० श्री नन्दकुमार आमात्य	१२१-१२८
१८	(कश्मीरी)	रामावतार-चरित—(क्रमशः) सानु. लिप्य.—डॉ. शिबनकृष्ण रैणा एम. ए. पीएच्. डी.	१२९-१३६
१९	(गुरमुखी)	श्री गुरुग्रन्थ साहिब—हिन्दी व्याख्या सहित (क्रमशः) सरदार कृपालसिंह ऐबट, बी. काम, एल. एल. बी.	९७-१०४
२०	(संस्कृत)	श्रीरामचरितमानस—संस्कृत पद्यानुवाद सहित (क्रमशः) डॉ० जनार्दन गंगाधर रटाटे, एम. ए., पीएच्. डी.,सा.रत्न	९७-१०४
२१	(राजस्थानी)	पदम भगत कृत—रुकमणी-मंगळ (क्रमशः) डॉ० सत्यनारायण स्वामी, एम.ए., पीएच्. डी., बीकानेर	१७-२४

सत्य प्रेम करुणा

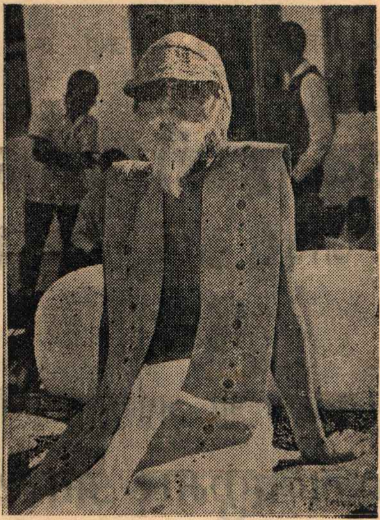

नाम माला

ॐ तत् सत् श्री नारायण तू पुरुषोत्तम गुरु तू
सिद्ध बुद्ध तू स्कंद विनायक सविता पावक तू
ब्रह्म मज्द तू यह्व शक्ति तू ईशु-पिता प्रभु तू
रुद्र विष्णु तू राम कृष्ण तू रहीम ताओ तू
वासुदेव गो-विश्वरूप तू चिदानंद हरि तू
अद्वितीय तू अकाल निर्मल आत्मलिंग शिव तू

(अखिल विश्व) देवनागरी लिपि प्रचार परिषद

७ जनवरी, १९७५ ई० को श्री विनोबा जी के सान्निध्य में श्री डॉ० श्रीमन्नारायण की अध्यक्षता में 'देवनागरी लिपि प्रचार परिषद' की स्थापना करके यह निर्णय लिया गया कि इस संस्था को सोसाइटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट xxi १८६० (पंजाब अमेंडमेंट एक्ट १९५७) की धारा २ के अनुसार, जो केन्द्र शासित राज्य दिल्ली को भी लागू है, के अन्तर्गत पञ्जीकृत कराया जाय। तत्सम्बन्धी विधान और नियमावली भी निर्णीत होकर पारित की गई।

"देवनागरी को सर्वनागरी बनाइये।"

—बाबा का जय जगत

(नागपुर, दिनांक १३ जनवरी, १९७५ ई०)

विश्व हिन्दी सम्मेलन

अत्यंत आदर और गौरव के साथ

हिन्दी

भाषा एवं साहित्य की अमूल्य सेवाओं के लिए

पं० नन्दकुमार अवस्थी

को सन्मानित कर उनके माध्यम से

सांस्कृतिक-समन्वय कार्य में लगे

भाषा के समस्त साहित्यकारों एवं नागरिकों के प्रति

अपनी श्रद्धा एवं स्नेह की आदरांजलि

अर्पण करता है ।

(महामहिम उपराष्ट्रपति श्री बी० डी० जत्ती द्वारा प्रदत्त)

१९४७ ई० से देवनागरी लिपि-प्रचार और भाषाई सेतुकरण के प्रति लगातार श्रम के फलस्वरूप, अकिञ्चन को, यह प्रसाद-रूप में शिरोधार्य है। जहाँ तक सम्मान का सम्बन्ध है, वह हमारी विद्वत्-परिषद के सहयोगी विद्वान् सदस्यों, उत्तरप्रदेश के नागरिक और शासन, तथा समस्त निष्ठावान् देवनागरी-जगत् को है। हमारे मूर्धन्य संरक्षक, जिनका परिचय कभी और दिया जायगा, उनका वरद हस्त मेरी सेवाओं के लिए प्रमुख आधार रहा है, और है।

—नन्दकुमार अवस्थी

विश्व-हिन्दी सम्मेलन !

सम्मेलन की सफलता

१० जनवरी को प्रधानमंत्री द्वारा विश्व हिन्दी सम्मेलन के उद्घाटन के उपरांत १३ तारीख तक— चारो दिवस भोजन-विश्राम के समय को छोड़ कर, जगमग और गठे हुए नाना कार्यक्रम हुए। सम्भ्रान्त जनों के भाषण, विदेशी अभ्यागतों के हिन्दी के प्रति उद्गार, परम्परा के विद्वान् पं० कमलापति जी त्रिपाठी केन्द्रीय मंत्री की ओजस्वी वक्तृता, मुग्धकारी सांस्कृतिक कार्यक्रम, यहाँ तक कि समारोह के बाद तक यत्र-तत्र चलते रहे कवि-सम्मेलन— सब ओर अद्भुत चहल-पहल रही। १३ ता० को विद्वानों को उपराष्ट्रपति द्वारा सम्मानित भी किया गया। उसके उपरांत संत ज्ञानेश्वर के 'अभंग' (मराठी भजन) के गायन के साथ यह सफल सम्मेलन सम्पन्न हुआ। हिन्दी, विश्व-सांस्कृतिक-संगठन (यूनेस्को) में मान्य-पद पर आसीन हुई।

विशाल अभ्यागतों और अतिथियों का जमघट होने के बावजूद प्रबंध की कुशलता अति प्रशंसनीय रही। कार्यकर्ता, स्वयंसेवक और स्वयं-सेविकाएँ—सब विनम्रता और तत्परता से अपने-अपने कर्तव्य पर सदैव प्रस्तुत। इतने बड़े शानदार विश्व-सम्मेलन की सफलता का प्रमुख श्रेय स्वतंत्रता-संग्राम के पुराने सेनानी और विद्वान्, श्री अनन्त गोपाल शेवड़े जी को है। जितना विराट् आयोजन, उतनी ही सम्यक् व्यवस्था— यह नागपुर टाइम्स के यशस्वी सम्पादक श्री शेवड़े जी में मूर्तिमान् थी। जितने शांत और सौम्य, उतने ही दृढ़ और प्रत्युत्पन्नमति। उनको जितना साधुवाद दिया जाय, स्वल्प है। नागपुर टाइम्स-परिवार के दूसरे वरिष्ठ सदस्य थे—

श्री अनन्त गोपाल शेवड़े

श्री गोविन्द माधव देशपाण्डे—

—जिनके ऊपर श्री शेवड़े जी की ओर से सम्मेलन की आद्योपान्त व्यवस्था का भार था। महीनों पहले से व्यस्त! जितने व्यस्त उतने ही शान्त और संतुलित; उत्तरोत्तर श्रम पर उत्तरोत्तर प्रसन्न मुद्रा और विनोदप्रियता। हवासगुम हो जाने की हालत में पूरे बाहोश जी० एम० (जिस नाम से वे प्रख्यात हैं) की एक दुर्दशा को याद करके आज भी हँसी आती है। एक सपत्नीक अभ्यागत के लिए फ़ोन द्वारा सारा

समुचित प्रबन्ध कर दिये जाने के बावजूद, उनके बार-बार के आग्रह पर पर्चियाँ लिख देने के बाद, यह फ़र्माइश हुई कि "कृपया दस मिनट हमारी धर्मपत्नी जी को नागपुर टाइम्स के प्रेस की सैर करा दीजिये; उनकी बड़ी इच्छा है"। ९ तारीख का धुआँधार काम, किन्तु जी० एम० ने उनको सैर करा ही दी। सब प्रसन्न, सब का प्रबंध। 'नागपुर टाइम्स परिवार' की ये भी एक अलौकिक प्रतिभा हैं। यह भी इस बार ही मालूम हुआ कि 'भुवन वाणी ट्रस्ट' से प्रकाशित बंगला कृत्तिवास रामायण के हिन्दी अनुवाद को लेकर कुछ ही महीनों में उन्होंने स्वान्तः सुखाय उसका मराठी अनुवाद कर डाला।

भुवन वाणी ट्रस्ट का योगदान

भुवन वाणी ट्रस्ट का अरबी, फ़ारसी, संस्कृत, उर्दू, बँगला, असमिया, ओड़िया, नेपाली, कश्मीरी, गुरुमुखी, राजस्थानी, सिन्धी, गुजराती, मराठी, तेलुगु, तमिळ, कन्नड, मलयाळम आदि के विशाल ग्रन्थों के देवनागरी लिपि में मूल पाठ सहित हिन्दी अनुवाद को देखकर हज़ारों व्यक्तियों ने सराहना की। गांधी स्मारक निधि, दिल्ली द्वारा सज्जित देवनागरी लिपि के कक्ष में ट्रस्ट के लिप्यन्तरण-कार्य के प्रदर्शन कुतूहल और अत्यन्त आकर्षण की वस्तु थे।

ट्रस्ट की ओर से मुख्यन्यासी सभापति, न्यासी उपमंत्री, और विविध भाषाओं की देवनागरी लिपि में अनुपलब्ध ध्वनियों को देवनागरी अक्षरों में गढ़ लेने में सिद्धहस्त कलाकार—ये तीन व्यक्ति लखनऊ से सम्मेलन में शरीक हुए। पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी और माननीय पं० कमलापति जी त्रिपाठी, मंत्री भारत सरकार, सम्मेलन के विशेष अभ्यागत थे। संस्था के ये संरक्षक-महान् हैं। इनकी उपस्थिति ने हमें अतीव गौरव प्रदान किया। भुवन वाणी ट्रस्ट (वाणी-सरोवर) की विद्वत्-परिषद के विद्वान् सदस्य महाराष्ट्र से श्री डॉ० नरसिंह गजानन साठे, आन्ध्र से डॉ० भीमसेन निर्मल, ओड़ीसा से श्री सुरेशचन्द्र नन्द और दिल्ली से डॉ० सय्यद असद अली और सुश्री डॉ० माजदा असद की उपस्थिति से भुवन वाणी ट्रस्ट का अच्छा ख़ासा परिवार विश्व हिन्दी सम्मेलन में भरा-पुरा रहा। मुख्यन्यासी सभापति (नन्दकुमार अवस्थी) को सम्मेलन की ओर से सन् १९४७ ई० से उनकी देवनागरी के प्रति सेवाओं के लिए सम्मानपत्र प्राप्त हुआ। इस प्रकार ट्रस्ट के कार्यों ने देवनागरी लिपि का देश-विदेश-व्यापी प्रचार किया।

नागपुर की एक हरदिल-अज़ीज़ शख़सीयत

विश्व हिन्दी सम्मेलन में सम्मिलित होने के अवसर हम अपने मेज़बान (आतिथेय) श्री अब्दुल करीम पारिख (पारिख टिम्बर मर्चेण्ट)

की चर्चा करना कर्तव्य समझते हैं। नागपुर के एक प्रमुख सम्पन्न व्यापारी होते हुए भी नगर के प्रत्येक सार्वजनिक कार्य में उनका योग-दान रहता है।

सम्मेलन में भी उनकी अच्छी-ख़ासी उपस्थिति रही। ग़रीब-अमीर, सियासी-समाजी, प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति से मेलजोल और शिष्टाचार—यह उनकी लोकप्रियता का स्वरूप है। आदमी बेलौस और साफ़, लेकिन ज़बान शीरीं; तल्ख़ का नाम नहीं। हमारे पवनार (वर्धा) और नागपुर पहुँचने से पहले २ जनवरी से ही, हमारे आवास के लिए हमारे अनुरूप एक अति सुन्दर लाज में व्यवस्था कर रखी थी; और नागपुर में ठहरने तक उनकी बड़ी देख-रेख रही। हमारे वे लगभग २५ वर्ष के पुराने मित्र हैं। मौजूदा चल रहे हमारे क़ौरानिक कोश में उनका बड़ा सहयोग है। हम, 'भुवन वाणी ट्रस्ट' के परिवार-सहित उनके आभारी हैं।

विश्व हिन्दी विद्यापीठ

१४ जनवरी को, 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा' के केन्द्र-स्थल पर केन्द्रीय मंत्री श्री कमलापति त्रिपाठी जी की अध्यक्षता में केन्द्रीय मंत्री श्री जगजीवनराम जी द्वारा 'विश्व हिन्दी विद्यापीठ' का शिलान्यास हुआ। 'रामकथा' के प्रख्यात संकलनकर्ता श्री कामिल बुल्के ने गोस्वामी तुलसीदास की प्रतिमा का अनावरण किया। परिषद के अनन्य कार्यकर्ता **श्री रामेश्वर दयाल दुबे जी** ने इस समारोह का बड़ी निष्ठा और कुशलता से सञ्चालन किया। गाँधी स्मारक निधि के अध्यक्ष श्री डॉ० श्रीमन्नारायण ने 'विश्व हिन्दी विद्यापीठ' की स्थापना को 'विश्व हिन्दी सम्मेलन' की सब से बड़ी उपलब्धि बताई। लगभग ४० वर्षों से राष्ट्रभाषा के प्रसार में रत, 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' ने अब अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्यक्षेत्र की नीवँ डाल कर अपने सतत तप के अनुरूप ही कार्य किया है। सचमुच यह अनुपम उपलब्धि है।

हमारा प्रसारित वक्तव्य

नागपुर एक कीर्तिस्तम्भ !

नागपुर भारत का केन्द्रविन्दु है। तथाकथित उत्तर और दक्षिण-भारत का संगमस्थल है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी नागपुर, राष्ट्र में

पुरातनकाल से कीर्तिमान् है। किन्तु राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के तत्वावधान में आयोजित आज के 'विश्व-हिन्दी सम्मेलन' ने नागपुर को अन्तर्राष्ट्रीय आकर्षण का विषय बना दिया है। विदेशों से अनेक हिन्दी और अहिन्दीभाषी विद्वानों ने सम्मेलन में पधार कर हमारे राष्ट्र को गौरवान्वित किया। और देश में तो दूर-दूर से, प्रत्येक क्षेत्र से, असंख्य विद्वान्, साहित्यकार, पत्रकार और मर्मज्ञ-जन, समूह के समूह, अत्यन्त उत्साह और कुतूहल के साथ नागपुर में एकत्रित हुए।

हर्षोल्लास

मारीशस के प्रधानमंत्री श्री शिवसागर रामगुलाम की अध्यक्षता में स्वयं भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने सम्मेलन का उद्घाटन किया। हिन्दी, भारत की अनेक भाषाओं में से एक भाषा है; अखिल देश की वह राष्ट्रभाषा है अथवा सम्पर्क-भाषा है, इसमें भी कोई-कोई मत-भेद करने लगते हैं। उस हिन्दी की आज विश्व में चर्चा है; हिन्दी की सार्वभौम चर्चा है। इससे हिन्दी-भाषियों के मन में हर्षोल्लास की लहरों का उमड़ना स्वाभाविक ही है।

उल्लास में विकार, जोखिम और सावधानी

उल्लास का अतिरेक ही उन्माद है। हमारे जैसे जन-सामान्य के मन में विकारों का उठना अनहोनी बात नहीं। वे विकार क्या हैं? "हमारी हिन्दी सारे देश में सर्वसक्षम है। सभी भाषाई क्षेत्रों में वह प्रभुसत्ता-सम्पन्न है। हिन्दी की राष्ट्रव्यापकता को चुनौती देनेवाले आज देखें कि भारत के मध्यविन्दु से हिन्दी की छटा न केवल स्वदेश में सब ओर, वरन् विदेशों तक में छा रही है, आदि आदि।" ऐसे विकारों के शिकार हम लोगों में जो उदार भी हैं, वे भी इतना तो गर्व कर ही सकते हैं कि "योरुप, एशिया आदि देशों में भी हिन्दी-भाषाभाषी प्रचुर संख्या में वर्तमान् हैं, वे आज अपनी मातृभाषा-भूमि में, हुजूम के हुजूम आकर हिन्दी के झण्डे के नीचे एकत्र हो रहे हैं। हमारी हिन्दी, विश्व-हिन्दी के रूप में प्रकट हो रही है। सारे धरातल पर हमारी हिन्दी की चर्चा है"।

ऐसे विकारों के मोहान्धकार में आवृत हम जैसे लोगों को, प्रत्यक्ष जगमगाते इस ज्योतिर्मय तथ्य की ओर ध्यान देना चाहिये कि इस 'विश्व हिन्दी सम्मेलन' के अनुष्ठान का आद्योपांत श्रेय तथाकथित अहिन्दीभाषी क्षेत्रों को है। उनके ही प्रयास और पहल से भाषा-विभेद की कृत्रिम दीवार ढह रही है, यह देखकर तथाकथित हम हिन्दीभाषियों को सम्यक् रूप से विचार करना चाहिए कि "हिन्दी का वास्तविक स्वरूप क्या है? उत्तरभारत के कुछ क्षेत्रों में बोली जानेवाली सीमित भाषा का नाम ही

हिन्दी है, अथवा अखिल हिन्द की हिन्दी और विश्व-हिन्दी का भी कोई स्वरूप है ? यदि है, अथवा वाञ्छनीय है, तो आइये, उस 'विश्व-हिन्दी' की छबि का दर्शन करें "।

विश्वहिन्दी की प्रतिमा का आवाहन

विश्वहिन्दी की आराध्य-प्रतिमा है 'देवनागरी लिपि'! वह भी 'परिवर्धित देवनागरी लिपि'। अन्य लिपियों के वे स्वर और व्यञ्जन जो देवनागरी लिपि में अनुपलब्ध हैं उनको सिरजकर, उस परिवर्धित देवनागरी लिपि को, भारत की समस्त भाषाओं में वर्तमान अनुपम और प्रचुर वाङ्मय और सत्साहित्य को लिप्यन्तरित और अनूदित करने, उनके सीमित क्षेत्रीय दायरे से बढ़ाकर सारे देश में पहुँचाने, और फिर शनैः शनैः विश्व की प्रमुख भाषाओं के पुष्ट साहित्य का भी सानुवाद लिप्यन्तरण प्रस्तुत करने के योग्य बनाने पर ही समझिये कि हिन्दी, सारे हिन्द की हिन्दी, और विश्व में आदर पानेवाली हिन्दी की पुनीत प्रतिमा का आवाहन हुआ।

प्रतिमा का आभरण और शृंगार

देश-काल-पात्र के अनुसार एक ही उपास्य प्रतिमा के रूप, आभरण और साज-सज्जा में भेद-विभेद होते हैं; किन्तु "अनेक-रूप-रूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे!"। स्थानीय उन भेदों के बावजूद, उन सभी प्रतिमाओं के प्रति आस्था-अभ्यर्थना होती है। इसी प्रकार उस परिवर्धित देवनागरी लिपि के समान ही अन्य-अन्य लिपियाँ भी समानपूज्या हैं। अच्छा हो कि वे भी अपने में अनुपलब्ध देवनागरी लिपि के स्वर-व्यंजनों को अपनी लिपि में शामिल करके स्वक्षेत्रीय पूज्य प्रतिमा को और अधिक समलंकृत करें। अज्ञान की उपज—इस भाषाई कृत्रिम झगड़े को भूलकर, एक रुचिकर सत्य सुनिये। देश में जब-तब उर्दू-हिन्दी का विवाद सुनाई देता है। उर्दू लिपि की जननी अरबी लिपि में अट्ठाईस मात्र अक्षर हैं। अरब से बढ़कर ईरान आने पर, वहाँ की प्रचलित च, प, ज़ आदि ध्वनियों को अपने अरबी साँचे में ढाला। ईरान से बढ़कर भारत आने पर, यहाँ की अनिवार्य ध्वनियाँ ट, ड, ड़ आदि को भी सामान्य चिह्नों से सँजोकर अरबी ढाँचे के कलेवर में वृद्धि की। और सिन्धुप्रदेश में तो, उर्दू तक में अनुपलब्ध ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, भ, ञ, ङ, ण जैसी ध्वनियों को भी अरबी-स्वरूप देकर अपना लिया गया। रूढ़ि और भाषाकुलाभिमान के लिए प्रख्यात अरबी लिपि ने भी विदेशी ध्वनियों को आत्मसात् करने में अपना कल्याण समझा। लिपि-परिवर्धन तो भाषा की धनाढ्यता और सम्पन्नता का लक्षण है। दूसरा उदाहरण तमिळ लिपि का है। तमिळ-जन पर हिन्दी-विरोध का आरोप लगानेवाले, और कुछ भटकाये गये स्वयं

तमिळजन भी—इन दोनों के लिए एक सुन्दर स्मृति है। तमिळ लिपि में प्रत्येक वर्ग के प्रथम और अन्तिम, क, ङ; च, ञ; इस प्रकार ही अक्षर होते हैं। किन्तु आज से पचास-साठ वर्ष पूर्व तक वहाँ एक ग्रन्थ-लिपि प्रचलित थी। कुम्भकोणम आदि में उसके बड़े-बड़े मुद्रणालय थे, जहाँ संस्कृत के छोटे से छोटे स्तोत्रों से लेकर बृहद् पुराण आदि उस ग्रन्थलिपि में प्रकाशित होते थे। उस ग्रन्थ-लिपि में देवनागरी लिपि की पूरी वर्णमाला क, ख, ग, घ, ङ आदि तमिळ-वत् रूपों में सिरजी गई थी। यह तमिळ-भाषियों का ही देवनागरी के प्रति सौहार्द और आकर्षण था; और फल-स्वरूप तमिळ-लिपि और तमिळ-साहित्य की भी अभिवृद्धि थी। तात्पर्य यह कि लिपि में, जितनी ही अधिक ध्वनियों का हम सन्निवेश कर लेंगे, हमारी लिपि की प्रतिमा का रूप भी उतना ही अलंकृत और विश्वविमोहन होगा।

प्रतिमा की वाणी

भारत में प्रचलित अमरभारती की कश्मीरी, नेपाली, गुरुमुखी, बंगाली, असमिया, ओड़िया, राजस्थानी, सिन्धी, गुजराती, मराठी, मणिपुरी, कन्नड, तेलुगु, मलयाळम, तमिळ, उर्दू, अरबी, फ़ारसी, संस्कृत, पाली, और शुभ समय उदय होने पर अन्य विदेशी भाषाओं की विशिष्ट ध्वनियों को देवनागरी लिपि के रूप में सिरजना, मानो 'विश्व-हिन्दी' की स्वर्णप्रतिमा में हीरा, नीलम, पन्ना, पुखराज आदि जटित करने के समान है। उस परिवर्धित देवनागरी लिपि की सरस्वती-प्रतिमा की वीणा से सारे हिन्द की, और समय पाकर सारे विश्व की वाणी सम-स्वर में झङ्कृत होगी। इसके लिए हम हिन्दीवालों को, नतमस्तक होकर सब भाषाओं का उपकार मानना चाहिए।

जहाँ तक उत्तरभारतीय भाषाओं का प्रश्न है, देवनागरी लिपि में प्रस्तुत होते ही वे एक-दूसरे के नितांत समीप प्रतीत होती हैं। सौ-दो-सौ वर्ष में जिस प्रकार हिन्दी में आज की खड़ी बोली अपने पूर्ववर्ती हिन्दी-रूपों से बदल कर आई है, उसी भाँति अन्य भारतीय भाषाओं ने भी अपने प्राचीन रूप को बदल दिया है। सौ-दो-सौ वर्ष पूर्व की गुरुमुखी, सिन्धी आदि को, हिन्दी-भाषी, आज के सिन्धी अथवा पञ्जाबी बन्धु की अपेक्षा, अधिक सरलता से समझ सकता है। ये तो सबही अमरभारती की शाखाएँ हैं। विदेशी भाषाओं में पराश्रित, पैरासाइट; शकर, शर्करा, सक्कर, सुगर; श्री और सर; (अरबी) हुत्म: और आहुति; हिन्दी में अरबी के घुलमिल कर एक होनेवाले सहस्रों शब्द, जैसे हलवा, हलवाई, लाला, साइत (मुहूर्त), मना करना, फिसलना आदि एकात्म्य के ही प्रतीक हैं। दक्षिणी भाषाएँ भी, भारत की धार्मिक और सांस्कृतिक समानता और संस्कृत-भाषा की सारे देश में व्यापकता से प्रभावित होने के फलस्वरूप हमसे ग़ैर नहीं

रहतीं। —इस प्रकार नीर-क्षीर की अनेक मिसालें हैं। अस्तु। विविध भाषाओं के विशिष्ट ध्वनि-रत्नों से अलंकृत परिवर्धित देवनागरी की विशाल प्रतिमा से प्रस्फुटित-लिप्यन्तरित नाना भाषाई ग्रंथ ही विश्वहिन्दी की वाणी है। विश्वहिन्दी का लक्ष्य होना चाहिये—

'प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक संत की बानी।
सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी॥' (भु. वा. ट्र.)

उपासना—भाषाओं का घुलन-मिलन और बोलचाल

'परिवर्धित देवनागरी' लिपि में सानुवाद लिप्यन्तरित विविध भाषाई ग्रन्थों में उपलब्ध पर्याप्त समान-शब्दावली, अध्यवसायी का कुछ श्रम, और आरंभ में, जनसाधारण में प्रायः सुपरिचित ऐतिहासिक और सदाचार-ग्रन्थों का लिप्यन्तरण—ये एक-दूसरे की भाषा को टूटा-फूटा बोलने-समझने में सहायक होंगे। निबन्ध, अपरिचित कथानकवाले नवीन उपन्यास आदि आरंभ में उपयुक्त नहीं। शुरू में प्रत्येक भारतीय को अपनी मातृ-भाषा के अतिरिक्त देवनागरी लिपि के माध्यम से एकाधिक अन्यक्षेत्रीय भाषाओं को कम से कम टूटा-फूटा बोलने-समझने का ज्ञान—यही विश्व-हिन्दी की प्रतिमा की अर्चना-उपासना है।

चारो-धाम

एक बंगाली महिला निःसंकोच कहती है, "बाबा! अपने तो आपनार बाड़ी जुरूर जुरूर आयेगा"। —यह वाक्य लिंग, वचन, पुरुष, सब प्रकार से अशुद्ध है। फिर भी बोलने में उस भद्र महिला को न तो संकोच है, न सुननेवाले की ओर से उसका उपहास! यह हुई 'बंगाली हिन्दी' इसी प्रकार मद्रासी, पंजाबी आदि भी विश्वहिन्दी के अनेक रूप होंगे। भारत के किसी भी क्षेत्र में जाकर कुछ अपनी, कुछ उसकी बोली में कह, सुन, समझ लेना—यही भाषाई चारोधाम की यात्रा है। परस्पर घुल-मिल जाना—यही भाषाई प्रतिमा का नैवेद्य और प्रसाद है।

क्या यह संभव है? क्या यह निरा थोथा आदर्श नहीं है?

नहीं। हिन्दी तो बड़ी लचीली भाषा है। चन्द बरदाई से लेकर आधुनिक युग तक और आज भी पदे-पदे नाना रूपों में बदलती और बोली जाती रही है। हिन्दी की बात छोड़िये, संस्कृत का उदाहरण लीजिये। पाणिनि के संस्कार-पाश से अनुशासित और आदिकवि वालमीकि से लेकर आज, और भावी पीढ़ियों तक में अपरिवर्तनशील संस्कृत भाषा को भी

समय ने प्रभावित किया है। विदेशी शब्दों और विदेशी शैली को अपनाने की ओर वह देव-भाषा भी उन्मुख हुई है।

'खेटकौतुकम्' नामक ज्योतिष-संग्रह की आज भी मान्यता और प्रतिष्ठा है। उसमें अरबी-फ़ारसी से संस्कृत का संगम अवलोकन कीजिये।

"हमल् आफ़ताबो, वृषे माहताबो, यदा मुश्तरी केन्द्रखाने त्रिकोणे।
भवेन्मानवो दौलतो लश्कराढ्यो, वृहत्साहिबी तस्य खूबी कमालः॥
यदा चश्मकोरा भवेद् हफ़्तखाने, शशी दोस्तखाने मिरीखोऽथ नक्रे।
सूरत् कमालो नरो दीनदारो ग़नीमप्रहन्ता जहानप्रचण्डः॥
यदा मुश्तरी केन्द्रखाने त्रिकोणे, यदा वक़्तखाने रिपौ आफ़ताबः।
अतारिद् विलग्ने नरो बख़्तपूर्णस्तदा दीनदारोऽथवा बादशाहः॥

यह तो हुई भाषा की बात। अब शैली का दर्शन कीजिए। प्राचीन अरब में गद्य की भी इस प्रकार रचना की जाती थी कि वाक्य पर वाक्य और उनके शब्दों में अन्त्यानुप्रास और उपान्त्यानुप्रास का लड़ीबंद अलंकार लाया जाता था। अरब लोगों को ज्ञान देने के उद्देश्य से क़ुर्आन शरीफ़ की भाषा भी उसी शैली में अवतरित है। ५० उपनिषदों के फ़ारसी-व्याख्या-कार शाहज़ादः दाराशिकोह ने अपने गुरुवर्य को संस्कृत में एक लंबा पत्र इसी अरबी शैली में लिखा था। उसकी दो-चार पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत हैं—

स्वस्ति श्रीमत्परब्रह्मज्ञानध्याननिधान - प्राप्त निरुपमान-परमानंदमान - धरणीधर-प्रधान - बाणसंधानपार्थसमान - समुद्यदविद्युद्विद्योतमानकृपाण - गुरुगंधर्वगीयमानयशो - वितानकृतविद्युद्वरसमान - प्रयाणमात्रनिर्जितवैरिप्रतान - भूमीसंतान-सुरत्राण - गीर्वाण - वृंदवंद्यमान गुणसंविधान - क्षितिरक्षानिधान - दत्तनानादान - विहितसाधुसमाधान - चतुर्दशविद्यानिधान॥ आदि आदि।

यह क़ुर्आन की तद्वत् (मुसज्जअ) शैली में, संस्कृत का दृष्टांत है। जनसाधारण में भी 'भाषा पटवारियान' चल पड़ी थी। फ़ारसी में 'ज़न' स्त्रीको कहते हैं। किसी ने खेत में एक व्यक्ति से समीपस्थ स्त्री की ओर संकेत करके पूछा, "ए ज़न ककरा बाशद (यह किसकी पत्नी है ?)"। उत्तर मिला, "बन्दम हस (मेरी है)"।

व्यर्थ की दुर्बलता

हिन्दी को राष्ट्रभाषा अथवा सम्पर्क-भाषा माननेवाले नेकनीयत लोग भी अपनी निरपेक्षता की सफ़ाई देने और तुष्टीकरण के फेर में पड़ कर हिन्दी के सरलीकरण पर ज़ोर देने लगते हैं। यह अपने मन की ही दुर्बलता है। विश्व में साठ हज़ार लोगों में बोली जानेवाली हिन्दी की भाषा के रूप को एक विशिष्ट सीमा में बाँधा नहीं जा सकता।

देश-काल-पात्र के अनुसार संस्कृतनिष्ठ हिन्दी; फ़ारसी मिश्रित हिन्दी; हिन्दोस्तानी; ग्राम्य हिन्दी; बंगाली, पंजाबी, मराठी, मद्रासी आदि विभिन्न क्षेत्रीय छापों से युक्त हिन्दी, गोराशाही, रँगरूटी—ये सभी हिन्दी के उपयोगी और मान्य रूप होंगे। लोप-अलोप; ख़ालिस-निखालिस; फ़िज़ूल-बेफजूल, टेलीफ़ोन-दूरभाष—ये सब ही विश्व-हिन्दी के अनिवार्य अंग होंगे।

इससे यह अभिप्राय नहीं कि भाषा को स्वेच्छाचार से भ्रष्ट कर दिया जाय। विद्वज्जन, पुष्ट और प्राञ्जल भाषा का सदैव निदर्शन करते रहेंगे। किन्तु यह भी सत्य है कि देश की सभी भाषाओं को सीख लेना सरल नहीं। उस दशा में इस प्रकार की टूटी-फूटी भाषा भी क्षम्य और आवश्यक है, ताकि राष्ट्र के सभी भाषा-भाषी स्नेहपूर्वक घुल-मिल सकें, विचारों का आदान-प्रदान कर सकें।

हम विश्वहिन्दी के नाम पर आज एकत्र हुए हैं। अपने अतिथियों को हम विश्वहिन्दी की विराट् मूर्ति का दर्शन करायें। देवनागरी लिपि के माध्यम से तथाकथित हिन्दी भाषा और समस्त भाषाओं का सेतुकरण, राष्ट्रीय एकीकरण, और पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय एकीकरण पर अपनी अनन्य निष्ठा का परिचय दें।

यही है 'विश्व-हिन्दी' का वास्तविक स्वरूप! जय जगत्!

नन्दकुमार अवस्थी

मुख्यन्यासी—सभापति, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ-३

सम्पादकीय

नववर्षोपहार

जनवरी १९७५ के अंक से 'वाणी-सरोवर' त्रैमासिक का छठा वर्ष आरंभ हुआ। मंगलमय भगवान् को प्रणाम करके विगत वर्ष को सस्नेह बिदाई और नवीन संवत्सर का स्वागत है। भुवन वाणी ट्रस्ट के समग्र परिवार की ओर से, राजस्थानी भाषा के पदम भगत विरचित प्राचीन मंगळकाव्य 'रुक्मिणी-मंगल' जैसे लोकप्रिय ग्रंथ का शुभारम्भ करके, हम वाणी-सरोवर के सहृदय पाठकों और जगत् के भाषाप्रेमियों को नये साल की बधाई दे रहे हैं। हमारे सानुवाद लिप्यन्तरण-कार्य में उत्तरोत्तर वृद्धि, आप लोगों के पुण्य-प्रसाद का ही फल है।

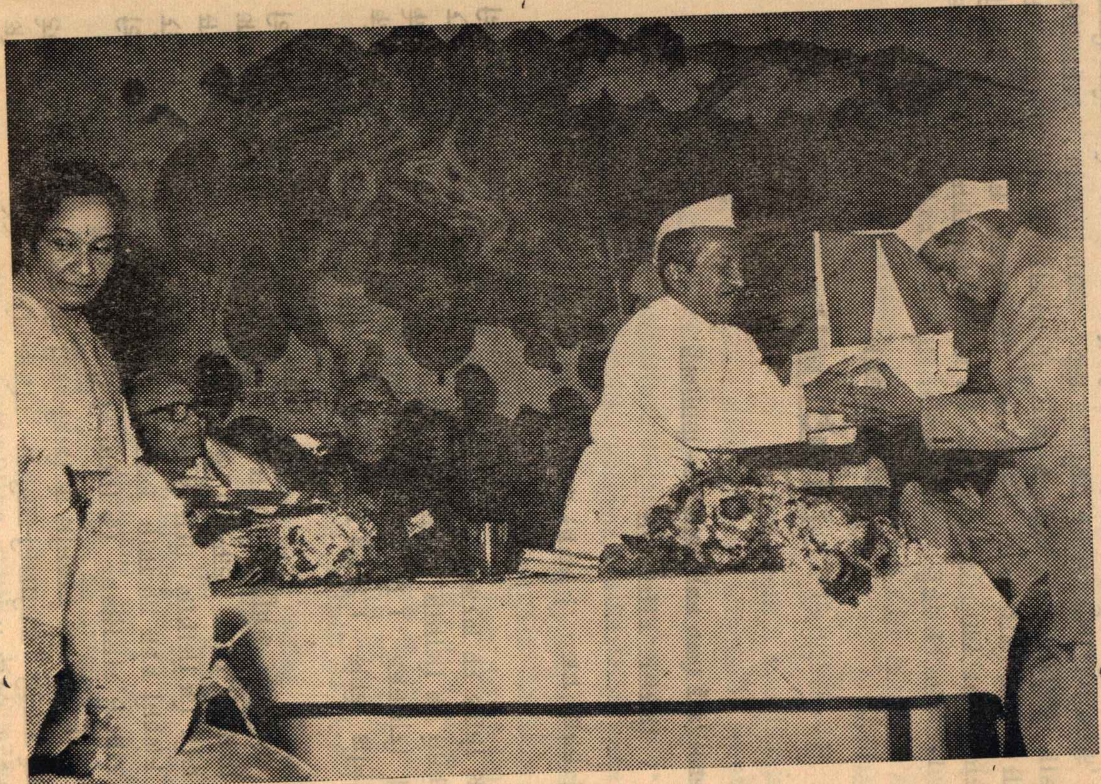

नगापुर में आयोजित विश्व हिन्दी सम्मेलन की ओर से, १३ जनवरी, १९७५ ई० को महामहिम उपराष्ट्रपति श्री बी. डी. जत्ती के विमलकरों से (नन्दकुमार अवस्थी) को प्रदत्त सम्मानपत्र ।

नशा सब बुराइयों की जड़ है

इसी से नशाखोर—

०० परिवार के लिये दुख का कारण है।

०० समाज के लिये कलंक का विषय है।

०० राष्ट्र के लिये अनुपयोगी व भारस्वरूप है।

और इसी लिये—

नशानिषेध पूज्य बापू के स्वतन्त्रता संग्राम का प्रमुख अंग था आज हमारा राष्ट्र स्वतन्त्र है और उसका नव-निर्माण होना है।

अतः/

नये भारत की प्रगति के लिये नशे के कलंक को दूर करना सभी का पवित्र कर्तव्य है।

उत्तर प्रदेश में इस समय—

1— चरस, गाँजा व अफीम के मादक पदार्थों का निषेध है।

2— पौड़ीगढवाल, चमोली, पिथौरागढ, उत्तरकाशी व टेहरीगढवाल के जिलों व हरिद्वार ऋषिकेश व वृन्दावन के तीर्थ स्थानों में कानूनन् मद्यनिषेध लागू है।

3— वर्ष में 5 राष्ट्रीय महत्व के दिनों के अतिरिक्त प्रत्येक सप्ताह में मंगलवार को आबकारी की दूकानें बन्द रखी जाने के आदेश हैं।

मद्यनिषेध योजना को सफल बनाने व उसके लिए उपयुक्त

वातावरण उत्पन्न करने के लिये जन जन का

सहयोग अपेक्षित है।

उ० प्र० ४०९ मद्यनिषेध एवं समाजोत्थान विभाग द्वारा प्रसारित।

राज्य प्रशासन ग़रीब और धनी के बीच ग़रीब का, शोषित और शोषक के बीच शोषित का और साम्प्रदायिकता एवं धर्मनिरपेक्षता के बीच धर्म निरपेक्षता का पक्ष लेगा।

—हेमवती नन्दन बहुगुणा
मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश

उत्तर प्रदेश शासन

उक्त विचारों को कार्यान्वित करने की दिशा में सक्रिय है:—

* उत्तर प्रदेश अनुसूचित जातियाँ, विमुक्त जातियाँ ऋण अनुतोष अध्यादेश, 1974 लागू जिसके फलस्वरूप उक्त वर्ग के 17 लाख परिवार महाजनों के चंगुल से मुक्त हो जायेंगे।
* हरिजनों और जन-जातियों के लिये पुलिस विभाग, तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी की राजकीय सेवाओं में 50% स्थान आरक्षित।
* हरिजन छात्रों की छात्रवृत्तियों में वृद्धि।
* समाज विरोधी तत्वों के विरुद्ध कठोर कार्रवाई।
* तस्करी रोकने के लिये प्रदेशभर में चौकियों की स्थापना।
* राज्य कर्मचारियों के मँहगाई-भत्ते, मकान भत्ते आदि में पर्याप्त वृद्धि।
* राज्य कर्मचारी की सेवाकाल में मृत्यु हो जाने पर उसके निकटतम संबंधी को सरकारी सेवा में लगाने की व्यवस्था।
* 54 लाख से अधिक खेतिहर मज़दूरों की न्यूनतम मज़दूरी में वृद्धि।
* विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा घोषित नये वेतनमान विश्वविद्यालयों तथा डिग्री कालेजों में लागू।
* औद्योगिक पिछड़ेपन को दूर करने हेतु पाँच चीनी मिलों, आठ कताई मिलों आदि अनेक नये उद्योगों की स्थापना।

सामाजिक विषमता को दूर करने की दिशा में
ये हैं उत्तर प्रदेश शासन के कतिपय नये संकल्पी पग।

१४४८४— सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित।

सि० अ०—सूर्य की सहायता से ब्रह्म में ध्यान लगाने के समय पद्मासन लगा कर वक्ष:स्थल, सिर, और ग्रीवा को ऊँचा रखते हुए दृष्टि सीधी रखे, अंगों को गति न दे, समस्त इन्द्रियों को मन के वश में कर के हृदय-गुहा में निहित ब्रह्म का ध्यान करे, और अन्त:करण में जो भयावह बाधाओं की नदी प्रवाहित हो उसे ब्रह्म को ही नौका कर के पार कर जाए। [८]

प्राणान् प्रपीडयेह संयुक्तचेष्टः
क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत।
दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं
विद्वान् मनो धारयेताप्रमत्तः ॥ ९ ॥

अनु०–[साधक को चाहिए कि] इसी शरीर में प्राणों का निरोध कर और चेष्टाओं को समाहित कर जब प्राणशक्ति क्षीण हो जाय तब नासिकारन्ध्र द्वारा उसे बाहर निकाल दे। और फिर वह विद्वान् पुरुष दुष्ट अश्व से युक्त रथ के सारथि के समान[1] सावधान हो कर मन को वश में करे। (९)

सि० अ०—दूसरा योग यह है कि प्राणायाम करे और उस के अनुकूल जिस भोजन, पान, और निद्रा का विधान है उस का पालन करे। जब प्राणायाम द्वारा उस स्थान पर पहुँच जाय जहाँ अन्य कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता, तब एक नासिका-रन्ध्र से प्राण को धीरे-धीरे छोड़े और नासिका और मुख से साँस न ले। जिस प्रकार किसी रथ के घोड़े उद्धत हों और उस का सारथी पूरी कुशलता से उसे मार्ग पर ले चले, उसी प्रकार इस साधना का अनुष्ठान करने वाले को चाहिए कि प्राणों को सावधान रखे, ताकि मन उसे कुमार्ग पर न ले जाय। [९]

समे, शुचौ, शर्करावह्निवालुका-
विवर्जिते, शब्दजलाश्रयादिभिः,
मनोऽनुकूले, न तु चक्षुपीडने,
गुहानिवाताश्रयणे, प्रयोजयेत् ॥ १० ॥

अनु०–जो समतल, पवित्र, शर्करा, अग्नि, और बालू से रहित तथा शब्द, जल, और आश्रयादि से भी शून्य हो, मन के अनुकूल हो, न

१ तुलनीय—कठोपनिषद् १.३.४।

कि नेत्रों को पीड़ा देने वाला, ऐसे गुहा आदि वायुशून्य स्थान में [मन को] युक्त करे। (१०)

सि० अ०—जिस भूमि पर साधक आसन ग्रहण करे वह नीची-ऊँची न हो, उस पर मलिनता न हो, उस पर बालू न हो, भूमि उष्ण भी न हो, वह धूलि-धूसर न हो, वहाँ उस के कान तक कोलाहल न पहुँच सके, वह लोगों के रास्ते में न पड़ती हो। जहाँ भी उस के मन को शान्ति मिले, जिस स्थान के देखने से उस के नेत्रों को कष्ट न हो, जिस गुफा में वायु का झोंका न आये, वहीं आसन ग्रहण कर के योग-साधना करनी चाहिए। [१०]

नीहारधूमार्कानिलानलानां
खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम्
एतानि रूपाणि पुरःसराणि
ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ॥ ११ ॥

अनु०–योगाभ्यास आरम्भ करने पर पहले कुहरे, धूम, सूर्य, वायु, अग्नि, खद्योत (जुगनू), विद्युत्, स्फटिकमणि, और चन्द्रमा का अनुभव होता है। इन के रूप ब्रह्म की अभिव्यक्ति करने वाले हैं। (११)

सि० अ०—साधक के अन्तःकरण पर प्रथम साधना में ब्रह्म की अभिव्यक्ति के लक्षण ये हैं कि कभी तो उस के ध्यान में कुहरे के समान अन्धकार आ जाता है, कभी उस के ध्यान में धुएँ के समान अन्धकार आ जाता है, कभी उस के ध्यान में सूर्य के समान प्रकाश आ जाता है, कभी उस के ध्यान में अग्नि का प्रकाश आ जाता है, कभी उस के ध्यान में वायु का झोंका आता है, कभी उस के ध्यान में जुगनू जैसा हो जाता है, कभी उस के ध्यान में विद्युत की चमक का प्रकाश आ जाता है, कभी उस के ध्यान में स्फटिक-मणि की स्वच्छता और धवलिमा आ जाती है, और कभी उस के ध्यान में चन्द्रमा की ज्योत्स्ना आ जाती है। [११]

पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते,
पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते,
न तस्य रोगो, न जरा, न मृत्युः,
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ॥ १२ ॥

अनु०–पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश की अभिव्यक्ति होने पर, योग के पञ्चात्मक गुण के प्रवृत्त होने पर, जिसे योगाग्निमय शरीर

प्राप्त हो गया है उसे न रोग होता है, न वृद्धावस्था प्राप्त होती है, और न मृत्यु ही होती है। (१२)

सि० अ०—योग में आठ विषय निर्धारित हैं (अर्थात् आठ अंगों का विधान है), जिन में से पाँच का उल्लेख हुआ। अन्य तीन जो शेष हैं उन में से एक धारणा है, और धारणा का अर्थ है एक विशेष तत्त्व से चित्त को बाँध देना। उस का प्रकार यह है कि पहले चित्त का पृथ्वी में संयमन करे और समझे कि पृथ्वी-महाभूत मैं ही हूँ, फिर चित्त का जल में संयमन करे और समझे कि जल-महाभूत मैं ही हूँ, इस के अनन्तर चित्त का अग्नि में संयमन करे और समझे कि अग्नि-महाभूत मैं ही हूँ, इस के अनन्तर चित्त का वायु में संयमन करे और समझे कि वायु-महाभूत मैं ही हूँ, इस के अनन्तर चित्त का भूताकाश में संयमन करे और समझे कि भूताकाश मैं ही हूँ। जब इन की धारणा सिद्ध हो जाती है तो साधक तद्रूप हो जाता है। जो कोई इस धारणा में सिद्ध हो जाता है उसे रोग और जरा नहीं सताती और उस तक मृत्यु नहीं पहुँचती, क्योंकि उस का शरीर विशुद्ध योगाग्निमय हो गया होता है। [१२]

लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं,
वर्णप्रसादं, स्वरसौष्ठवं च,
गन्धः शुभो, मूत्रपुरीषमल्पं
योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ॥ १३ ॥

अनु०–शरीर का हल्कापन, नीरोगता, विषयासक्ति की निवृत्ति, शारीरिक कान्ति की उज्ज्वलता, स्वर की मधुरता, सुगन्ध, और मल-मूत्र की न्यूनता—[इन्हें] योग की पहली सिद्धि कहते हैं। (१३)

सि० अ०—इस धारणा में सिद्ध पुरुष [का शरीर] हल्का और सूक्ष्म हो जाता है तथा सदा स्वस्थ रहता है। उस का मन किसी ओर चलायमान नहीं होता, उस का मुख कान्तिमय हो जाता है, उस का स्वर मधुर हो जाता है, उस के शरीर में दुर्गन्ध नहीं होती और उस से सुगन्ध आती है, उस के मल-मूत्र में न्यूनता हो जाती है। यह योग की पहली सिद्धि का लक्षण है। [१३]

यथैव विम्बं मृदयोपलिप्तं
तेजोमयं भ्राजते तत् सुधान्तम्।
तद् वात्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही
एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः ॥ १४ ॥

अनु०–जिस प्रकार मिट्टी से मलिन हुआ बिम्ब (दर्पण आदि जिस में मुख प्रतिबिम्बित हो) मिट्टी धुल जाने पर तेजोमय हो कर चमकने लगता है, उसी प्रकार देहधारी जीव आत्मतत्त्व का साक्षात्कार कर अद्वितीय, कृतकृत्य, और शोकरहित हो जाता है। (१४)

सि० अ०—जिस प्रकार स्फटिक पर मिट्टी चिपका दी जाय और उस का तेज मिट्टी से चिपक जाने के कारण प्रतीत न हो और जब उसे धो डालें तो उस की चमक प्रकट हो जाय; उसी प्रकार मूल जीवात्मा ब्रह्म का तेज है जो अविद्या और अज्ञान की मृत्तिका के कारण प्रकाशित नहीं होता, किन्तु जब उसे तप और ज्ञान से शुद्ध करते हैं तो वह ब्रह्म-तेज प्रकाशित और प्रकट हो जाता है। उस [साधक] का शोक दूर हो जाता है। उस के कार्य और कर्तव्य उस पर पूर्ण हो जाते हैं [अर्थात् वह कृतकृत्य हो जाता है,]। उस के लिए कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता और वह अद्वितीय हो जाता है। [१४]

यदाऽऽत्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं
दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत्,
अजं, ध्रुवं, सर्वतत्त्वैर् विशुद्धं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ १५ ॥

अनु०–जिस समय योगी दीपक के समान प्रकाशस्वरूप आत्मभाव से ब्रह्मतत्त्व का साक्षात्कार करता है, उस समय उस अजन्मा, निश्चल, और समस्त तत्त्वों से विशुद्ध देव को जानकर वह सम्पूर्ण बन्धनों से मुक्त हो जाता है। (१५)

सि० अ०—जीवात्मा की ज्योति को दीप बना कर और पवित्र ब्रह्म का साक्षात्कार कर के उस से एकीभूत हो जाना चाहिए। वह मूल-सत्ता अजन्मा है, निश्चल है, सभी से विशुद्ध है, और प्रकाशस्वरूप है। [साधक] उसे जान कर पापों के समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाता है। [१५]

एष ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः,
पूर्वो ह जातः, स उ गर्भे अन्तः,
स एव जातः, स जनिष्यमाणः,
प्रत्यङ् जनांस् तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥ १६ ॥[1]

---

१ यजुर्वेद ३२.४।

अनु०—यह देव ही सम्पूर्ण दिशा-विदिशा की ओर उन्मुख है, यही पहले उत्पन्न हुआ था, यही गर्भ के भीतर है, यही उत्पन्न हुआ है, यही उत्पन्न होने वाला है, यह समस्त जीवों में प्रतिष्ठित और सर्वतोमुख है। (१६)

सि० अ०—वह ब्रह्म समस्त दिशा-विदिशा में व्याप्त हो कर स्थित है, सब से पहले प्रकट हुआ है, समस्त जगत् के भीतर वही है, जो भी हुआ है वही है, जो भी है वही है, जो भी होगा वही है। हे मनुष्यो! चाहे जिधर देखो उधर ही उस का मुख है। [१६]

यो देवो अग्नौ, यो अप्सु, यो विश्वं भुवनमाविवेश,
य ओषधीषु, यो वनस्पतिषु, तस्मै देवाय नमो नमः ॥ १७ ॥

अनु०—जो देव अग्नि में है, जो जल में है, जिस ने सम्पूर्ण भुवन को व्याप्त कर रखा है, जो ओषधि और वनस्पतिओं में है, उस देव को नमस्कार है, नमस्कार है। (१७)

सि० अ०—अग्नि में जो प्रकाश है वह वही है। जल में जो प्रकाश है वह वही है। उस का प्रकाश सभी लोकों में व्याप्त है। उस का प्रकाश सभी ओषधि-वनस्पतिओं में व्याप्त है। उस प्रकाशस्वरूप सत्ता को नमस्कार! नमस्कार!! [१७]

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

तृतीयोऽध्यायः

य एको जालवानीशत ईशनीभिः,
सर्वांल् लोकानीशत ईशनीभिः,
य एवैक उद्भवे सम्भवे च
य एतद् विदुरमृतास् ते भवन्ति ॥ १ ॥

अनु०—जो एक जालवान् (मायावी) [अपनी] ईश्वरीय शक्तिओं से शासन करता है, जो [अपनी] ईश्वरीय शक्तिओं से सभी लोकों का शासन करता है, जो ही [उन के] उद्भव और विकास में अकेला [स्थित रहता है]—उसे जो जानते हैं वे अमर हो जाते हैं। (१)

सि० अ०—जो एकमात्र सत्ता है, जिस में द्वैत नहीं है, जो विविध प्रकार की शक्तिओं से सब का शासन करता है, जो सभी लोकों और सभी प्राणियों पर अपनी ही शक्ति से शासन करता है, वह सब के आविर्भाव के पूर्व एक था और आविभाव-काल में भी एक ही है। जो कोई इस अद्वैत सत्ता को जानता है वह अमर हो जाता है। [१]

एको हि रुद्रो—न द्वितीयाय तस्थुर्—
य इमाँल् लोकानीशत ईशनीभिः,
प्रत्यङ् जनांस् तिष्ठति, सञ्चुकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ॥ २ ॥

अनु०–रुद्र एक ही है—[ज्ञानी] दूसरे के लिए नहीं होते—जो [अपनी] ईश्वरीय शक्तिओं द्वारा इन लोकों का शासन करता है, [जो] प्राणियों के समक्ष स्थित है, जो समस्त लोकों की रचना कर पालन करते हुए प्रलयकाल में उन्हें समेट लेता है। (२)

सि० अ०—वह रुद्र एक है जो सब का संहर्ता है। उस के सदृश कोई और नहीं। वह अपनी ही सामर्थ्य से समस्त लोकों का स्वामी है। वह महाप्रलय में समस्त लोकों का अपने भीतर लय कर लेता है और समस्त लोकों को उन लोकों के भीतर जो कुछ है उस के साथ उत्पन्न कर के एवं उस के अनन्तर [उन का] पालन कर के अपने में लीन कर लेता है। [२]

विश्वतश्चक्षुरुत, विश्वतोमुखो,
विश्वतोबाहुरुत, विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति[1] सं पतत्रैर्
द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥ ३ ॥[2]

अनु०–[वह] सब ओर नेत्रों वाला, सब ओर मुखों वाला, सब ओर भुजाओं वाला, और सब ओर पैरों वाला है। वह एकमात्र देव द्युलोक और पृथ्वी की रचना करता हुआ दोनों भुजाओं और पतत्रों (पंखों) से शब्द करता है। (३)

---

१ तुलनीय-ऋग्वेद १०.७२.२।

२ ऋग्वेद १०.८१.३; यजुर्वेद १७.१९; अथर्ववेद १३.२.२६; तैत्तिरीयसंहिता ४.६.२.४; तैत्तिरीयारण्यक १०.१.१४; मैत्रायणीसंहिता २.१०.२ (अन्तिम चार स्थलों पर किञ्चत् पाठभेद के साथ)।

सि० अ०--सभी ओर उसी के नेत्र हैं, सभी ओर उसी के मुख हैं, सभी ओर उसी की भुजाएँ हैं, सभी ओर उसी के पैर हैं। वह सभी से अपने हाथों से कार्य कराता है, सभी पक्षियों को पंखों से उड़ाता है। पृथ्वी और आकाश को उत्पन्न कर के उन के मध्य वह अकेला प्रकाशित हो रहा है। [३]

यो देवानां प्रभवश् चोद्भवश् च;
विश्वाधिपो, रुद्रो, महर्षिः;
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं;
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ ४ ॥[1]

अनु०–जो देवताओं का उद्गम और उत्स है; [जो] जगत्पति, रुद्र, और सर्वज्ञ है; जिस ने पहले हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया था; वह हमें शुभ बुद्धि से संयुक्त करे। (४)

सि० अ०—सभी देवता उसी से आविर्भूत हुए हैं और सभी देवता उसी में लीन होते हैं। वह सभी लोकों का स्वामी है और सभी लोकों का संहर्ता भी है। वह महाज्ञानी है। उसी ने सब से पहले हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया। वह एकमात्र प्रकाशस्वरूप सत्ता जिस ने हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया है हमें ज्ञान प्राप्त कराये ताकि हम जानें कि हम वही हैं। [४]

या ते रुद्र ! शिवा तनूरघोरापापकाशिनी
तया तस् तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥ ५ ॥[2]

अनु०–हे रुद्र ! हे गिरिशन्त (पर्वतों में बसने वाले) ! तुम्हारी जो मङ्गलमयी, शान्त, और पुण्यप्रकाशिनी मूर्ति है, उस मङ्गलमयी मूर्ति के द्वारा तुम [हमें] देखो। (५)

सि० अ०--हे रुद्र। सर्वसंहारक ! तुम्हारा जो रूप मंगलमय है, भयावह नहीं है, पापों का नाशक है, जिस रूप से आनन्द प्राप्त होता है और कैलास पर्वत में मंगल होता है, उसी रूप से हम पर दृष्टिपात कर। [५]

यामिषुं गिरिशन्त ! हस्ते बिभर्ष्यस्तवे
शिवां गिरित्र ! तां कुरु, मा हिंसीः पुरुषं जगत् ॥ ६ ॥[3]

---

१ किञ्चित् पाठान्तर से ४.१२; अथर्ववेदीय-महानारायणोपनिषद् १०.३।
२ किञ्चित् पाठान्तर से, यजुर्वेद १६.२।
३ यजुर्वेद १६.३।

अनु०–हे गिरिशन्त ! हे गिरित्र (पर्वतों के रक्षक) ! तुम प्रहारार्थ अपने हाथ में जो बाण धारण किये रहते हो, उसे मङ्गलमय करो, किसी पुरुष या पशु की हिंसा मत करो । (६)

सि० अ०––हे महाशैलवासी ! उस बाण से हमारा मंगल कर और अपने मार्ग के किसी पथिक पर उस बाण का प्रहार न कर, अर्थात् अपने मार्ग के प्रति अज्ञानी न बना । [६]

ततः परं, ब्रह्मपरं, बृहन्तं,
यथानिकायं सर्वभूतेषु गूढम्,
विश्वस्यैकं परिवेष्टितार-
मीशं तं ज्ञात्वाऽमृता भवन्ति ॥ ७ ॥

अनु०–उस [रुद्र, जगत्, अथवा हिरण्यगर्भ] से परे जो परब्रह्म है, महान् है, जो समस्त प्राणियों में उन के शरीर के अनुसार छिपा हुआ है, तथा विश्व का एक मात्र आच्छादक है, उस परमेश्वर को जान कर [जीवगण] अमर हो जाते हैं । (७)

सि० अ०—वह परब्रह्म है, हर रूप में वही रूप धारण किये हुए है, उस में अन्तर्हित है, समस्त जगत् में व्याप्त है । जैसे अग्नि जिस वस्तु में व्याप्त होती है उसे अपने ही रूप का कर लेती है उसी प्रकार वह भी जिस किसी वस्तु में व्याप्त होता है उसे अपने ही रूप का कर देता है । ईश्वर को इस प्रकार जान कर मनुष्य अमर हो जाता है । [७]

वेदाहमेतं पुरुषं, महान्त-
मादित्यवर्णं, तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति,
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ ८ ॥[1]

अनु०–मैं इस अज्ञानातीत, प्रकाशस्वरूप, महान् पुरुष को जानता हूँ । उसे ही जान कर [पुरुष] मृत्यु को पार करता है, परमपद के लिए कोई और मार्ग नहीं है । (८)

---

१ यजुर्वेद ३१.८ ।

कन्यकतानुं ब्रह्मचारियां कचनुमाय्
नन्नायि रमिच्चु वाणीटिनार् निरन्तरम् । १५
काननंतोऱुं पशुवृन्दत्तें मेच्चु पिन्नें
नानापुष्पङ्ङळ् पुल्लुं समिदादिकळेल्लां १६
कोण्टुवन्नीटुमवन् मिण्टातेयिरिक्कुम्पोळ् ।
कण्टिक्कार्कुळलियां देवयानियुमायि १७
कण्ट काननंतोऱुं नटन्नु कळिच्चीटुम् ।
कुण्ठतकूटातें तन् विद्ययुं पठिच्चीटुम् । १८
यौवनमिरुवर्क्कुमारंभिच्चिरिक्कुन्नु
दिव्यत्वमुण्टाकयाल् वृत्तियुं रक्षिच्चीटुम् । १९
वेणुनादङ्ङळोटु ताळङ्ङळ् मेळङ्ङळुं
वीणवायन नल्ल वक्रोक्तिविशेषवुं २०
व्यंग्यङ्ङळ् पलतरं ध्वनिकळिवयेल्लां
मंगलमाकुंवण्णं नन्नायिप्पऱकयुं २१
अन्योन्यं कळिच्चवरिरुन्नार् पलकालम्
कन्यकतानुं ब्रह्मचारियुं पिरियातें । २२
आटीटुन्नवनिलुं पाटीटुन्नवनिलुं
गूढमां नारीवृत्तं मऱटक्कुन्नवनिलुं २३
इष्टमायुळ्ळ वस्तु कोटुक्कुन्नवनिलु-
मिष्टमायतुतन्नें पऱयुन्नवनिलुं २४

वह सुकेशिनी देवयानी के साथ विविध काननों में घूमकर खेला करता था। साथ-साथ अपनी विद्या को भी बिना आलस्य के पढ़ता था। दोनों का यौवन प्रारम्भ हो गया था। दिव्य होने के कारण कच अपने चरित्र की भी रक्षा करता था। वेणुनादों के साथ विविध ताल और वाद्य बजाते हुए वीणावादन करते हुए, अच्छी वक्रोक्तियाँ, विविध व्यंग्य और ध्वन्युक्ति मांगलिक रूप में अच्छी तरह से कहते हुए कन्य का और ब्रह्मचारी दोनों कभी अलग न होकर चिरकाल तक आपस में खेलते रहे। १४-२२ यह प्रसिद्ध ही है कि मधुवाणियों (महिलाओं) का नाचनेवाले में, गानेवाले में, गूढ़ नारीवृत्त को छिपानेवाले में, इष्ट वस्तु देनेवाले में, मीठी बात कहनेवाले में, और तरह-तरह के आभूषण पहनने वाले में, देखने में अच्छा लगनेवाले में, और खेलनेवाले में प्रेम पैदा हो जाता है; और कच में इस प्रकार के गुण तो थे ही। कच के इस प्रकार

कण्टभूषणमॆल्लामणियुन्नवनिलुं
कण्टाल् नल्लवनिलुं कॊळियुळ्ळवनिलु २५
मुण्टाकुमल्लो मधुवाणिकळ्क्कनुराग-
मुण्टल्लो कचनेवमादियां गुणमॆल्लाम् । २६
अञ्ञूरु संवत्सरं कळिञ्ञु कचनेवं
मञ्जुळगात्रियुमाय् कळिच्चकालमन्नाळ् । २७
अरिञ्ञारसुरकळ् कचन्टॆ परमार्त्थम्
निरञ्ञ वैरत्तोटुमतिनालतुकालम् । २८
काननं तन्निल् पशुवृन्दवुं मेच्चु कचन्
ताने निल्कुन्ननेरं कॊन्नवनुटलॆल्लां २९
ओरोरो तिलत्तोळं नुरुक्किच्चॆन्नायक्कळ्क्कु
पारातॆ कॊटुत्तितु दुष्टरामसुरकळ् । ३०
पशुवृन्दवुमप्पोळ् तङ्ङळॆप्पोन्नु वन्नार्
कचनॆक्काणाय्कयाल् देवयानियुं चॆन्नु ३१
करञ्ञु परितापं निरञ्ञु मनतारिल्
परञ्ञु तातनोटु वन्नीला गुरुसुतन् ३२
गोक्कळुं गोशालय्कल् तङ्ङळे वन्नारॊक्क
पार्क्कॆण्टुं नेरमल्ल सूर्यनुमस्तमिच्चु । ३३
अग्निहोत्रवुं वेण्टीलॆन्तॊरुमूलं कचन्
वैकियतवनॊरु सङ्कटं वन्नीलल्ली । ३४

मंजुलगात्रि (सुंदर शरीर वाली देवयानी) के साथ खेलते हुए पाँच सौ बरस बीत गये। असुरों ने प्रवृद्ध क्रोध के साथ कच के इस रहस्य को जान लिया। जब पशुओं को चराकर कच वन में अकेला खड़ा था तब दुष्ट असुरों ने उसे जान से मार कर उसके शरीर के तिल के समान छोटे-छोटे टुकड़े काटकर भेड़ियों को खिला दिया। पशुवृन्द आप ही घर वापस आये। कच को न देखकर देवयानी बहुत दुःखित हुई और रोने लगी। तदनन्तर अपने पिता से बोली—"गुरुपुत्र (कच) अभी वापस नहीं आया और गायें सब आप ही वापस आ गयीं। अब और प्रतीक्षा करने के लिए समय नहीं है, सूर्यास्त हो गया। कच को क्या अग्निहोत्र नहीं करना है? क्या कारण है कि विलम्ब कर रहा है। उसको कोई विपत्ति तो नहीं हुई? अगर कच को कुछ हुआ तो मैं मर जाऊँगी इसमें कोई संदेह नहीं"। जब पुत्री ने इस प्रकार कहा (तब पिता ने कहा),

अन्तरं कचनु वन्नीटुकिल् मरिप्पन् ञा-
नन्तरमेतुमिल्लेन्नात्मज परञ्ञप्पोळ् ३५
ॲन्तिनु खेदिक्कुन्नु मरिच्चानेन्नाकिलु-
मिन्नु ञान् जीविप्पिच्चुकॊळ्ळवन् नीयटङ्ङुक । ३६
विळिच्चु शुक्रमुनि कचनुं चॆन्नाय्क्कळे-
प्पॊळिच्चु पुऱप्पेट्टु वन्नानेन्तॊरु चित्रम् ३७
ॲन्तॆटो नटे वराञ्ञीटुवान मूलमॆन्नु
सुन्दरगात्रि देवयानि चोदिच्चनेरं ३८
पुञ्चिरिपूण्टु कचन् चॊल्लिनान् परमार्थं
वञ्चिच्चु दनुजन्मार् चॆय्त दुष्टतयॆल्लाम् । ३९
पिन्नॆयुमॊरु दिनं पूविनु वनं पुक्का-
नन्नवनुटल् पॊटिच्चाळियिलिट्टारवर् । ४०
कन्यक देवयानि तातनोटरियिच्चाळ्
अन्नुं मामुनिवरन् विळिच्चुवरुत्तिनान् । ४१
पिन्नॆयुं मून्नामतु दुष्टरामसुरकळ्
मुन्नं वन्नतुपोलॆ वन्नुपोकरुतॆन्नार् । ४२
वधिच्चु वरुत्तॊक्कॆप्पॊटिच्चु तरि पोक्कि
मृदुत्वं कलर्न्नॊरु चूर्णमाय् वशमाक्कि ४३
हृद्यमाय् गुरुविनु सेविप्पानुण्टाक्किय-
मद्यत्तिल् कलक्कि नल्कीटिनारसुरकळ् । ४४

"क्यों दुःखित हो रही हो ? अगर मर भी गया है तो मैं जिला दूँगा। तुम शान्त हो जाओ"। तब शुक्र मुनि ने पुकारा और कच भेड़ियों (के पेट) को फाड़कर निकल आया। कितना आश्चर्य है ! जब सुन्दरगात्री देवयानी ने पूँछा 'तुम पहले ही क्यों नहीं आये', तब मुस्कराते हुए कच ने परमार्थ बतला दिया—'असुरों ने वञ्चना करके दुष्टता की'। फिर एक दिन वह (कच) फूल (लाने) के लिए वन गया। तब असुरों ने उसके शरीर को चूर-चूर कर समुद्र में फेंक दिया। कन्या देवयानी ने पिता को बतला दिया और उस अवसर पर भी उसको जिलाकर बुला लिया। तीसरी बार असुरों ने फिर सोचा कि अब की वह बात न होना चाहिए जो पहले हुई थी। इसलिए उसका (कच का) वध करके, शरीर को तलकर उसे पीसकर छान कर महीन चूर्ण बना लिया और उस चूर्ण को गुरु (शुक्राचार्य) के लिए तैयार किये हुए मद्य में

देवयानियुं कचन् वराङ्गनेरं परि-
देवनं तुटङ्ङिनाळ् तातन्टे मुन्पिल् निन्नु । ४५
देवकळुटे गुरुपुत्रनेन्नरिञ्ञिट्टु
देववैरिकळुटे दुष्टत तन्नेयितु । ४६
जीविप्पिच्चीटुकिन्नुमेन्नतु केट्टु मृत-
जीविनिविद्यकोण्टु विळिच्चु भार्गवनुम् । ४७
वन्नील कचनेन्तु मकळे कर्म्मफलं
वन्नीटुन्नतिनेतुमावतल्लटङ्ङु नी । ४८
ऎन्नेल्लां पलतरं भार्गवन् पऱञ्ञप्पोळ्
कन्यक देवयानि कण्णुनीर् वार्त्तु चोन्नाळ् । ४९
आदितेयाचार्यनां गीष्पतिसुतनाय-
भूदेवन्तन्नेक्कोन्न पापिकळसुरकळ् । ५०
सन्ततिनाशंकूटे वरुत्तीटुवान् शपि-
च्चन्तरमतिनिल्ल केवलं पिन्ने ञानुं ५१
इन्नेन्टे कचनोटुकूटि ञान् मरिक्कुन्ने-
नेन्नेल्लां देवयानि चोन्नतु केट्टु शुक्रन् ५२
पिन्नेयुं विळिच्चितु नन्नायि ध्यानिच्चप्पोळ्
तन्नुटे जठरत्तिल्निन्नवन् विळिकेट्टान् ५३
एतोरु वऴियेनीयेन्नुटेयुळ्ळिल् पुक्के-
न्नादरवोटु शुक्रन् चोदिच्चनेरं कचन् ५४

घोलकर पीने को दिया। ३७-४४ जब कच वापस नहीं आया तब देवयानी अपने पिता के सामने रोने लगी। (उसने कहा,) "यह जानकर कि कच देवगुरु का पुत्र है असुरों ने ही अवश्य यह दुष्टता की है। अतएव उसको फिर जिलाइए"। यह सुनकर भार्गव (शुक्राचार्य) ने मृतसंजीवनी विद्या के द्वारा कच को बुलाया। "बेटी, कच तो आता नहीं है। यह कर्म का फल है जिसे कोई भी रोक नहीं सकता। इसलिए तुम शान्त हो जाओ।" जब पिता ने इस प्रकार बहुत कुछ कहा तब कन्या देवयानी रोती हुई बोली, "इसमें संदेह नहीं कि पापी असुरों ने ही देवों के आचार्य बृहस्पति के पुत्र को मार डाला है। ४५-५० मैं शाप देकर उनका संततिनाश कर दूँगी, इसमें संदेह नहीं। फिर यह भी है कि मैं आज अपने कच के साथ मर जाऊँगी"। देवयानी की इस प्रकार की बात सुनकर शुक्राचार्य ने अच्छी तरह से ध्यान करके फिर

अेन्नेक्कोन्नसुरकळ् वरुत्तुपोटिच्चुटन्
तन्नितु मद्यं तन्निल् कलक्किस्सेविप्पानाय् । ५५
अेन्तु केट्टोरु शुक्रन् कोपिच्चु चोन्नानेङ्कि-
लिन्नु ञानसुररेशशपिच्चु नशिप्पिच्चु ५६
पुण्यमुळ्ळमररोटोन्निच्चु वाणीटुव-
नेन्नतु केट्टु कचन् चोल्लिनानरुतेन्नाल् ५७
वन्नुपों तपस्सिन्नु नाशमेन्नरियेणम्
नन्नल्ल शपिक्कुन्नतारेयुमोरुवक्कुं ५८
दोषमिल्लात नमुक्कोक्कयुं क्षमिप्पतु
भूषणमाकुन्नतु कोपमुण्टायालाका । ५९
कोपकामादिकळे क्षमया जयिप्पवन्
तापसश्रेष्ठनेन्नु चोल्लुन्नु विद्वज्जनम् । ६०
अेन्नतु केट्टु भृगुनन्दनन् मकळोटु
चोन्नानेङ्ङने वेण्डू तिरिच्चुचोल्लेणं नी । ६१
ञान् मरिच्चीटुन्नाकिल् कचनेयुण्टाक्कुवन्
ञान् मरियाते कचनुण्टाकयिल्लतानुम् ६२
अच्छनेन्तेन्नोटिप्पोळिङ्ङने परयुन्नु
पिच्चयेन्ततु पुनरेल्लाक्कुं चेय्यामल्लो । ६३

कच को बुलाया । और कच ने भी पेट में रहते हुए उनकी पुकार सुन ली । जब शुक्राचार्य ने सादर पूँछा कि तुम किस मार्ग से मेरे भीतर घुस आये तब कच ने कहा—"मुझे मार कर मेरे शरीर को तलकर और पीसकर मद्य में मिलाकर आपको पीने को दिया गया" । यह सुनकर शुक्र क्रुद्ध हुए और बोले—"अगर ऐसा है तो आज मैं असुरों को शाप देकर नष्ट कर दूँगा और पुण्यशाली देवों के साथ रहने लगूँगा" । यह सुनकर कच ने कहा—"ऐसा मत कीजिए क्योंकि आपके तप का नाश हो जायगा । किसी को भी औरों को शाप देना उचित नहीं है । ५१-५८ हम निर्दोषों के लिए सब क्षमा कर देना ही भूषण होगा । क्रुद्ध होने से वह बात न रहेगी । विद्वान् लोग कहते हैं कि जो क्रोध और काम आदि को क्षमा के साथ जीत लेता है वही तापस श्रेष्ठ है" । यह सुनकर भृगुनन्दन (शुक्र) ने अपनी बेटी से कहा अब क्या करना है यह सोचकर बतलाओ । अगर मैं मरजाऊँगा तो कच को जिला दूँगा । मेरी मौत के बिना कच नहीं जिलाया जा सकता है । (तब देवयानी

तान्मरिच्चोरुत्तने रक्षिक्कुमसारनुं
तान्मरियातेकण्टु मट्टोरु पुरुषने ६४
जीविप्पिच्चीटुन्नतु सामर्थ्यमाकुन्नतुं
जीवरक्षणत्तिनुनेङ्किले फलमुळ्ळु । ६५
ॲन्नतिल् विशेषिच्चुमाश्रितनल्लो कचन्
निन्नुटेयोरु शिष्यनाकयुमुन्टु पिन्ने । ६६
धन्यनां बृहस्पति पुत्रनाकयुमुण्टु
ॲन्नतु निरूपिच्चिट्टोत्ततु चेय्कयेन्नाळ् । ६७
निन्तिरुवटितन्नेक्कोन्नु जीविच्चालति-
नेन्तोरु फलमतु चेय्कयिल्लेन्नु कचन् । ६८
अच्छनुं कचनुमोरन्तरं वरातेक-
ण्टिच्छवन्नीटुन्नाकिलिज्जन्ममोट्टुङ्ङील ६९
निश्चयमल्लायिकल् ञान् मरिप्पनेन्नुतन्ने
कच्चेलुं मुलयाळां देवयानियुं चोन्नाळ् । ७०
आर्ज्जववचनमूर्ज्जस्वतीपुत्रि चोन्न-
ताश्चर्यमेन्नु कण्टु भार्ग्गव मुनितानुं ७१
अप्पोळ्ळेयुपदेशिच्चान् मृतसंजीविनि
सत्पुमानाय कचन्तनिक्कु मटियाते । ७२

बोली, "पिता जी ! आप क्यों मुझसे इस प्रकार कह रहे हैं ? भिक्षा देने का काम सब कोई कर सकता है, स्वयं मरकर किसी की रक्षा करने वाला सारहीन है । स्वयं न मरकर किसी को जिला देने में ही सामर्थ्य है और जिलाने का फल भी तभी होता है । ५९-६५ और फिर विशेष बात यह है कि कच आपका आश्रित है और आपके शिष्यों में से एक है । ऊपर से वह धन्य बृहस्पति का पुत्र भी है । यह सब ध्यान में रखकर आप जो उचित हो सो करें" । कच ने तब निवेदन किया—"आप महानुभाव को मारकर जीवित रहने में क्या प्रयोजन है ? यह मैं न करूँगा" । तब सुन्दरस्तन वाली देवयानी ने कहा—"अगर पिता जी को और कच को वही इच्छा हो जायगी तो निःसन्देह यह जन्म समाप्त नहीं होगा । और मैं तो अवश्य मर जाउँगी" । अपनी ऊर्जस्वती पुत्री की इस बात को अद्भुत समझकर भार्गव मुनि (शुक्राचार्य) ने उसी समय सत्पुरुष कच को संकोच के बिना मृतसंजीविनी विद्या का उपदेश दिया । ६६-७२ तत्काल ही दक्ष कच शुक्राचार्य के दक्षिणपार्श्व को

दक्षिणपार्श्वं भेदिच्चप्पींळे पुऱप्पॆट्टान्
दक्षनां कचन् जीविप्पिच्चितु शुक्रनेयुम् ७३
दक्षिण गुरुविनु जीवनुं नल्की कच-
मॊक्कुमॆन्नतुं परीक्षिच्चितन्नतिनाले । ७४
दुष्टरामसुरकळ् चॆय्ततु फलिच्चील
निष्ठुरकर्म्मिकळ्क्कु तङ्ङळ्क्के फलङ्ङळुं । ७५
गुणमुळ्ळवरुटॆ गुणत्तॆक्कॆटुप्पानाय्
गुणमिल्लात जनं चॆय्ततिन् फलङ्ङळुं ७६
गुणङ्ङळाये वरू मेल्क्कुमेल् गुणिकळ्क्कुं
गुणक्केटतु चॆय्युन्नवक्कॆयकप्पॆटू ७७
विद्ययुं पठिप्पिच्चु कीर्त्तिमानाक नीयॆ-
न्नॊत्रयुं तॆळिञ्ञरुळ्चॆय्तितु शुक्रन्तानुम् । ७८
इङ्ङनॆयॆन्टे शिष्यन्तन्नोटु चॆय्तमूलं
निङ्ङळुमज्ञानिकळाय् पोविनसुररे । ७९
इन्निनिक्कितु वन्न कारणं मऱयव-
रिन्नुतॊट्टिनिमेलिल् चॆय्याय्क सुरापानम् । ८०
चॆय्तीटुन्नवन् ब्रह्महत्ययुळ्ळतुपोलॆ
जातिभ्रष्टनुमायिप्पापियाय् वरिकॆन्नान् । ८१
शुक्रशापत्तालिन्नुं मद्यपानत्तॆच्चॆय्कि-
ल्लुलुक्रुष्टन्माराय् तपोविद्यावृत्तन्मारा़कुं ८२

फाड़कर बाहर निकाला। तदनन्तर शुक्र को जिला दिया। इस प्रकार कच ने गुरु को उनके जीवन ही को दक्षिणा के रूप में दिया। विचार करने पर यह उचित भी प्रतीत हुआ। इसलिए दुष्ट असुरों का किया सब व्यर्थ निकला। जो निष्ठुर (क्रूर) काम करते हैं वे ही उसका फल भोगते हैं। गुणियों के गुण बिगाड़ने के लिए गुणहीन जो कुछ करते हैं वह गुणियों के लिए ही उत्तरोत्तर लाभ बन जाता है। हानि उन्हीं की होती जो उसे करते हैं। शुक्र ने संजीवनी विद्या सिखलायी और बड़ी प्रसन्नता के साथ कच से कहा—"कीर्तिमान् हो जाओ। हे असुर! तुम लोगों ने जो मेरे शिष्य के साथ यह बर्ताव किया इसलिए अज्ञानी ही बने रहो। ७३-७९ मेरी आज यह दशा होने के कारण आज से लेकर ब्राह्मण सुरापान न करें। जो करेगा वह ब्रह्महत्या करनेवाले के समान जातिभ्रष्ट और पापी हो जावेगा"। शुक्र के शाप के कारण आज

विप्रन्मार् पञ्चमहापातकं प्रापिक्कुन्नु ।
शुक्रशापत्तिन्‌बलं पोकयिल्लोरुनाळु- ८३
मायिरत्ताण्टु कचनिङ्ङने वासं चेय्ति-
ट्टाचार्यनियोगत्ताल् पोवानाय् पुरप्पेट्टान् । ८४
आयतमिळियाळां देवयानियुमप्पोळ्
आतुरयायाळ् कचन्तन्नुटे वियोगत्ताल् । ८५
अन्तेटो ! तुटङ्ङुन्नतेन्ने नी वेटियाय्क
सन्ततमायिरत्ताण्डोरुमिच्चिरुन्निट्टुं ८६
कण्टिट्टिल्लेन्न भावं कण्टितु निनक्किप्पो-
ळिण्टलुण्टतुकोण्टु पारमेन्नुटेयुळ्ळिल् । ८७
इन्निन्नु कळिञ्ञीटुं निन्नुटे व्रतमेन्न-
तेन्नुळ्ळिल् निरूपिच्चु पार्त्तु ञानित्र नाळुम् । ८८
इन्निप्पोळ् नीयो पोवानायल्लो पुरप्पेट्टु
अन्नोटु यात्रपोलुं चोल्लुवान् भाविच्चील । ८९
निन्नोटु पिरिञ्ञु ञानेङ्ङने पोरुक्कुन्नु
अन्ने नी परिग्रहिच्चीटणं मटियाते । ९०
आभिजात्यवुं वयोरूपलावण्यविद्या-
शोभयुं निरूपिक्क नम्मिले रागङ्ङळुम् । ९१

भी उत्कृष्ट, तप, विद्या आदि गुणवाले ब्राह्मण भी मद्यपान करके पाँच महापातकों से लिप्त हो जाते हैं। शुक्रशाप का बल कभी नष्ट नहीं होगा। एक हज़ार वर्ष इस प्रकार रहने के बाद गुरु की अनुमति लेकर कच जाने की तैयारी करने लगा। यह देखकर कि अब कच से वियोग होगा आयतलोचना (विशाल नेत्र वाली) देवयानी दुःखित हुई और बोली—८०-८५ "अब यह तुम क्या करने लगे हो ? मुझे मत छोड़ना। निरन्तर एक हज़ार वर्ष साथ रहने के बाद भी तुम्हारी ऐसी भावना है कि मानो तुमने मुझे कभी देखा ही नहीं। इसलिए अब मेरे मन में बड़ा दुःख हो रहा है। तुम्हारा व्रत[1] अब समाप्त होने वाला है यह समझकर मैंने इतने दिन प्रतीक्षा की। तुम तो आज चले जाने की तैयारी में हो, मुझ से बिदा लेने तक की बात भी नहीं सोच रहे हो। तुम्हारा विरह मैं कैसे सह सकती हूँ ? अब बिना संकोच के मुझे परिग्रह[2] करो।

---

१ संजीविनी विद्या सीखने का व्रत. २. मुझ से विवाह करो।

चैतन्य पाइया राजा करये क्रन्दन ❋ राजारे प्रबोध देय पात्र-मित्रगण
मृत्तिकाते बसि भावे लङ्का-अधिकारी ❋ घरे-घरे कान्दे यत सब वीर-नारी
पुत्रशोके अनिवार कान्दिल सरमा ❋ बुझिया अनित्य देह, मने दिल क्षमा
अश्रुजले सरमार कलेवर भासे ❋ जानकी प्रबोध देन अशेष-विशेषे
एइरूपे नारिगण कान्दे लङ्कापुरे ❋ रावण मन्त्रणा करे, पाठाइब कारे
कृत्तिवास-पण्डितेर मधुर-वचन ❋ लङ्का-काण्डे गाहिलेन तरणी-निधन२८२

वीरबाहु, धूम्राक्ष ओ भस्मलोचनेर युद्धे गमन ओ पतन

ये वीर पाठाइ नर-वानरेर रणे ❋ सबे मरे, फिरे नाहि आसे एकजने
दिने दिने टुटे बल, मने पाइ शंका ❋नर-वानर मारि केवा राखे पुरी-लंका८३
स्वर्गेते गन्धर्व्व एक चित्रसेन नाम ❋ चित्राङ्गदा कन्या तार, रूपेते सुठाम
रावण हरिया तारे आने लङ्कापुरी ❋ परम-सुन्दरी कन्या जिनि विद्याधरी
विष्णुर वरेते एक सन्तान प्रसवे ❋ ताहार गुणेर कथा कहि, शुन सबे
राक्षस-औरसे जन्म वीरबाहु नाम ❋ देव-गुरु-भक्त बड़, सदा जपे राम

चेतना लौट आने पर राजा क्रन्दन करने लगा। राजा को सारे पात्र-मित्र दिलासा देने लगे। इस प्रकार लंका का अधिकारी रावण भूमि पर बैठा हुआ सोचने लगा और घर-घर में वीर-नारियाँ रोने लगीं। पुत्रशोक से सरमा निरन्तर रोती रही। यह सोचकर कि यह शरीर नश्वर है, उसने मन को समझाया। सरमा के सारे अंग आँसुओं से भीग गये। जानकी उनको तरह-तरह से ढाढ़स बँधाने लगीं। इस प्रकार नारियाँ लंकापुर में रोती रहीं। रावण मंत्रणा करने लगा कि अब किसको भेजा जाय। पंडित कृत्तिवास के वचन बड़े मधुर हैं—उन्होंने लंका-कांड में तरणी-वध का प्रसंग गाया॥ २८२॥

वीरबाहु, धूम्राक्ष और भस्मलोचन का युद्ध में गमन और पतन

जिस वीर को भी मैं नर-वानरों के रण में भेजता हूँ वे सभी मर जाते हैं, एक भी लौटकर नहीं आता। दिनोंदिन मेरी सारी शक्ति समाप्त होती जा रही है, मन में यह शंका उपजती है कि नर-वानरों को मार कर कौन लंका की रक्षा करेगा॥ ८३॥

स्वर्ग में चित्रसेन नाम का एक गन्धर्व था जिसकी कन्या चित्रांगदा रूप-सौन्दर्य में अनुपम थी। रावण उस परम-सुन्दरी कन्या को, जो कि विद्या-धरियों से भी अधिक रूपवती थी, हर कर ले आया। विष्णु के वर से उसने एक बेटे को जन्म दिया। उसके गुणों को बखानता हूँ, सब लोग सुनो। राक्षस के औरस रूप में उत्पन्न बालक का नाम वीरबाहु है। वह देव, गुरु आदि में बहुत भक्ति रखता है, सदा राम का नाम जपता रहता है। जन्म

जन्मिया ब्रह्मार सेवा करे निरन्तर ✽ कतदिने ब्रह्मा तबे तारे दिला वर
ब्रह्मा बले, वीरबाहु, जाह निजस्थान ✽ एइ हस्ती लह ऐरावतेर समान
एइ हस्ति-सहाये जिनिबे त्रिभुवन ✽ हस्तीर निधने हबे तोमार पतन
विष्णुभक्त हबे तुमि विष्णु-परायण ✽ विष्णुसेवा जतने करिबे सर्व्वक्षण
तोमा-प्रति तुष्ट आमि, जाओ तुमि घरे ✽ मम वरे अन्ते जाबे बैकुण्ठ-नगरे
धर्म्मशील हबे सर्व्व-शास्त्रेते पण्डित ✽ वर पेये पितार निकटे उपनीत ८४
रावण जिज्ञासे, तुमि हओ कोन जन ✽ कोथाय बसति कर, काहार नन्दन
वीरबाहु बले, पिता, हैले विस्मरण ✽ चित्राङ्गदा-गर्भे जन्म, तोमार नन्दन
तपे तुष्ट ह'ये ब्रह्मा दियाछेन वर ✽ पाइयाछि हस्ती ऐरावतेर सोसर
हस्ति-आरोहणे आमि यदि करि मने ✽ त्रैलोक्य जिनिति पारि दिनेकेर रणे
एत शुनि दशानन पुत्रे कैल कोले ✽ शिरे चुम्ब दिया बले सकरुण-बोले
रावण बले, वीरबाहु, थाक एइखाने ✽ लङ्का-राज्य भोग कर मेघनाद-सने
वीरबाहु बले, पिता, करि निवेदन ✽ मातामह-राज्ये आमि थाकिब एखन
तव प्रयोजन-काले आसिब हेथाय ✽ एत बलि वीरबाहु हइल विदाय ८५

लेने के बाद ही वह निरन्तर ब्रह्मा की सेवा करने लगा। कितने ही दिनों के उपरान्त ब्रह्मा ने उसे वर दिया। ब्रह्मा ने कहा, वीरबाहु तुम अपने घर लौट जाओ, यह ऐरावत सा हाथी तुम अपने साथ ले जाओ, इस हाथी की सहायता से तुम त्रिभुवन पर विजय प्राप्त करोगे। हाथी की मृत्यु होते ही तुम्हारा पतन होगा। तुम विष्णुभक्त हो, विष्णु में तुम्हारी भक्ति बनी रहे, तुम सदा-सर्वदा यत्न से विष्णु की सेवा करते रहना। तुम पर मैं प्रसन्न हूँ, तुम अपने घर जाओ। मेरे वर से अन्त में तुम बैकुंठधाम जाओगे। तुम धर्मपरायण और सर्वशास्त्रों में विज्ञ होगे। इस प्रकार वर पाकर वह अपने पिता के निकट पहुँचा ॥ ८४ ॥

रावण ने पूछा, तुम कौन हो, तुम्हारा कहाँ घर है और तुम किसके पुत्र हो। वीरबाहु ने कहा, पिता, आप भूल गये, मैं आपका पुत्र हूँ, चित्रांगदा के गर्भ से मेरा जन्म हुआ है। मेरी तपस्या से तुष्ट होकर ब्रह्मा ने वर और ऐरावत सरीखा हाथी दिया है। अगर मैं चाहूँ तो इस हाथी पर सवार होकर एक दिन के युद्ध में तीनों लोकों को जीत लूँ। इतना सुनकर दशानन ने पुत्र को गोद में उठा लिया और उसका माथा चूम कर करुण भाषा में कहा, वीरबाहु तुम यहीं रहो, मेघनाद के साथ लंका के राज्य का भोग करो। वीरबाहु ने कहा, पिता, मेरा निवेदन यह है कि मैं अभी मातामह के राज्य में ही रहूँगा, तुम्हारी आवश्यकता पड़ने पर यहाँ आऊँगा, इतना कहकर वीरबाहु ने विदा ले ली ॥ ८५ ॥

मातामह-राज्ये छिल गन्धर्व्व-लोकेते ※ युद्धेर वारता शुनि आइल लङ्काते
मने जाने नररूपी देव-नारायण ※ सफल हइबे देह करि दरशन
उद्देशे ब्रह्मार पदे नमस्कार करि ※ हस्ति पृष्ठे वीरवाहु गेल लङ्कापुरी
निरबधि विष्णु-बिना अन्ये नाहि मन ※ परम-धार्म्मिक वीर रावण-नन्दन
लङ्काय आसिया देखे छिन्न-भिन्न सब ※ नाहिक से नृत्य-गीत बाद्यभाण्ड-रव
महाशब्दे कलरव करिछे वानर ※ केह बले मार मार, केह बले धर
मृतदेह राशि-राशि राक्षस-बानरे ※ समुद्र गियाछे बाँधा गाछ ओ पाथरे
दग्ध बड़-बड़ घर लङ्कार भितर ※ देखिया से बीरबाहु समय-अन्तर
कुम्भकर्ण-आदि यत राक्षस प्रचण्ड ※ एकठाँइ स्कन्ध पड़े, आर ठाँइ मुण्ड
शकुनि गृधिनी आर कुक्कुर शृगाल ※ महानन्दे कलरव करे पाले-पाल
लक्ष-लक्ष रमणीर रोदनेर शब्द ※ भयङ्कर कर्म्म देखि भये हैल स्तब्ध
अन्तरीक्षे फिरे वीर हस्तीर उपरे ※ तिनद्वार फिरि गेल पश्चिमेर द्वारे
देखिल आछेन बसि श्रीराम-लक्ष्मण ※ जोड़हाते रहियाछे खुड़ा विभीषण
भल्लूक-वानर कत बड़-बड़ वीर ※ निरखिया वीरबाहु कम्पित-शरीर

गन्धर्वलोक में वीरबाहु के मातामह का राज्य था। युद्ध की वार्त्ता सुनकर वीरबाहु लंका चला आया। मन ही मन वह जानता था कि स्वयं नारायण नर का रूप लेकर आए हैं, जिनके दर्शन से सारा तन-मन सफल हो जायगा। ब्रह्मा के चरणों में प्रणाम कर हाथी की पीठ पर बैठकर वीरबाहु लंकापुरी गया। सिवाय विष्णु के अन्य किसी में उसका कोई ध्यान नहीं था। रावण-नन्दन वीर भी था और परम धार्मिक भी। लंका में आकर उसने देखा कि सब कुछ तीन-तेरह हो गया है। न तो वह नाच-गाना रहा और ना गाजा-बाजा ही। चारों ओर वानरों का कलरव हो रहा था, कोई कहता था मारो-मारो, तो कोई कहता था पकड़ो-पकड़ो। चारों ओर राक्षसों और वानरों के मृतदेह बिखरे पड़े थे, समुद्र पेड़ और पत्थरों से बाँध डाला गया था। लंका के भीतर बड़े-बड़े मकान जल गये थे। यह देखकर वीरबाहु का मन भय से भर गया। कुम्भकर्ण आदि बड़े-बड़े राक्षसों का कहीं मुंड पड़ा है तो कहीं धड़। गिद्ध, कुत्ते, स्यार और गीदड़ झुंड के झुंड आनन्द से शोर मचा रहे थे। लाखों निशाचर-रमणियों के रुदन का शब्द सुनाई पड़ रहा था। यह भयानक दृश्य देखकर वह वीर स्तब्ध रह गया। हाथी पर सवार वह वीर अन्तरिक्ष में फिरता रहा। तीनों द्वारों का चक्कर लगाकर वह पश्चिमद्वार पर गया। वहाँ उसने देखा कि श्रीराम-लक्ष्मण बैठे हैं और उनके सम्मुख हाथ जोड़े चाचा विभीषण बैठे हैं। भालू और वानरों में कितने ही बड़े-बड़े वीर बैठे हैं। यह देखकर वीरबाहु का शरीर काँपने लगा। श्रीराम-लक्ष्मण को देखकर रावण-नन्दन ने उनके दोनों चरणों

श्रीराम-लक्ष्मणे देखि रावण-नन्दन ❋ उद्देशेते बन्दिलेन दोंहार चरण
विभीषण-खुड़ाके प्रणाम कैल मने ❋ प्रणमिल भक्तवृन्द यत कपिगणे
विष्णु-अवतार राम देखिल नयने ❋ जानिल राक्षस-वंश-ध्वंस एतदिने ८६
एतेक भाविया गेल पुरीर भितर ❋ सिंहासन त्यजि भूमे ब'से लङ्केश्वर
कान्दिछे तरणी-शोके हइया कातर ❋ कुड़िच'क्षे वारिधारा बहे निरन्तर
दाण्डायेछे पात्र-मित्र चतुर्द्दिके घिरे ❋ दशानन बले, युद्धे पाठाइब कारे
वीर नाहि लङ्काते, भाण्डारे नाहि धन ❋ कुम्भकर्ण मरिल, ना मरे विभीषण
मारिल आपन-पुत्रे आपन-साक्षाते ❋ मजाले कनक-लङ्का नर-वानरेते
जिनिबे वानर-नरे, के आछे एमन ❋ लङ्काते आइल राम हइया शमन
कारे पाठाइब रणे, भावे दशानन ❋ हेनकाले वीरबाहु बन्दिल चरण
वीरबाहु देखिया उठिल दशानन ❋ आलिंगन करि दिल रत्न-सिंहासन
रावण बले, वीरबाहु, करि अवगति ❋ देखिला आपन च'क्षे लङ्कार दुर्गति
स्वर्ग-मर्त्य-पाताल जिनिनु त्रिभुवन ❋ नर-वानरेर हाते संशय जीवन
वीरबाहु बले, पिता, कह त संवाद ❋ नर, वानरेर सने किसेर विवाद
रावण बले, शुन पुत्र, कहि ये तोमारे ❋ दशरथ राजा छिल अयोध्या-नगरे

में नमन किया। मन ही मन विभीषण-चाचा को प्रणाम किया। सारे भक्त कपियों को उसने प्रणाम किया। अपनी आँखों से उसने विष्णु-अवतार श्रीराम को देखा। उसने यह जान लिया कि इतने दिनों में अब राक्षस-वंश के ध्वंस होने के दिन आ गये ॥ ८६ ॥

इतना सोचकर वह पुरी के भीतर गया। सिंहासन छोड़कर लंकेश्वर जमीन पर बैठा है और तरणी के शोक में अधीर है। उसके बीस नयनों से निरन्तर आँसू गिर रहे हैं। चारों ओर उसे घेर कर पार्षद लोग खड़े हैं। दशानन कह रहा है, कि अब मैं किसको युद्ध करने भेजूँ। लंका में वीर नहीं रहा और भंडार में अब धन नहीं रहा। कुम्भकर्ण मर गया किन्तु विभीषण नहीं मरा। अपने ही पुत्र का उसने अपने सम्मुख वध कराया। नर-वानरों ने मिलकर सोने की लंका का ध्वंस कर दिया। वानरों तथा नर को हरावे, ऐसा कौन है। राम यमराज बन कर लंका में आ गया। दशानन सोचने लगा कि अब मैं किसको रण में भेजूँ। ऐसे ही समय वीरबाहु ने आकर चरण-वन्दना की। वीरबाहु को देखकर दशानन उठ कर खड़ा हो गया और उसका आलिंगन कर बैठने के लिए रत्न-जटित सिंहासन दिया। रावण ने कहा, वीरबाहु, तुमने अपनी आँखों से लंका की दुर्दशा देख ली। मैंने स्वर्ग-मर्त्य-पाताल तीनों लोकों पर विजय प्राप्त की, पर आज नर-वानरों के हाथों मेरा जीवन विपत्ति में पड़ा है। वीरबाहु ने कहा, पिता जी मुझको सारा समाचार तो बताओ, नर-वानर के साथ यह

तार बेटा राम लोकमुखे शुन्ते पाइ * राज्य केड़े ल'ये दूर करे दिल भाइ
दुइ भाइ बनवासी संगे ल'ये नारी * पञ्चवटी-बने छिल ह'ये जटाधारी
शूर्पणखा गियाछिल पुष्प-अन्वेषणे * नाक-कान काटे तार अनुज-लक्ष्मणे
आमि ह'रे आनिलाम ताहार सुन्दरी * वानर लइया राम एल लङ्कापुरी
कुम्भकर्ण-आदि वीर पड़ियाछे रणे * के आर जुझिबे नर-वानरेर सने ८७
वीरबाहु बले, शंका ना कर राजन * इंगिते मारिया दिब श्रीराम-लक्ष्मण
एत बलि वीरबाहु भावे मने-मन * विष्णु हस्ते मरि जाब बैकुण्ठ-भुवन
वीरबाहु बले, पिता तुमि जान भाले * इन्द्र-आदि देव काँपे आमारे देखिले
बिदाय करह, जाब रणेर भितर * एत बलि वीरबाहु चलिल सत्वर
नाना-रत्न-दान राजा दिल पुत्र-तरे * हार ओ नूपुर ताड़ नाना-अलङ्कारे
प्रतापे प्रचण्ड वीर, संग्रामे सुधीर * बापेर आज्ञाय साजि चले महावीर ८८
हेनकाले माता तार दूत मुखे शुने * धेये आसे द्रुतगति पुत्र-दरशने
कार बोले जाह पुत्र, करिवारे रण * बड़-बड़ वीर सब हइल निधन
वीरशून्य हइल कनक-लङ्कापुरी * तुमि युद्धे गेले आमि प्राण परिहरि

कैसा विवाद है। रावण ने कहा, सुनो बेटा, तुमसे बताता हूँ। अयोध्या नगर में एक राजा दशरथ था। उसका बेटा राम है। लोगों के मुँह सुना है कि उसके भाई ने राज्य छीन कर उसको भगा दिया। दोनों भाई जटाधारी बन कर साथ में नारी लेकर वनवास करने पंचवटी में रहने लगे। शूर्पणखा वहाँ फूल तोड़ने गई थी। उसके छोटे भाई लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट लिये। मैं उसकी सुन्दरी स्त्री को चुरा लाया। राम वानरों को लेकर लंका में आ धमका। कुम्भकर्ण आदि वीर युद्ध में मारे गये, अब नर-वानरों के साथ कौन जूझेगा ॥ ८७ ॥

वीरबाहु ने कहा, राजन, कोई शंका मत करो। मैं देखते ही देखते श्रीराम-लक्ष्मण को मार डालूँगा। इतना कहकर वीरबाहु मन ही मन सोचने लगा, विष्णु के हाथों मर कर बैकुंठ जाऊँगा। वीरबाहु ने कहा, पिता, तुम भली-भाँति जानते हो कि मुझको देखते ही इन्द्र आदि देवता काँपने लगते हैं। मुझको विदा कर दो, मैं रणक्षेत्र में जाऊँगा। इतना कहकर वीरबाहु शीघ्र चल पड़ा। राजा ने अपने पुत्र के लिए विभिन्न रत्न दान दिये। रत्नहार, नूपुर और विभिन्न अलंकारों से उसको सुसज्जित किया। प्रताप से प्रचंड वीर, संग्राम में सुधीर, महावीर वीरबाहु पिता की आज्ञा से सुसज्जित हो चल पड़ा ॥ ८८ ॥

दूत के मुँह से यह वृत्तान्त सुनकर उसकी माँ पुत्र को देखने दौड़ आई और बोली, हे पुत्र, किसके कहने पर तुम युद्ध करने जा रहे हो, बड़े-बड़े वीरों का निधन हो गया, सोने की लंका वीरों से शून्य हो गयी। तुम युद्ध में

कुम्भकर्ण-हेन वीर रणे गिया मरे ❋ अतिकाये मारियाछे नर ओ वानरे
मायेर वचन शुनि वीरबाहु हासे ❋ मधुर-वचन कहि जननीरे तोषे
चरणेर धूलि लय माथार उपर ❋ हासिते हासिते करे मायेरे उत्तर
अबोध अबला-जाति, नाहि बुझ कार्य ❋ आमि युद्ध ना करिले के राखिबे राज्य
आशीर्व्वाद कर माता, तुमि एक चिते ❋ तोमार प्रसादे रण जिनिब इंगिते
संग्रामे रामेर हाते हइले निधन ❋ रथे चड़ि जाब आमि बैकुण्ठे-भुवन
मायेरे प्रबोध दिया हस्ति-स्कन्धे चड़े ❋ विदाय लइया वीर जुझिवारे नड़े२८९
वीरबाहु रणे चले ह'ये सेनापति ❋ हस्ती अश्व बहुठाट चलिल संहति
चलिल धूम्राक्ष-वीर रथेते चड़िये ❋ मार-मार-शब्दे धाय नाना अस्त्र ल'ये
सवार पश्चाते चले भस्माक्ष दुर्ज्जय ❋ चर्म्मे ढाकि रथखान सबामध्ये रय
जार मुख देखे, सेइ हय भस्ममय ❋ संसारे काहारो मुख नाहि निरीक्षय
हेन महावीर नड़े रण करिवारे ❋ सम्मुख-संग्रामे केवा जिनिबे ताहारे
ताहार सहित एल कतशत वीर ❋ हस्ति-' परे वीरबाहु सुन्दर-शरीर
मने-मने वीरबाहु चिन्ते अनुक्षण ❋ केमने पाइब आमि राम-दरशन२९०

जाओगे तो मैं प्राण त्याग दूँगी। कुम्भकर्ण जैसे वीर ने रण में प्राण दिये। नर और वानरों ने मिलकर अतिकाय को मार डाला। माँ के वचन सुनकर वीरबाहु हँसने लगा और मधुर वचन कहकर जननी को प्रसन्न करने लगा। माँ के चरणों की धूलि सिर से छुवाकर हँसते-हँसते उसने माँ के प्रश्नों का उत्तर दिया। वह बोला, तुम लोग अबोध अबला जाति की हो, व्यावहारिक बातों में अनभिज्ञ हो. मैं युद्ध न करूँ तो राज्य की कौन रक्षा करेगा। हे जननी, तुम एकचित्त होकर आशीर्वाद दो, तुम्हारे प्रसाद से मैं सहज में ही रण जीत लूँगा। संग्राम में यदि राम के हाथ मेरा निधन हो जाय तो रथ पर सवार होकर बैकुंठ-धाम की यात्रा करूँगा। माँ को प्रबोध देकर वह हाथी की पीठ पर सवार हो गया और विदा लेकर लड़ने के लिए चल पड़ा॥ २८६॥

वीरबाहु सेनापति बन कर रण में चल पड़ा। हाथी घोड़ा आदि कई प्रकार की सेना चल पड़ी। धूम्राक्ष वीर रथ पर सवार होकर विभिन्न अस्त्रों से सुसज्जित हो मार-मार शब्द करता चला। सबके पीछे भस्माक्ष तथा दुर्जय चले। अपने रथ को चमड़े से लपेट कर वह बीच में रहा। जिसके मुख की ओर वह दृष्टि डालता वही भस्म हो जाता। संसार में वह किसी का भी मुँह नहीं देखता था। ऐसा महावीर भस्माक्ष रण करने के लिए चल पड़ा। उसके साथ सम्मुख-संग्राम में कौन जीत सकता था? उसके साथ सैकड़ों वीर चले। सुन्दर शरीर धारी वीरबाहु हाथी पर सवार होकर चला। मन ही मन वीरबाहु निरन्तर चिन्तन करता रहा कि कैसे राम का दर्शन हो॥ २६०॥

प्रथमेते उत्तरिल वानर-गोचर ॐ मार-मार-शब्द करि धाइल बानर
भस्मलोचनेरे तबे डाकिल तखन ॐ जुझिते दिलेक आज्ञा रावण-नन्दन
वीरबाहु आज्ञा यदि दिलेक ताहाके ॐ से भस्मलोचन जाय रामेर सम्मुखे
चर्म्मे ढाकियाछे रथ, च'क्षे चर्म्म-ठुलि ॐ राम-आगे चलिल भस्माक्ष महाबली
जेखानेते श्रीराम सुग्रीव विभीषण ॐ सेइखाने जाय ठुलि खुलिवारे मन
जोड़ करे श्रीरामे कहये विभीषण ॐ घटिल प्रमाद बड़, रक्ष नारायण
देखह भस्माक्ष-वीर उपनीत आसि ॐ जाहारे देखिबे, सेइ हबे भस्मराशि
चर्म्मे आच्छादित रथ, देख विद्यमान ॐ इहार भितरे आछे शमन-समान
भस्माक्ष इहार नाम, बड़इ दुर्द्धर ॐ करिल कठोर तप सहस्र-वत्सर
तपे तुष्ट ब्रह्मा जबे दिते एल वर ॐ राक्षस बलिल, मोरे करह अमर
ब्रह्मा बले, अन्य वर चाह निशाचर ॐ सृष्टिनाश हबे तुमि हइले अमर
निशाचर बले, तबे करि निवेदन ॐ सेइ भस्म हबे, जार हेरिब बदन
ब्रह्मा बले, दिनु, जाहा एल तव मुखे ॐ घरे गिया ब'से थाक ठुलि दिया चोखे
वर पेये राक्षस हइल आनन्दित ॐ सत्य-मिथ्या केमनेते जाइब प्रतीत

पहले वह वानरों के निकट जा पहुँचा तो वानर मार-मार शब्द करते हुए उसकी ओर लपके। तब भस्मलोचन को बुलाकर रावणनन्दन वीरबाहु ने लड़ने का आदेश दिया। जब वीरबाहु ने आज्ञा दी तो भस्मलोचन राम के सम्मुख चल पड़ा। चमड़े से उसका रथ ढका हुआ था और आँखों पर भी चमड़े की अँधेरियाँ पड़ी हुई थीं। महाबली भस्माक्ष राम के सम्मुख उस ओर चला जहाँ श्रीराम के साथ सुग्रीव और विभीषण बैठे थे। उसका उद्देश्य था कि वहीं जाकर वह अपनी आँखों से अँधेरियाँ हटा लेगा। विभीषण ने श्रीराम से हाथ जोड़ कर कहा, हे नारायण रक्षा करो, बहुत बड़ी विपत्ति आ पड़ी है। देखो वीर भस्माक्ष आ पहुँचा है। जिसको भी वह देख लेगा वही भस्म के रूप में परिणत हो जायगा। सामने चमड़े से ढका हुआ रथ है, इसके भीतर साक्षात् यम बैठा है। इसका नाम है भस्माक्ष, यह बड़ा ही दुर्द्धर्ष है। इसने हजार वर्ष तक कठोर तपस्या की। तपस्या से तुष्ट होकर ब्रह्मा वर देने आए, तब इस राक्षस ने कहा कि मुझको अमर बना दो। ब्रह्मा ने कहा, हे निशाचर तुझको अमर बना देने से सृष्टि का ध्वंस हो जायगा। तब निशाचर ने कहा, मेरा निवेदन है कि मैं जिसकी ओर भी देखूँ वही भस्म हो जाय। ब्रह्मा ने कहा, जो तुमने माँगा मैंने तुमको वही वर दिया। अब घर जाकर आँखों पर अँधेरियाँ चढ़ाकर बैठ जाओ। वर पाकर राक्षस बड़ा खुश हुआ। कैसे पता चले कि यह वर सच है या झूठ, यह जानने के लिए उसने अपने गुट में जितने राक्षस थे उनकी ओर देखा। उनके मुख की ओर देखते ही वे सब के सब भस्म हो गये।

संहति इहार छिल रक्षः यतजन ❋ मुख निरखिते भस्म हइल तखन
वर पेये निशाचर हरिष-अन्तर ❋ स्त्री-पुत्र ना रहे ऐ पापिष्ठ-गोचर
एहेन पापिष्ठ रणे हैल आगुयान ❋ इहार संग्रामे प्रभु, हओ सावधान२९१
बिभीषण-बचने बिस्मय हय मने ❋ पुनरपि श्रीराम कहेन विभीषणे
रणे भंग नाहि दिब, जुझिब अवश्य ❋ आमि भस्म हइ, किंवा ऐ हबे भस्म
बिभीषण बले, प्रभु, ना करिह भय ❋ करह उपाय-चिन्ता, मरिबे निश्चय
आछये मन्त्रणा एक, शुन नारायण ❋ इहार सम्मुखे देह धरिया दर्पण
जखनि आसिबे बेटा मुख देखिवारे ❋ दर्पणे आपन-मुख पाबे देखिवारे
दर्पणे आपन-मुख देखि निशाचर ❋ आपनि हइबे भस्म, ना करिह डर
हेन उपदेश यदि कहे विभीषण ❋ मित्र मित्र बलि राम दिला आलिंगन
श्रीराम बलेन, सैन्य हओ एकपाश ❋ यावत् राक्षस दुष्ट ना हय विनाश
श्रीराम दर्पण-अस्त्र जुड़िल धनुके ❋ छुटिया रामेर बाण रहिल सम्मुखे
आछिल रामेर संगे यत कपिगण ❋ बाणेते सवार मुख हइल दर्पण२९२
हेनकाले सेइ दुष्ट संग्रामे पशिल ❋ राम-अग्रे दु'चक्षेर ठुलि खसाइल
दर्पणास्त्रे रघुनाथ कैला आच्छादन ❋ यत बानरेर मुख हइल दर्पण
देखिल भस्माक्ष-वीर जाहार बदन ❋ मुख देखा नाहि गेल, देखिल दर्पण

वर पाकर निशाचर तो बड़ा खुश हुआ लेकिन उस पापी के पास उसके स्त्री पुत्र नहीं रहे। ऐसा पापी आज रण में आया हुआ है। हे प्रभु, इसके साथ युद्ध करते हुए सावधान रहना ॥ २९१ ॥

विभीषण के वचन से यद्यपि श्रीराम विस्मित हुए, तथापि उन्होंने विभीषण से कहा, रण से भागूँगा नहीं, अवश्य ही इससे लड़ूँगा; चाहे मैं भस्म हो जाऊँ और चाहे वह। विभीषण ने कहा, प्रभु भयभीत न हों, उपाय की चिन्ता की जाय, यह अवश्य ही मरेगा। हे नारायण सुनो, मेरी एक मंत्रणा है। उसके सामने दर्पण धर दो। जैसे ही वह मुख देखने के लिए आयेगा दर्पण में अपना मुख देख पायेगा। दर्पण में अपना मुख देखकर निशाचर स्वयं भस्म हो जायगा, आपको कोई भय नहीं होगा। विभीषण ने जब ऐसा परामर्श दिया तो राम ने मित्र-मित्र कहकर उसे गले से लगा लिया। श्रीराम ने कहा, सारी सेना एक बगल हो जाओ जब तक कि इस राक्षस का विनाश न हो जाय। श्रीराम ने धनुष पर दर्पण अस्त्र लगाया। बाण छूटकर राम के सम्मुख बना रहा। राम के साथ जितने भी कपि थे, बाण के कारण सभी के मुख दर्पण बन गये ॥ २९२ ॥

ऐसे ही समय दुष्ट संग्राम में पिल पड़ा। राम के सम्मुख आ उसने दोनों आँखों से अँधेरियाँ हटा लीं। दर्पणास्त्र से रघुनाथ ने पहले ही सभी को ढक दिया था, सारे वानरों के मुख दर्पण बन गये थे।

शॆय्क पॊरुळैच् चॆऱुनर् शॆरुक्करुक्कुम्
ऎह्कदनिऱ् कूरिय दिल् ॥ ९ ॥

पौरुष से धन विपुल प्राप्त कर, दलन करो जो रिपु उद्दण्ड ।
धन से बढ़ कर नहीं जगत् में, शस्त्र अन्य है तीक्ष्ण प्रचण्ड ॥ ९ ॥

[विहित मार्ग से, पौरुष के बल पर] धन का पर्याप्त अर्जन करो। शत्रुओं के दर्प और धृष्टता का दलन करने योग्य धन से अधिक तीक्ष्ण शस्त्र और कोई नहीं है ॥ ९ ॥

ऒण्बॊरुळ् काळ्प्प इयट्रियार्क्कु ऎन्बॊरुळ्
एनै यिरण्डुम् ऒरुङ्गु ॥ १० ॥

श्रम-पौरुष से अर्जित धन का जिनके पास विपुल भण्डार ।
उन्हें न जग में कुछ कठिनाई, सुलभ सुयश-आनन्द अपार ॥ १० ॥

श्रम और पुरुषार्थ से अर्जित और सञ्चित विपुल धन-राशि धर्म और आनन्द दोनों की देनेवाली है। [धर्म से कमाया धन सभी लौकिक-पारलौकिक सुखों का अचूक साधन है।] ॥ १० ॥

अदिहारम् (अध्याय) ७७
पडैमाट्चि (सैन्य-विभव)

उरुप्पमैन् तुरुञ्जा वॆल्पडै वेन्दन्
वॆरुक्कैयुळ् ऎल्लाम् तलै ॥ १ ॥

हय-गज-रथ-पदाति चतुरंगिणि[1], तृणवत्[2] जिसको सकल विपत्ति ।
निर्भय विजयवाहिनी[3] ऐसी, नृप की सर्वोपरि सम्पत्ति ॥ १ ॥

सभी अंगों से परिपूर्ण (गज, रथ, अश्व, पदाती युक्त चतुरंगिणी), सभी बाधाओं से निर्भीक, विजयप्रदायिनी सेना ही राजा का सर्वोपरि धन है ॥ १ ॥

उलैविडत् तुरुञ्जा वन्कण् तॊलैविडत्तुत्
तॊल्पडैक् कल्लाल् अरिदु ॥ २ ॥

निज बल क्षीण हो रहा, त्यों-त्यों रिपु का बढ़ता प्रबल दबाव ।
सहज क्रमागत[4] क्षत्रियत्व ही है समर्थ, कर सके बचाव ॥ २ ॥

युद्ध में अपनी संख्या की कमी और संकटापन्न अवस्था होते हुए भी सारी बाधाओं और रण के आघातों का सामना करने की निर्भीकता, मूल-

१ घोड़ा, हाथी, रथ, पैदल से युक्त चतुरंगिणी फ़ौज २ तिनके के समान
३ सदा जीतनेवाली सेना ४ पुश्त दर पुश्त के वीर, अनेक युद्ध जीते हुए वीर ।

सैन्य के अतिरिक्त और किसी सैन्य में नहीं होती। [मूल-सैन्य, वेतनभोगी-सैन्य, ग्राम-सैन्य, वन्य-सैन्य, सहायक-सैन्य, शत्रु-सैन्य, सेना के इन ६ प्रकारों में से मूल-सैन्य ही सर्वोत्कृष्ट होता है। मूल-सैन्य वह सेना है जो राष्ट्र की रक्षा को अपना कर्तव्य समझ कर, बिना किसी लोभ और भय के, प्राणोत्सर्ग करने का सहज स्वभाव रखती है] ॥ २ ॥

ऑलित्तक्काल् ऍन्नाम् उवरि ऍलिप्पहै ?
नाहम् उयिर्प्पक् कॆडुम् ॥ ३ ॥

दल असंख्य चूहों का उमड़ा, गरजा-घुमड़ा सिन्धु समान।
विषधर की फुफकार मात्र से रहा न उनका नाम निशान ॥ ३ ॥

चूहों (के विशाल समूह) जैसी दुश्मनों की सेना सागर की तरह गर्जना करे तो भी क्या ? (वीर-रूपी) नागराज की एक फुफकार से ही उनका सर्वनाश हो जायेगा ॥ ३ ॥

अऴिविन्ऱु अऱैपोहा दाहि वऴिवन्द
वन्कह णदुवे पडै ॥ ४ ॥

है अतीत[1] रण-गौरव जिनका, स्वामिभक्त, अतुलित बलवन्त।
वही सैन्य आदर्श सैन्य है, उसी सैन्य की शक्ति अनन्त ॥ ४ ॥

युद्ध में नाश को न प्राप्त होनेवाली, शत्रुओं द्वारा प्रवंचित न होने वाली, वंशानुगत वीरता वाली ही सेना (वस्तुतः श्रेष्ठ सेना) है ॥ ४ ॥

कूट्ऱुडन्ऱु मेल्वरिनुम् कूडि ऍदिर्निऱ्कुम्
आट्ऱ लदुवे पडै ॥ ५ ॥

कोप कराल काल का, यम से भी लड़ने को जो कटिबद्ध।
वही वस्तुतः सैन, विषम रिपु के सम्मुख टिकती सम्बद्ध[2] ॥ ५ ॥

स्वयं यमराज क्रुद्ध हो आक्रमण कर बैठे, तो भी एक साथ मिलकर सामना करने की सामर्थ्य (और साहस) जिसमें हो वही सेना (वस्तुतः श्रेष्ठ सेना) है ॥ ५ ॥

मऱमानम् माण्ड वऴिच्चॆलवु तेट्ऱम्
ऍन्नान्गे एमम् पडैक्कु ॥ ६ ॥

परम्परा का शौर्य[3], पराक्रम, रण-गौरव, नृप का विश्वस्त।
चार गुणों से युक्त सैन ही सैन ! शत्रु को करती ध्वस्त ॥ ६ ॥

शौर्य, मान, पूर्व वीरों द्वारा ग्रहीत सन्मार्ग का अनुसरण, राजा अथवा नेता की विश्वासपात्रता— सेना के ये चार श्रेष्ठ गुण हैं ॥ ६ ॥

---

१ बीता हुआ इतिहास २ एकजुट होकर ३ पुश्तों की वीरता।

तार्ताङ्गिच् चॆलूवदु तानै तलैवन्द
पोर्ताङ्गुम् तऩ्मै अऱिन्दु ।। ७ ।।

हमले की चपेट को सहकर, रिपु की युद्धनीति को जान,
प्रत्याक्रमण[1] शत्रु पर करना, कुशल सैन्य की यह पहचान ।। ७ ।।

स्वयं पर आक्रमण करनेवाले शत्रु की युद्ध में जमे रहने की सामर्थ्य अथवा व्यूह-रचना को जानकर, उनकी धूल से स्वयं को बचाकर उनपर प्रति-आक्रमण करना ही (सेना के लिए) श्रेयस्कर है ।। ७ ।।

अडट्ट्रहैयुम् आट्ट्रलुम् इल्लॆनिऩुम् तानै
पडैत्तहैयाल् पाडु पॆऱुम् ।। ८ ।।

हमला करने में अशक्त, प्रतिरक्षा[2] में भी हैं असमर्थ ।
किन्तु कुशल रणसज्जा[3], रूपक[4] भी कर देता रिपु को व्यर्थ ।। ८ ।।

(स्वयं) आक्रमण करने की वीरता अथवा (स्वयं पर) आक्रमण होने पर सामना कर सकने की सहनशक्ति न होने पर भी सेना अपने बाह्य अलंकारों (सुअलंकृत रथ, गज, अश्व, पताका, छत्र आदि) के कारण गौरव पा जाती है ।। ८ ।।

शिऱुमैयुम् शॆल्लात् तुऩियुम् वऱुमैयुम्
इल्लायिऩ् वॆल्लुम् पडै ।। ९ ।।

किसी हेतु से निर्बलता-भय, [प्रभु से] घृणा, दैन्य[5] का भाव—
निश्चय विजयवाहिनी ! जिसमें इन कमियों का निपट अभाव ।। ९ ।।

(स्वयं की शक्ति घटती जाने के कारण) क्षीण, मन में (नेता के दुर्व्यवहार के कारण उसके प्रति) घृणा, अथवा (वेतन आदि धन न प्राप्त होने से) दैन्य, जिस सेना में नहीं होगा वह (शत्रु पर) विजय प्राप्त करेगी । (जिस सेना का संख्या-बल क्षीण नहीं है, नेता के प्रति सतत अविश्वास के कारण जिसका आत्म-बल क्षीण नहीं है, और जिसका अर्थ-बल क्षीण नहीं है, वैसी सेना ही शत्रु पर विजय प्राप्त कर सकेगी) ।। ९ ।।

निलैमक्कळ् शाल उडैत्तॆनिऩुम् तानै
तलैमक्कळ् इल्वऴि इल् ।। १० ।।

सेना में असंख्य मर-मिटनेवाले हैं बलिदानी शूर ।
कुशल सेनपति - सञ्चालक के विना सफलता कोसों दूर ।। १० ।।

---

१ जबाबी हमला २ बचाव का युद्ध ३ व्यूहरचना ४ ऊपरी दिखाव, साज-बाज ५ दीनता, अर्थाभाव ।

किसी सेना में, दीर्घकाल तक स्थिर रहकर युद्ध कर सकनेवाले वीर चाहे असंख्य हों, परन्तु यदि उसमें योग्य नेतृत्व करनेवाला नेता नहीं है तो वह सेना निष्प्रयोजन सिद्ध हो जाती है ।। १० ।।

अदिहारम् (अध्याय) ७८
पडैच् चॆरुक्कु (सैन्य-गौरव)

ऎन्नैमुन् निल्लन्मिन् तॆव्विर्; पलर्ऎन्नै
मुन्निन्ऱु कल्निन् ऱवर् ।। १ ।।

मेरे प्रभु से रण लेना, शत्रुओ ! व्यर्थ सर्वथा गुमान ।
प्रभु से हत असंख्य रिपुओं की मृतकशिला[1] हैं विजय-निशान ।। १ ।।

शत्रुओ ! मेरे नेता के समक्ष युद्ध के लिए खड़े मत होओ; मेरे नेता के समक्ष युद्ध के लिए आकर, मृत्यु को प्राप्त हो, शिलावत् हो चुके कई लोग हैं ।। १ ।।

कान मुयलॆय्द अम्बिनिल् यानै
पिऴैत्तवेल् एन्दल् इनिदु ।। २ ।।

वन में शशक[2] सशंक भागते का अचूक भी व्यर्थ शिकार ।
अस्त्र धन्य ! गज पर प्रतक्ष यदि किया, भले वह निष्फल वार ।। २ ।।

वन में भागते खरगोश को अचूक निशाना बनानेवाले तीर को धारण करने की अपेक्षा, खुले स्थान पर खड़े हाथी पर निशाना साधकर चूके हुए भाले को धारण करना श्रेयस्कर है । (पलायन करते कायर शत्रु को मारकर विजयी होने की अपेक्षा, वीरतापूर्वक सामना करनेवाले शत्रु के सम्मुख असफल होना श्रेयस्कर है ।) ।। २ ।।

पेराण्मै ऎन्ब तऱुकण्; ऒन्ऱु उऱ्ऱक्काल्
ऊराण्मै मट्ऱदन् अक्हु ।। ३ ।।

रण में अटल प्रचण्ड शौर्य्य साकार वीर की है तलवार ।
त्रस्त विपन्न शत्रु पर करुणा किन्तु खड्ग[3] की तीखी धार ।। ३ ।।

शत्रुओं का सामना करनेवाली वीरता को (शास्त्रकार) लोग उच्च-कोटि का पौरुष मानते हैं, (परन्तु) संकट आने पर शत्रु का उपकार करना, यह उस पौरुष की तीखी धार (अर्थात् परिसीमा) है, यह शास्त्रकारों का कथन है ।। ३ ।।

---

१ युद्धाहतों की स्मारकशिलाएँ २ खरगोश, खरहा ३ तलवार ।

कैवेल् कळिट्रोडु पोक्कि वरुबवन्
मॆय्वेल् पऱिया नहुम् ।। ४ ।।

रिपु-मतंग[1] में धाँस शेल[2] निज, निज उर से रिपु-शेल[3] निकाल ।
काल-सदृश, रिपु पर प्रहार हित सुस्मित[4] —वही शूर विकराल ।। ४ ।।

हाथ के भाले को [शत्रु के] गज पर संधान कर, अन्य भाले को प्राप्त करने का प्रयत्न करता [निरस्त्र] वीर, अपनी छाती पर आकर लगे भाले को देखकर हर्षित हुआ और उसे खींचकर सन्नद्ध हुआ। (वीर के साहस और युद्धप्रियता के लिए कहा गया है कि हाथी जैसे भयंकर प्राणी के साथ युद्धकर, उसे पराजित कर निःशस्त्र हो चुका वीर, फिर से लड़ने के लिए शस्त्र की तलाश में है और इसलिए भाले को पाकर वह हर्षित हुआ; चाहे फिर वह उसकी छाती में आ लगा भाला ही क्यों न हो; छाती के घाव की परवाह न करता हुआ वह फिर सन्नद्ध हो गया।) ।। ४ ।।

विऴित्तकण् वेल्कॊण्डु ऎऱिय अऴित्तिमैप्पिन्
ओट्टन्ऱो वन्कण वर्क्कु ।। ५ ।।

झपक गई यदि आँख, शत्रु का ज्योंही हुआ खड्ग-सञ्चार ।
क्या यह नहीं पराभव[5] रिपु से ? क्या यह नहीं शत्रु से हार ? ।। ५ ।।

शत्रु को क्रुद्ध हो देखनेवाली आँख, शत्रु द्वारा संधानित भाले को देखकर यदि झपक जाये तो क्या वह वीर की पराजय नहीं है ? (वह निश्चय दुर्बलता का प्रतीक है।) ।। ५ ।।

विऴुप्पुण् पडादनाळ् ऎल्लाम् वऴुक्किनुळ्
वैक्कुम्तन् नाळै ऎडुत्तु ।। ६ ।।

दिवस गये वे व्यर्थ, न जिनमें तन पर लगे युद्ध के घाव ।
'रण में घाव', यशी जीवन है—यही शूर का सहज स्वभाव ।। ६ ।।

वीर, अपने बीते दिनों की गणना कर, उसमें से उन दिनों को निष्प्रयोजन दिन मानकर घटा देता है, जब उसके शरीर पर गहरे घाव नहीं लगे ।। ६ ।।

शुऴलुम् इशैवेण्डि वेण्डा उयिरार्
कऴल्याप्पुक् कारिहै नीर्त्तु ।। ७ ।।

अमर कीर्ति की अमर लालसा, प्राणों का न मोह-सञ्चार ।
पद के रण-कंकण[6] की झंकृति[7] करती उनका सुयश-प्रसार ।। ७ ।।

---

१ शत्रु के हाथी २ बर्छी ३ शत्रु द्वारा मारी गई अपनी छाती में लगी बर्छी ४ विहँसता हुआ ५ दब जाना ६ जूझ का कड़ा सैनिक के पैर में ७ झंकार ।

विश्व-व्यापी कीर्ति की लालसा में, प्राणों का मोह न रखनेवाले वीर द्वारा पैरों में पहना हुआ कड़ा उसकी शोभा का कारण होता है ॥ ७ ॥

उऱिऩुयिर् अञ्जा मऱवर् इऱैवऩ्
शॆऱिऩुम्शीर् कुऩ्ऱल् इलर् ॥ ८ ॥

युद्ध देखकर, रण-उमंग में, एकमात्र रण का उत्साह।
नृप-निषेध का भी न ध्यान है, प्राणों की न उन्हें परवाह ॥ ८ ॥

युद्ध आने पर प्राणों का भय न रख युद्ध के लिए सन्नद्ध वीरों का गुण (युद्धोत्साह), राजा स्वयं (युद्ध से) रोके तो भी, कुंठित नहीं होता ॥ ८ ॥

इऴैत्तदु इहवामैच् चावारै यारे
पिऴैत्तदु ऒऱुक्किऱ्पवर् ? ॥ ९ ॥

प्रण-पालन में प्राण किये उत्सर्ग, भले बन सका न काम।
बलिदानी इनको, न जगत् में कोई कर सकता बदनाम ॥ ९ ॥

अपने प्रण को सत्य सिद्ध करने के लिए प्राणों का त्याग करने को प्रस्तुत वीरों को, विफलता के अपराध में दंडित करने की सामर्थ्य भला किसमें है ? (प्राणोत्सर्ग से उन्होंने अपनी सफलता सिद्ध कर दी। सफलता-विफलता तो विधाता के विधान अथवा अन्य कारणों पर निर्भर है।) ॥ ९ ॥

पुरन्दार्कण् नीर्मल्हच् चाहिऱ्पिऩ् शाक्काडु
इरन्दुकोळ् तक्कदु उडैत्तु ॥ १० ॥

जिसकी वीरमृत्यु सुनकर नृप-नयनों से बहती जलधार।
भीख माँगकर वाञ्छनीय है ऐसी मृत्यु कीर्ति-आगार[1] ॥ १० ॥

(वीर की) मृत्यु का समाचार पाकर यदि (उसके) संरक्षक राजा की आँखों से जलधार बहे तो (उस वीर के लिए) याचना करके प्राप्त करने पर भी वह मृत्यु श्रेष्ठ वस्तु होगी ॥ १० ॥

अदिहारम् (अध्याय) ७९
नट्पु (मैत्री)

शॆयऱ्करिय यावुळ नट्पिऩ् ? अदुबोल्
विऩैक्करिय यावुळ काप्पु ? ॥ १ ॥

१ यश का धाम।

भला मैत्री से बढ़कर जग में है दुर्लभ कौन पदार्थ ?
रिपु से रक्षा करने में, बन्दिश[1] न चौकसी[2] अन्य यथार्थ ॥ १ ॥

मैत्री के सदृश करने योग्य कौन सा कार्य है ? और उसके सदृश शत्रु-रक्षा में समर्थ और कौन सी वस्तु है ? (अनन्य है) ॥ १ ॥

निऱैनीर नीरवर् केण्मै पिऱैमदिप्
पिन्नीर पेदैयार् नट्पु ॥ २ ॥

सुदृढ़ मित्रता बुद्धिमान् की चन्द्रकला सा नित्य विकास।
क्षीण मित्रता बुद्धिहीन की पूर्णचन्द्रवत् दिन-दिन ह्रास ॥ २ ॥

बुद्धिमानों की मैत्री चन्द्रमा की बढ़ती कला के समान होती है, जबकि बुद्धिहीनों की मैत्री पूर्णिमा के बाद के चन्द्रमा की कला की तरह (दिन-प्रतिदिन घटनेवाली) होती है ॥ २ ॥

नविल्दॊॊऱुम् नूल्नयम् पोलुम् पयिल्दॊॊऱुम्
पण्बुडै याळर् तॊॊडर्पु ॥ ३ ॥

सज्जन का सत्संग दिनोदिन करता है सुख में अभिवृद्धि।
जिस प्रकार सद्ग्रन्थ-मनन से होती नित्य ज्ञान में वृद्धि ॥ ३ ॥

ज्यों-ज्यों सम्पर्क बढ़ता जाता है, गुणवान् व्यक्तियों की मैत्री अधिकाधिक आनन्द देती जाती है, जिसप्रकार अध्ययन (मंथन) करते-करते सद्ग्रन्थ का आनन्द (और ज्ञान) बढ़ता जाता है ॥ ३ ॥

नहुदऱ् पॊॊरुट्टन्ऱु नट्टल्; मिहुदिक्कण्
मेऱ्शॆन्ऱु इडित्तऱ् पॊॊरुट्टु ॥ ४ ॥

इतना नहीं निमित्त, मित्र से करलें केवल हासविलास।
लख कुपन्थ, अंकुस कठोर[3] से लाओ उसे सुपथ के पास ॥ ४ ॥

मैत्री का उद्देश्य परस्पर हँसी-मज़ाक मात्र नहीं है; वरन् सीमा का अतिक्रमण कर किसी कार्य पर तत्पर मित्र को आगे बढ़कर कठोरता से रोकना (भी) है ॥ ४ ॥

पुणर्च्चि पऴहुदल् वेण्डा; उणर्च्चिदान्
नट्पाम् किऴमै तरुम् ॥ ५ ॥

मिलना-जुलना, साथ-संग नित, नहीं मित्रता का आधार।
हृदय मिले, भावना मिलीं— बस सुदृढ़ मित्रता सागर-पार ॥ ५ ॥

---

१ दूरदर्शिता, पहले से उपाय २ सावधानी ३ कठिन भर्त्सना और वर्जना से रोकथाम

मैत्री-स्थापना के लिये संपर्क और परिचय की आवश्यकता नहीं; भावना की समानता ही मैत्री का अधिकार (दे) देगी। (भले ही मित्र फिर कितना ही दूर और प्राय: भेंट के लिए दुर्लभ हो।) ॥ ५ ॥

मुहनह नट्पदु नट्पत्रु; नॆञ्जत्तु
अहनह नट्पदु नट्पु ॥ ६ ॥

मुख पर है मुस्कान, मित्रता का यह केवल नहीं प्रमान[1]।
अन्तस् का सौहार्द[2] प्रकट करता है सही मित्र का मान[3] ॥ ६ ॥

केवल मुख पर हसी प्रकट हो जाये तो वह मैत्री नहीं। हृदय भी खिल जाये ऐसे आंतरिक प्रेम से मित्रता करना ही मैत्री है ॥ ६ ॥

अऴिवि नवैनीक्कि आरुय्त्तु अऴिविन्कण्
अल्लल् उऴप्पदाम् नट्पु ॥ ७ ॥

बुरी राह से दूर हटाकर, उसे चलाता सुन्दर राह।
दुर्दिन में दुख का भागी बन, मित्र संग करता निर्वाह ॥ ७ ॥

विनाशक मार्ग से दूर हटाकर, सुमार्ग पर चलाकर, विनाशकाल (आ ही जाये तो उस) में साथ रहकर दुख का सहभागी होना ही मैत्री (का लक्षण) है ॥ ७ ॥

उडुक्कै इऴन्दवन् कैपोल आङ्गे
इडुक्कण् कळैवदाम् नट्पु ॥ ८ ॥

वस्त्र खिसकते को सम्हालने में तत्पर तुरन्त हैं हाथ।
विपत्ति-ग्रस्त यदि मित्र, सम्हालें, प्रस्तुत रहें मित्र के साथ ॥ ८ ॥

कटि से खिसकते वस्त्र को झट थाम लेनेवाले हाथों की तरह, मित्र पर आपदा आते ही तुरन्त उपस्थित हो उसे दूर करना ही मैत्री है ॥ ८ ॥

नट्पिर्कु वीट्रिरुक्कै यादॆनिल् कॊट्पिन्रि
ऒल्लुम्वाय् ऊन्रुम् निलै ॥ ९ ॥

समय पड़े पर, अपने वश भर, बाकी रखती नहीं उपाय।
रानी हृदयासन की ऐसी, अहो! 'मित्रता' सदा सहाय ॥ ९ ॥

सर्वकाल में अभेद के साथ, यथाशक्ति सहायक हो अवलंब दे यही मैत्री का सर्वश्रेष्ठ राजासन है ॥ ९ ॥

इनैयर् इवरॆमक्कु इन्नम्याम् ऎन्रु
पुनैयिनुम् पुल्लॆन्नुम् नट्पु ॥ १० ॥

---

१ सुबूत, प्रमाण २ मित्रता ३ परिमाण, मापदण्ड।

लखनऊ के मौजूदः रंग पर एतिराज़ात किये हैं और मआसिर शुअ़रा पर नुक्तःचीनियाँ की हैं, जिससे हमें बहस नहीं। हमें सिर्फ़ यह बताना है कि उस ज़माने में शुरफ़ा व कुमला (कामिल लोग) दरकिनार, रंडियाँ तक आ आके लखनऊ में बसती जाती थीं। और जो लोग देहली में फूलवालों की सैर के रसिया थे, अब कर्बला और आठों के मेले में अपना दिल बहलाते थे।

शमसुल्उलमा मौलाना आज़ाद मर्हूम ने बाद के तमाम शुअ़राए-देहली व लखनऊ को बिला लिहाज़े इम्तियाज़ व अ़ह्द, एक जगह जमा करके और ज़माने की तनाबें[1] खींच के पाँचवाँ दौर बना दिया है, लेकिन यह नाइन्साफ़ी है, अस्ल पाँचवाँ दौर सिर्फ़ नासिख़ व आतश का था, जिसमें ज़बान ने नई वज़अ़ इख्तियार की, बहुत से पुराने मुहावरात तर्क हो गये, नई बन्दिशें पैदा हुईं और उस ज़बान की बुनियाद पड़ी जो बाद के शुअ़रा-ए-देहली, लखनऊ में यकसाँ तौर पर मक़बूल हुई और क़रीब-क़रीब वह ज़बान बन गई जो हिन्दोस्तान में मुस्तनद है और यही वह ज़माना था जब शायरी की क़लमरौ में पहले-पहल लखनऊ का सिक्का जारी हुआ।

इसके बाद छठा दौर वह था जब लखनऊ में वज़ीर, सबा, रिन्द, गोया, रश्क, नसीम दहलवी, असीर, नव्वाब मिर्ज़ा शौक़, और पंडित दयाशंकर नसीम साहिबाने-मसनवी देहली में मोमिन, ज़ौक़, ग़ालिब, नग़म-ए-शाअ़िरानः सुना रहे थे। इस दौर ने, सच यह है कि ज़बान को बलिहाज़े ख्यालात सबसे ज़ियादः तरक़्क़ी पर पहुँचा दिया।

इसके बाद सातवाँ दौर अमीर, दाग़, मुनीर, तस्लीम, मजरूह, जलाल, लताफ़त अफ़ज़ल और हकीम वग़ैरः का था।

इन आख़िरी दौरों पर ग़ायर नज़र डालने से साफ़ नज़र आ जाता है कि फ़साहते ज़बान और शाअ़िरी ने लखनऊ में कैसी मज़बूत जगह पकड़ ली थी। चन्द ही रोज़ में शेअ़र कहना, लखनऊ में एक वज़अ़दारी बन गयी और शुअ़रा की यहाँ इस क़द्र कसरत हो गयी कि शायद कहीं किसी ज़बान में न हुई होगी। औरतों तक में शेअ़रोसुख़न का चर्चा हुआ। और जुहला के कलाम में भी शाअ़िराना ख़याल आफ़रीनियों, तश्बीहों[2] और इस्तिआ़रों[3] की झलक नज़र आने लगी।

फलने-फूलनेवाली शाअ़िरी की तवारीख़

फ़ारसी शायरी का असली उठान मसनवी से हुआ है और यह सिनफ़े शाअ़िरी हमेशा सबसे ज़ियादः अहम और बावक़अ़त समझी गयी। इब्तिदा फ़िरदौसी से रज़मियः[4] शाहनामे से पड़ी। फिर निज़ामी, सादी, मौलाना-ए-राम ख़ुसरु, जामी, और हातफ़ी वग़ैरः ने इसमें आलातरीन शुहरत व नामवरी हासिल की। उर्दू में मीर तक़ी मीर ने छोटी-छोटी बहुत सी मसनवियाँ देहली व लखनऊ के क़ियाम के ज़माने में लिखी

---

१ रस्सियाँ, डोरियाँ २ उदाहरणों ३ न दिखाई देनेवाली चीज़ को साकार बनाना, जैसे 'आखों से तीर' ४ वीर-गाथा।

थीं। मगर वह इस क़द्र मुख़्तसर और मामूली है कि मसनवियों के तज़किरे में उनका ज़िक्र भी बेमहल सा मालूम होता है।

मसनवी लिखने का आग़ाज़ उर्दू में मीर ज़ाहिक के बेटे मीर ग़ुलाम हसन—हसन से हुआ जो बचपन ही में अपने पिदरे बुज़ुर्गवार के साथ लखनऊ चले आये थे। यहीं की सुहबत में उनका नशोनुमा हुआ था, यहीं परवरिश पायी थी और यहीं की आबोहवा के आग़ोश में उनकी शाअिरी पली थी। क्योंकि जिस तालीम और जिस सोसाइटी ने उनकी मसनवी बेनज़ीर व बद्रेमुनीर लिखवायी, वह ख़ालिस लखनऊ की थी। उसी ज़माने में मिर्ज़ा मुहम्मद तक़ी ख़ाँ हवस ने मसनवी 'लैला मजनूं' लिखी और लखनऊ में मसनविय्यत का मज़ाक़ बढ़ना शुरू हुआ। आतश व नासिख़ के ज़माने में तो ज़रा ख़ामोशी रही। मगर फिर तो जो यह मज़ाक़ उभरा तो पंडित दयाशंकर नसीम ने गुलज़ारे नसीम, आफ़ताबुद्दौला क़लक़ ने तिलिस्मेउलफ़त और नव्वाब मिर्ज़ा शौक़ ने बहारेइश्क़, ज़हरेइश्क़ और फ़रबेइश्क़ लिखीं। और उन्हें इस क़द्र आम नुमूदो-शुहरत और आलमगीर मक़बूलियत हासिल हुई कि हर अद्‌ना व आला की ज़बान पर इन मसनवियों के अश्‌आर चढ़ गए। इससे पेशतर के ज़माने में किसी साहब ने मसनवी मीर हसन के जवाब में लज़्ज़तेइश्क़ नाम की एक मसनवी लिखी थी, वह नवाब मिर्ज़ा शौक़ की मसनवियों के साथ शाया होने की वजह से उन्हीं की जानिब मंसूब हो गयी। लेकिन हक़ीक़त में न वह उनकी है और न उनके ज़माने की है।

इन सब मसनवियों के देखते, मसनवी गुलज़ारेनसीम बावजूद आम मक़बूलीयत के, सदहा ग़लतियों से ममलू है। देखने से मालूम होता है कि एक नाज़ुक ख़याल नौ-मश्क़[१] है जो हर क़िस्म की शाअिराना ख़ूबियाँ अपने कलाम में पैदा करना चाहता है, मगर क़ादिरुल्‌कलामी[२] के न होने से क़दम-क़दम पर ठोकरें खाता है और किसी जगह अपने मक़सद को नहीं हासिल कर सकता। इसके जवाब में आग़ा अली शम्‌स ने जो एक बहुत ही कुहनः[३] मश्क़ शाअिर थे, उसी बहर में एक मसनवी लिखी थी, जिसमें ग़लतियों से पाक रहके तश्‌बीहात, इस्तिआरात और रिआयतेलफ़्ज़ी के कमालात दिखाये थे। मगर अफ़सोस, वह मसनवी मिट गयी और गुलज़ारेनसीम को जो शुहरत हासिल हो चुकी थी, उस पर ग़ालिब न आ सकी। देहली में उन दिनों मोमिन ख़ाँ ने चन्द छोटी-छोटी बेमिस्ल मसनवियाँ लिखीं जो बहुत ही मक़बूल और मशहूर हुईं।

मोमिन ख़ाँ के मज़ाक़ेशाअिरी में नाज़ुक ख़याली बढ़ी हुई थी। ख़याली तश्‌बीहों और इस्तिआरों पर वह अपनी सुख़न आफ़रीनी की इमारत क़ायम करते थे। मसनवियों में वह ज़ियादःतर ख़याली जज़्बात व सिफ़ात को मुशख़्ख़स[४] करके अपने कलाम में एक ख़ास लुत्फ़ पैदा किया करते थे। मोमिन ख़ाँ के एक शागिर्द नसीम

---

१ नया अभ्यासी, नवसिखिया २ कलाम पर अधिकार ३ प्रवीण (पुराने) ४ मुक़र्रर।

देहलवी, लखनऊ में आये और यहाँ के मुशाअ़रों में अपना रंग ऐसा जमाया कि बहुत से लोग उनके शागिर्द हो गये। नसीम देहलवी ने लखनऊ में अपने उस्ताद के रंग को ख़ूब चमकाया और उनके शागिर्द तस्लीम लखनवी ने उर्दू मसनवी में नज़ीरी व अुरफ़ी व साइब की खयालआराइयाँ दिखा दीं और नज़्मेउर्दू में जीते-जागते फ़ैज़ी व ग़नीमत लाके खड़े कर दिये। इधर आखिर ज़माने में मौलवी मीर अली हैदर तबातबाई नज़्म लखनवी ने शराब की मज़म्मत में साक़ी नाम-ए-शक़शक़िय्या के नाम से एक ऐसी बेनज़ीर अखलाक़ी नज़्म उर्दू पब्लिक के सामने पेश कर दी कि उसका जबाब नहीं हो सकता। ग़रज़ कि मोमिन खाँ की चन्द मुख़तसर मसनवियों से अगर क़तअ़नज़र कर ली जाये तो उर्दू मसनवीगोई का आग़ाज़[1] भी लखनऊ में हुआ और तरक़्क़ी भी यहीं हुई।

बाज़ हज़रात मसनवी मीर हसन और गुलज़ारे नसीम के ज़रीये से देहली और लखनऊ की ज़बान का मुक़ाबला व मुवाज़नः[2] किया करते हैं, जिस खयाल को मौलवी मुहम्मद हुसैन साहब आज़ाद ने और ज़ियादः क़ुव्वत दे दी। लेकिन अव्वल तो गुलज़ारेनसीम को नज़ीर अकबराबादी के बंजारानामे की तरह अगर शुहरत हो भी गयी तो उसे मसनवी मीर हसन के मुक़ाबले में रखना, उर्दू शाअ़िरी की सख्त तज़्लील[3] व तौहीन है। सही मुक़ाबला हो सकता है तो मसनवी मीर हसन और मसनवी तिलिस्मे उलफ़त का। और अगर गुलज़ारेनसीम की ज़बान ज़बर्दस्ती लखनऊ की ज़बान मान भी ली जाये तो मसनवी मीर हसन और गुलज़ारनसीम का मुक़ाबला देहली और लखनऊ की शाअ़िरी का नहीं बल्कि ख़ुद लखनऊ की अगली-पिछली ज़बानों का मुक़ाबला है। इसलिए कि मसनवी मीर हसन, लखनऊ की पहली ज़बान का नमूना है और यह आख़िरी ज़बान का।

शाअ़िरी की एक अहम और क़दीमतरीन सिन्फ़् मर्सियःख्वानी है। क़दीम अरबी शाअ़िरी में ज़ियादःतर मर्सिये और रज्ज़ ही शेअ़रोसुख़न में इज़्हारेकमाल का ज़रीअ़ः थे। फ़ारसी में मर्सियःख्वानी कमज़ोर पड़ गयी थी। लेकिन बअ़हदेसलातीने-सफ़वीयः, ईरान में मज़हबेशीअ़ः को फ़रोग़ हासिल हुआ तो मसाइबे[4]-अहलेबैते-रिसालत की याद ताज़ा करने के लिए शुअ़रा को मर्सियःख्वानी की तरफ तवज्जुह हुई। मौलाना मुहतशिम काशी ने चन्द बन्दों का एक बेमिस्ल मर्सियः लिखा था जो उमूमन मक़बूल हुआ। इसके बाद से रिवाज था कि शुअ़रा कभी-कभी मातमे-हुसैन में दो एक मर्सिये भी मौज़ूँ कर दिया करते। लेकिन शेअ़रोसुख़न की दुनिया में मर्सियःगोई की वक़अ़त इस क़द्र कम थी कि मशहूर था "बिगड़ा शाअिर मर्सियःगो" फिर जब मज़हबी एतिबार से दौलतेसफ़्विय्यएमर्हूमः की जानशीन, अवध की सल्तनत क़रार पायी तो लखनऊ में मजालिस की तरक़्क़ी व अ़ज़ादारी के जोशोख़रोश ने मर्सियःगोई की ऐसी क़द्रदानी की कि इस फ़न को ग़ैर मामूली उरूज हासिल होना

---

१ आरम्भ, उदय २ समानता व तुलना ३ अपमान ४ मुसीबत।

शुरू हुआ और दरअसल लखनऊ के उरूज का सारा राज़ इसी तारीखी वाक़िअे में मुस्‌तर है। हिन्दोस्तान में मुग़लों की सल्तनत थी जिन्होंने फ़ारसी ज़बान को दरबारी ज़बान क़रार दिया और फ़ारसी मुआशरत उनकी अमीराना ज़िन्दगी और उनके तमाम कमालात का मर्कज़ थी। नतीजा यह था कि हर ईरानी हिन्दोस्तान में आते ही आखों पर बिठाया जाता और उसकी हर हरकत और हर वज़अ मक़बूलीयत की निगाहों से देखी जाती। देहली की सल्तनत में शाहों का मज़हब सुन्नी होने की वजह से, ईरानी अपनी बहुत सी बातों को छुपाते और वहाँ की महफ़िलों में इसक़द्र शिगुफ़्तः न होने पाते जिस क़द्र कि वह अस्ल में थे। अवध का दरबार शीअः था और यहाँ का खानदाने हुक्मरानी खास खुरासान से आया था, इसलिए ईरानी यहाँ बिल्कुल खुल गये। और अपने असली रंग में नुमायाँ होने की वजह से वह जिस क़द्र शिगुफ़्तः हुए उसी क़द्र ज़ियादः हममज़हबी के बाअिस यहाँ के अह्लेदरबार ने उनके औज़ाअ व अतवार[१] को हासिल करना शुरू किया और ईरानियत जो दरअस्ल सासानी और अब्बासी शानोशौकत के आग़ोश में पली हुई थी, चन्द ही रोज़ के अन्दर लखनऊ की मुआशरत में सरायत कर गयी।

ग़रज़ सौदा, मीर के ज़माने में मियाँ सिकन्दर, गदा, मिस्कीन और अफ़सुर्दः मर्सियःगो थे जो छोटी-छोटी नज़्में शहादते इमाम हुसैन के बयान में तस्नीफ़ करके मजलिसों में सुना दिया करते। उनके बाद मीर खलीक़ और मीर ज़मीर ने मर्सियःगोई को बहुत तरक़्क़ी दी और मर्सियों की मौजूदः वज़अ भी इन्हीं के ज़माने में ईजाद हुई। यहाँ तक कि ज़माना, मीर ज़मीर के शागिर्द मिर्ज़ा दबीर और मीर खलीक़ के साहबज़ादे मीर अनीस को नामवरी के शहनशीन पर लाया। और इन दोनों बुज़ुर्गों ने मर्सियःख्वानी में ऐसे-ऐसे कमालातेशाअिरी दिखाये कि शेअ्रो-सुखन के आसमान पर आफ़ताबोमहताब बन के चमके। वही मुक़ाबला जो मीर व सौदा और आतश व नासिख में रहा था अब मीर अनीस और मिर्ज़ा दबीर में क़ायम हुआ। मिर्ज़ा दबीर में शौकतेअल्फ़ाज़ थी, बलन्द खयाली थी और इल्म व फ़ज़्ल का ज़ोर था। मीर अनीस में सादी, बेतकल्लुफ़ और जज़बातेइन्सानी पर हुकूमत करनेवाली ज़बान की वह खूबियाँ थीं जो सिवा मबदएफ़य्याज़[२] की इनायत के सीखने से नहीं आ सकतीं। इन दोनों बुज़ुर्गों ने फ़न्ने मर्सियःगोई को शायरी की और तमाम अस्नाफ़ से बढ़ा दिया, और उर्दू अदब में वह नई चीज़ें पैदा कर दीं जिनको अंग्रेज़ी तालीम के असर से तबिअतें ढूँढ़ने लगीं थीं। अनीस व दबीर ने मर्सियःगोई को उस दर्जए-कमाल पर पहुँचा दिया था कि अब मर्सियःगोई बजाये मायूब होने के सबसे बड़ा शाअिरानः हुनर बन गई थी। तमाम अह्लेलखनऊ इन दोनो बुज़ुर्गों के इस क़द्र मुअ्‌रिफ़[३] व मद्दाह हुए कि सारा शहर दो ग्रोहों में बटा हुआ था और हर सुखनसंज[४] या अनीसिया था या दबीरिया और इन दोनों गरोहों में हमेशा बाहमी मुखालिफ़त रहती।

१ तौरो तरीक़: २ खुदा ३ तारीफ़ करनेवाले ४ शाअिर।

मीर अनीस ने मर्सियःगोई के साथ मर्सियःख्वानी को भी एक फ़न बना दिया। यूनानियों के बाज़ मुक़र्रिरों और ख़तीबों की निस्बत सुना जाता है कि उन्होंने अपनी तक़रीरों में असर पैदा करने के लिए ख़ास-ख़ास कोशिशें की थीं और आवाज़ के नशेबोफ़राज़[1] और औज़ाअ् व अतवार के तग़य्युरात से गुफ़्तुगू में असर पैदा करते थे। इस्लाम की इस तूलानी उम्र में इस निहायत ज़रूरी फ़न को उसूल के साथ ख़ास मीर अनीस ने ज़िन्दः किया। अलफ़ाज़ के मुनासिब आवाज़ के तग़य्युरात और मज़ामीन के मुवाफ़िक़ चेहरा बना लेने, कलाम को आज़ा व जवारेह[2] के मुनासिब हरकात और ख़तोख़ाल के इशारात से क़ुव्वत देने का फ़न ख़ास लखनऊ की और वह भी मीर अनीस के घराने की ईजाद है। जिसकी तरक़्क़ी में अब तक कोशिशें जारी हैं और हमारे स्पीकर अपनी फ़सीहुल्बयानी में असर पैदा करने के लिए अगर इन बाकमालों की शागिर्दी करें तो निहायत ही कामियाब स्पीकर साबित हों।

ड्रामा का फ़न्नेसुख़न जो मग़रिबी[3] शाअ़िरी की जान है, उससे अरबी व फ़ारसी का अदब मुतलक़न ख़ाली था और फ़ारसी की शागिर्दी की वजह से उर्दू में भी इसकी तरफ़ कभी तवज्जुह नहीं की गई। संस्कृत में आला दर्जे के ड्रामा थे मगर उनसे हिन्दोस्तान की आख़िरी सोसायटी बिल्कुल नाआशना हो चुकी थी। रामचन्द्रजी और श्रीकृष्णजी के कारनामे अलबत्ता हिन्दुओं में मज़हबी आदाब के साथ दिखाए जाते थे मगर उर्दू शाअ़िरी को उनसे किसी क़िस्म का तअल्लुक़ न था। रामचन्द्रजी के हालात इंगलिस्तान के उलम्पिया की तरह खुले मैदानों में रज़्मियः नक़्क़ालियों की शान से दिखाए जाते और श्रीकृष्णजी के हालात रक़्स व सुरूद और मूसीक़ी[4] के पैराए में मज़हबी स्टेजों पर बअ़ीनः उपैरा के तरीक़े से नज़र आते जो 'रहस' कहलाते। वाजिदअलीशाह को 'रहस' से ख़ास दिलचस्पी पैदा हो गई और 'रहस' के प्लाट से माख़ूज़ करके उन्होंने एक ड्रामा तैयार किया जिनमें वह कन्हैय्या जी बनते या इश्क़ के सताए हुए जोगी बन के धूनी रमाते और बहुत सी औरतें, परियाँ और आशिक़मिज़ाज गोपियाँ बनके उन्हें ढूँढ़ती फिरतीं। फिर जब क़ैसरबाग़ के मेलों का दरवाज़ा अवामुन्नास के लिए भी खुल गया तो सारे शहर के शौक़ीनों में ड्रामः का फ़न ख़ुद बख़ुद तरक़्क़ी करने लगा। और चन्द ही रोज़ में इस शौक़ को इस क़द्र तरक़्क़ी हुई कि बाज़ मशहूर शुअ़रा भी उस ज़माने के मज़ाक़ के मुताबिक़ तबअ् आज़माइयाँ करने और ड्रामः लिखने लगे। चुनांचिः वाजिदअली शाह के शौक़ के साथ ही, मियाँ अमानत ने जो एक मशहूर मश्शाक़ शाअ़िर थे इन्द्रसभा लिखी और मौजूदा अह्द की कम्पनियों की तरह शहर में जा बजा मुख़्तलिफ़ जमाअ़तें उनकी "इन्द्रसभा" को स्टेज पर खेलने लगीं, जिनमें कहीं औरतें और कहीं लड़के एक्ट करते। इस इन्द्रसभा में उसूलें मूसीक़ी के मुताबिक़ दिलकश धुनें क़ायम की गईं और सारा शहर इन्द्रसभा के जलसे देखने का मुश्ताक़ था। मियाँ अमानत की इन्द्रसभा की कामियाबियाँ देख के और लोगों को भी शौक़ हुआ और इस क़िस्म के बहुत से ड्रामे ईजाद हो गए। और सबका

१ उतार-चढ़ाव २ अंग ३ पच्छिमी ४ गाने-बजानेवाले।

नाम "सभा" क़रार पा गया। चुनांचिः शहर में मदारीलाल वग़ैरः की बहुत सी सभायें क़ायम हो गईं जिनके प्लाट बदले हुए थे।

सभा के नए रंग ने शहर में ऐसी ज़िन्दःदिली पैदा कर दी कि सिवा इन्द्रसभा के लोग किसी और क़िस्म का नाच-गाना पसन्द ही न करते थे। हर तरफ़ सभाओं की धूम थी और इसकी बुनियाद पड़ गई कि सोसायटी के मज़ाक़ के मुताबिक़ अगले आशिक़ानः क़िस्से नक़्ल के तौर पर अच्छी नज़्मों में और दिलकश मज़मून के साथ पब्लिक के सामने पेश किए जायें। इसमें शक नहीं कि पारसी थेटिरों ने अपनी इन्तिज़ामी ख़ूबियों और नुमायशी दिलफ़रेबियों की वजह से सभाओं का रंग फीका कर दिया, लेकिन यह न समझो की ड्रामा का वह पुराना मज़ाक़ जो लखनऊ में ईजाद होके मुरव्वज[1] हुआ था मिट गया। अव्वल तो पारसियों ने भी इस चीज़ को लखनऊ से लिया। उनका पहला आम खेल, अमानत की इन्द्रसभा था, और बावजूद इसके कि, लखनऊ में तमाम क़ौमी जलसों में आज तक सपेरे, हरीशचन्द्र वग़ैरः के ऐसे बीसियों परफ़ार्मेन्स[2] हो रहे हैं और इस मज़ाक़ के एक्टरों का एक मुस्तक़िल गरोह पैदा हो गया है जो शुरफ़ा में से क़ौमी मज़ाक़ उठ जाने पर भी अवाम को महज़ूज़[3] करता है। बहर तक़दीर, इसमें शक नहीं किया जा सकता कि उर्दू ड्रामा की बुनियाद ख़ास लखनऊ ही में पड़ी और यहीं से सारे हिन्दोस्तान में इसका रवाज हुआ।

उर्दू शाइ़री की एक क़िस्म वासोख़्त हैं। यह ख़ास क़िस्म के आशिक़ानः मुसद्दस[2] होते हैं और इनका मज़मून उ़मूमन् यह होता है कि पहले अपने इश्क़ का इज़हार, उसके बाद माशूक़ का सरापा, उसकी बेवफ़ाइयाँ, फिर उससे रूठ के, उसे यह बावर कराना कि हम किसी और माशूक़ पर आशिक़ हो गए, उस फ़र्ज़ी माशूक़ के हुस्नोजमाल की तारीफ़ करके माशूक़ को जलाना, छेड़ना, जली-कटी सुनाना और यूँ उसका ग़ुरूर तोड़के फिर मिलाप कर लेना। नज़्में उर्दू की यह क़िस्म लखनऊ ही से शुरू हुई। ज़मानए वस्त के क़रीब-क़रीब तमाम शाइ़रों ने वासोख़्त लिखे हैं और उनमें बड़े-बड़े लुत्फ़ पैदा किए हैं। देहली में भी बाद के ज़माने में मुख़्तलिफ़ वासोख़्त लिखे गये, ख़ुसूसन मोमिन खाँ ने कई अच्छे वासोख़्त लिखे, मगर आग़ाज़ लखनऊ ही से हुआ। उमरा की अय्याशानः तबीअ़तों ने शाइ़री की कई और सिनफ़ों को पैदा कर दिया जिनका आग़ाज़ देहली ही से हुआ था। उनमें सबसे ज़ियादः मुहमल हज़्लगोई है और किसी क़द्र पुरलुत्फ़ रेख़ती है। हज़्लगोई का आग़ाज़ देहली जाफ़र ज़टल्ली से हुआ जो ग़ालिबन मुहम्मद शाह के ज़माने में थे। उनके कलाम को मैंने अव्वल से आख़िर तक देखा है। सिवाये फ़ुहशगोई और हद से गुज़री हुई बेहयाई के, न कोई शाइ़रानः ख़ूबी नज़र आती है और न ज़बान का कोई लुत्फ़

१ प्रचलित २ स्वांग ३ ख़ुश।

है। इसके बाद देहली ही की खाक से साहिबक़िराँ[1] तख़ल्लुस बिलगिराम के एक हज़्लगो लखनऊ में आए और यहीं चमके। उनका नाम सैय्यद इमामअली था और आसिफ़ुद्दौलः के ज़माने में वारिदेलखनऊ हुए थे। मालूम होता है कि लखनऊ के मुब्तज़ल[2] मज़ाक़ वाले रईस ज़ादों में उनका नश्वनुमा हुआ। उनका दीवान मिलता है और गो कि कलाम फ़ुहश और तहज़ीब से कोसों दूर है, मगर फिर भी उसमें एक बात है। शाअ़िरानः ख़ूबियों के साथ ज़बान और मुहावरों का पूरा लुत्फ़ है। लेकिन इस फ़न को लखनऊ के आखिरी दौर में मियाँ मुशीर ने जो मिर्ज़ा दबीर के शागिद थे, कमाल के दर्जे को पहुँचा दिया।

मुझे इस मौक़े पर बिला लिहाज़ इसके कि शीओं और सुन्नियों के मुतअ़स्सिबानः जज़बात का लिहाज़ करूँ, यह बता देना ज़रूरी है कि लखनऊ में जब शिअ़: सल्तनत क़ायम हुई तो शीअ़त ने अपने असली रंग को क़ायम रखके, कमाल आज़ादी के साथ अपने हर उसूल में तरक़्क़ी शुरू की। मज़हबेशिअ़: की बुनियाद दो चीज़ों पर है, एक तवल्ला यानी अहलेबैतेकिराम और ख़ानदानेनुबुव्वत के साथ इज़हारेमहब्बत और दूसरा तबर्रा, यानी इस ख़ानदानेमुहतरम के दुश्मनों से अपनी बराअत् ज़ाहिर करना, जिसने बाहमी रक़ाबत व तअ़स्सुब के बढ़ने से सब्बोशत्म[3] की सूरत इख्तियार कर ली। उसूलन इस अक़ीदे में सुन्नी भी उनके साथ शरीक हैं। मगर फ़र्क़ यह आ पड़ा कि पहले तीनों जानशीनानेरिसालत को अहलेसुन्नत अफ़्ज़लुन्नासि बअ़्द अम्बियाअि व रुसुल्, और सच्चे जानशीनाने रिसालत मानते हैं और शीअ़: उनको ग़ासिबोज़ालिम[4] बताते हैं। और जब यह बुज़ुर्ग भी इनके अक़ायद में ख़ानदानेरिसालत के दुश्मन क़रार पाये तो उनसे भी तबर्रा वाजिब हो गया। जिसको मुहज़्ज़ब और साहिबेइल्म लोगों ने अगर हर्फ़ें बराअत के सही मानों की हद तक रखा तो अवाम शीअ़: अपने मज़ाक़ के मुताबिक उन पर ज़बानें सब्बोशत्म दराज़ करने लगे और यही चीज़ सुन्नी (और) शीओं के बाहमी तअ़स्सुब की बिना क़रार पा गई।

इन दोनो मज़हबी चीज़ों ने लखनऊ की शाअ़िरी पर निहायत ही मुनासिब और उम्दः असर डाला। तवल्ला ने मर्सियःगोई के फ़न्न को अपने आग़ोश में लेके जुम्लः असनाफ़े शाअ़िरी से बढ़ा दिया तो दुश्मनानेख़ानदाने नुबुव्वत से तबर्रा करने के जोश ने पुरानी हज्वगोई को इख्तियार करके उसे "हज़ियःगोई" के नाम से तरक़्क़ी दी। इस फ़न के मुतअद्दिद् बाकमाल लखनऊ में मशहूर हुए, मगर अफ़सोस यह चीज़ बिलख़सीस[4] अहलेसुन्नत को नागवार गुज़रने वाली थी। अह्देशाही में इस पर तलवारें निकल पड़ा करती थीं और अंग्रेज़ी में भी आज तक कभी-कभी फ़ौजदारियाँ और मुक़द्दमेबाज़ियाँ हो जाया करती हैं जिसका नतीजा यह था कि हज़ियःगोई व हज़ियःख्वानी को मकानों की चार दवारी से बाहर निकलने की जुर्अत न हो सकी

१ ख़ुशक़िस्मत २ कमीना, गिरा हुआ ३ बुरा भला कहना ४ ख़ास तौर पर।

अगर हज़्वियःगोई का आम सबजेक्ट ऐसा महदूद और बाबुन्निज़ाअ[१] न होता तो ज़माना माबिहिन्निज़ाअ देखता कि लखनऊ के हज़्वियःगोइयों ने अपने बेहूदःगोइयों और फ़ुह्हाशियों में कैसे-कैसे कमालात दिखाए हैं।

इस फ़न में सबसे ज़ियादः शुहरत मिर्ज़ा दबीर के शागिर्द मियाँ मुशीर को हासिल हुई। हज्वगोई और फ़ुह्हाशी पहले भी थी मगर मुशीर ने जिस क़िस्म के मुहावरात से काम लिया, बन्दिशेअल्फ़ाज़ तर्ज़े अदा, और इस्तेमाले तश्बीहात में जैसी मज़हकःखेज़ी पैदा की और सुहबत को मारे हँसी के लोटा देने और सामअ़ीन के पेट में बल डाल देने के लिए जो ज़बान और जैसा असलूबेसुख़न इख़्तियार किया, उसकी ख़ूबियाँ और जिद्दतें बयान से बाहर हैं इब्तिज़ाल[२] में भी लुत्फ़ पैदा करके, उसे शायस्तः लोगों के सामने पेश करने के क़ाबिल बना देना, उनका ख़ास जौहर था जो उनसे पहले और उनके बाद किसी को नसीब नहीं हुआ।

हज़्लगोई के सिलसिले में मियाँ चिर्कीन का नाम भी लेना चाहिए। लखनऊ के ज़मानए-वुस्ता[३] में आशूरअली ख़ाँ एक ज़िन्दःदिल और निहायत ही क़ाबिलो-बामज़ाक़ रईस थे, उनके वहाँ की सुहबत उस वक़्त की सोसायटी का एक मुकम्मल तरीन नमूना थी। उन्हीं ने जान साहब और चिर्कीन को पैदा किया और बाज़ लोग कहते हैं कि उन्हीं की सुहबत में साहिबक़िराँ का भी नश्वनुमा हुआ था। चिर्कीन अपने हर शेअ़र में पेशाब पैख़ाने की रिआयत रखते और उनके अश्अ़ार से ऐसी तअ़फ़्फ़ुन[४] आती है कि नाम आते ही हमारे नाज़िरीन[५] के दिमाग़ सड़ गए होंगे। मगर चूँकि उनको एक क़िस्म की ख़ुसूसियत थी, हमने उनका ज़िक्र कर दिया, उनके कलाम में बड़ज़ शाअ़िरानः ख़ूबियाँ और अच्छी तश्बीहें भी हैं। मगर उनके मज़ाक़ ने इन ख़ूबियों को भी गन्दा और पलीद कर दिया है।

लेकिन रीख़्ती का फ़न बावजूद ग़ैर मुहज़्ज़ब होने के दिलचस्प है और चिर्कीन की शाअ़िरी की तरह अज़ीयतरसाँ नहीं। मर्दों और औरतों के मुहावरों और लहजों में थोड़ा बहुत फ़र्क़ हर ज़बान में हुआ करता है। मगर इतना नहीं जितना हमें अपनी ज़बान में नज़र आता है। फ़ारसी अरबी सब ज़बानों में यह इम्तियाज़ मौजूद है। मगर उर्दू इस ख़ुसूसियत में बढ़ी हुई है। फ़ारसी और अरबी का पुराना मज़ाक़ था कि औरतें शेअ़र कहतीं तो अपनी ज़बान में कहतीं और मर्द कभी औरतों की ज़बान से कोई ख़याल अदा कराते हैं तो ज़बान में लुत्फ़ पैदा करने के लिए उनकी ज़बान इख़्तियार कर लेते हैं। यही हाल अंग्रेज़ी का है। उर्दू शाअ़िरी हमेशा से सिर्फ़ मर्दों की ज़बान में रही यहाँ तक कि उसमें औरतें कहती भी हैं तो मर्द बनके कहती हैं, मर्दों ही की ज़बान इख़्तियार करती हैं और अपने लिए ज़मीरें तक मुज़क्कर इस्तेमाल करती हैं। अगर शाअ़िर का नाम न मालूम हो तो कोई नहीं पहचान सकता कि यह किसी मर्द का कलाम है या औरत का।

---

१ झगड़े का कारण २ कमीनापन ३ मध्यकालीन ४ बदबू (दुर्गन्ध) ५ देखने-पढ़नेवाले।

मुसलमानों, नेकबख़्तों, कमज़ोरों और मिस्कीनों को देने पर वईद[1]

आयात

वल्लज़ीन युअ्ज़ूनल्-मुअ्मिनीन वल्मुअ्मिनाति बिग़ैरि मक्तसबू फ़क़दिह्तमलू बुह्तानंव्व अिस्मम्मुबीनन्।

और वह लोग जो मुसलमान मर्द और औरतों को बग़ैर किसी जुर्म के तकलीफ़ पहुँचाते हैं। वह एक बड़ा बुहतान उठाते हैं। और खुला हुआ गुनाह करते हैं। [सू० अहज़ाबि रु० ७ आ० ५८]

फ़अम्मल्यतीम फ़ला तक़्हर् त (९) व अम्मस्साअिल फ़ला तन्हर् त (१०)

यतीम को मत डाँटो और सायल (माँगने वाले) को मत झिड़को।
[सू० ज़ुहा रु० १ आ० ९-१०]

हदीस १ अल्लाह का अपने दोस्तों के दुश्मनों से एलानें जंग

यह हदीस गुज़र चुकी है कि अल्लाह तआ़ला फ़रमाता है जिसने मेरे दोस्त के साथ दुश्मनी की उससे मेरी तरफ़ से लड़ाई का एलान है।

हदीस २ ग़रीब मुसलमानों की आज़ुर्दगी[2] से अल्लाह की नाराज़ी

हज़्रत सअ़द (र०) बिनअबी वक़्क़ास की यह ह़दीस भी गुज़र चुकी है कि हुज़ूर (स़०) ने फ़रमाया, ऐ अबूबक्र (र०) शायद तुमने उनको नाराज़ कर दिया है। अगर तुमने उनको नाराज़ कर दिया है तो तुमने अपने रब को नाराज़ किया।

हदीस ३ अल्लाह जिसको अपनी अमान[3] में ले उसको तकलीफ़ देना ख़ुदा का मुजरिम बनना है

हज़्रत जुन्दुब (र०) बिन अ़ब्दुल्लाह से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया जिसने सुबह की नमाज़ पढ़ी वह

---

१ सज़ा का वादा २ नाराज़ किये जाने पर ३ पनाह, शरण।

अल्लाह के ज़िम्मे और उसकी अमान में हो जाता§ है। सो ऐसा न हो कि तुम किसी नमाज़ी को दुःख दो और अल्लाह तआला तुमसे अपने अमान वाले नमाज़ी के मुतअल्लिक़ बाज़-पुर्स[1] करे। अल्लाह तआला जिससे अपने ज़िम्मी के मुतअल्लिक़ बाज़ पुर्स करेगा तो उसको पा ही लेगा। फिर उसको औंधे मुँह दोज़ख़ में गिरा देगा। [मुस्लिम]

ज़ाहिरी हालत पर अहकाम का इज्रा[2] और भेदों का अल्लाह के हवाले करना

आयत

···फ़अिन् ताबू व अक़ामुस्सलात व आतवुज़्ज़कात फ़ख़ल्लू सबीलहुम् ॒ ··· ।

अगर वह तौबा कर लें और नमाज़ क़ायम करें, ज़कात दें तो उनका रास्ता छोड़ दो। [सू० तौबा रु० १ आ० ५]

अहादीस

३९४ कलमः और नमाज़ व ज़कात से जानों और मालों का तहफ़्फ़ुज़

हज़रत इब्नि उमर (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया, मुझे हुक्म दिया गया है कि मैं लोगों से जंग करूँ यहाँ तक कि वह⁂ ला इलाह इल्लल्लाहु व अन्ना मुहम्मदर्रसूलुल्लाह की गवाही दें और नमाज़ क़ायम करें, ज़कात दें अगर उन्होंने ऐसा किया तो अपनी जानों और मालों को मुझसे बचा लिया मगर इस्लाम के हक़ के साथ@ और उनका हिसाब अल्लाह पर है। [बुख़ारी-मुस्लिम]

§ जब सुबह की नमाज़ पढ़ने वाले का इस क़दर इहतिराम[3] है तो पन्जगाना[4] नमाज़ का कितना अदब होगा।

⁂ सिवा ख़ुदा के कोई माबूद[5] नहीं और मुहम्मद (स०) अल्लाह के रसूल हैं।

@ मसलन क़िसास[6] और हुदूद[7] में उनकी जान ली जा सकती है।

१ पूछगछ २ अनुष्ठान, पालन ३ सम्मान ४ पाँचों समय की ५ बन्दनीय, पूज्य ६ ख़ून के बदले ख़ून ७ सीमाओं, मर्यादाओं।

हज़्रत तारिक़ बिन अश्बम से रिवायत है कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सुना है जिन्होंने ला इलाह इल्लल्लाहु कहा और उस चीज़ से इन्कार किया जिसको वह अल्लाह के सिवा पूजा करते थे तो उनका ख़ून और उनका माल दूसरों पर हराम है। कोई उनको हाथ नहीं लगा सकता। और उनका हिसाब अल्लाह पर है। [मुस्लिम]

१$\frac{२}{६}$८ कलमः पढ़ने का एतिबार

हज़्रत मिक़दाम बिन असवद से रिवायत है कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से अ़र्ज़ किया अगर मैं कुफ़्फ़ार के किसी आदमी से मिलूँ और वह हमसे जंग करे और मेरा एक हाथ काट डाले फिर एक दरख़्त की आड़ में मुझसे पनाह चाहे और कहे कि मैं अल्लाह के लिए इस्लाम लाया तो क्या मैं उसको क़त्ल कर दूँ। फ़रमाया, नहीं। मैंने फ़रमाया या रसूलल्लाह! उसने मेरा हाथ काट लिया। फिर यह बात कही। आप (स़०) ने फ़रमाया, क़त्ल मत करो। अगर तुम उसको क़त्ल करोगे तो जो मर्तबा तुम्हारा पहले था उस मर्तबा को वह पहुँच जायेगा। और वह इस कलमः के कहने से पहले जैसा था वैसे तुम हो जाओगे। [बुख़ारी-मुस्लिम]

१$\frac{३}{६}$६ कलमः के बाद क़त्ल पर रसूलुल्लाह (स़०) की नाराज़गी

हज़्रत उसामः (र०) बिन ज़ैद से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हमको हुर्क़ः की तरफ़ भेजा जो जुहैनः के क़बीले से था। हमने लोगों के पानी पर सुबह की। मैं और एक अन्सारी उनके एक आदमी से मिले। जब हमने उसको अपनी तलवारों से ढाँप लिया तो उसने ला इलाह इल्लल्लाहु कहा। बस अन्सारी रुक गये और मैंने अपने नेजे से उसको क़त्ल किया जब हम वापस हुए और यह बात रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम तक पहुँची तो आपने फ़रमाया, ऐ उसामः क्या तुमने उसको ला इलाह इल्लल्लाहु कहने के बाद क़त्ल किया? मैंने कहा या रसूलुल्लाह! वह तो पनाह चाहता था। आपने (स़०) फ़रमाया, क्या तुमने उसको ला इलाह इल्लल्लाहु कहने के बाद क़त्ल किया और आप इसको बराबर दुहराते रहे। यहाँ तक कि मैंने तमन्ना की कि ऐ काश मैं इस वाक़िअ़ः के बाद इस्लाम लाया होता♦।

और एक रिवायत में है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम

♦ इस वाक़िअ़ः के बाद इस्लाम लाया होता तो मेरे पिछले बड़े से बड़े गुनाह मुआ़फ़ हो जाते, उसमें यह गुनाह भी माफ़ हो जाता।

बार-बार इसको कहते रहे। क्या करोगे ला इलाह इल्लल्लाहु के साथ। जब क़ियामत में ला इलाह इल्लल्लाहु आयेगा। [बुख़ारी-मुस्लिम]

और एक रिवायत में है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया, क्या तुमने ला इलाह कहने के बाद उसको क़त्ल किया? मैंने अर्ज़ किया या रसूलल्लाह (स०)! उसने तलवार के डर से कलमा पढ़ा था। आपने फ़रमाया, क्या तुमने उसके दिल को चीर कर नियत देखी थी? आप बराबर उसको दुहराते रहे। यहाँ तक कि मैंने तमन्ना की कि मैं इससे पहले इस्लाम न लाया होता।

हज़्रत जुन्दुब (र०) बिन अब्दुल्लाह (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (स०) ने मुसलमानों की एक फ़ौज मुश्रिकीन[1] से मुक़ाबला के लिए भेजी। मुश्रिकीन में एक आदमी था जो किसी मुसलमान के क़त्ल का इरादा करता तो फ़ौरन उसको क़त्ल कर देता। एक मुसलमान उसकी ग़फ़लत की ताक में रहा। हम उसके मुतअल्लिक़ गुफ़्तुगू करते थे कि वह ग़ालिबन उसामा (र०) बिन ज़ैद हैं। जब उन्होंने उस पर तलवार उठाई तो उसने ला इलाह इल्लल्लाहु पढ़ा मगर उसको क़त्ल कर दिया। ख़बर रसाँ रसूलुल्लाह (स०) की ख़िदमत में आया और हालात बतलाये और यह भी ख़बर दी कि उसामा (र०) ने इस तरह क़त्ल किया। आपने उनको बुलाया और पूछा कि किस लिए तुमने क़त्ल किया? उन्होंने कहा या रसूलल्लाह! वह मुसलमानों को बहुत ज़ियादः तकलीफ़ देता था। और फ़लाँ फ़लाँ को क़त्ल किया था। इस तरह एक जमाअत का नाम उन्होंने गिना दिया। मैंने उसपर तलवार उठाई तो उसने तलवार देख कर ला इलाह इल्लल्लाहु कहा। रसूलुल्लाह (स०) ने फ़रमाया, क्या तुमने उसको क़त्ल किया? अर्ज़ किया जी हाँ। फ़रमाया जब ला इलाह इल्लल्लाहु क़ियामत के दिन आयेगा तो उसके साथ क्या करोगे। कहा या रसूलल्लाह! मेरे लिए बख़्शिश चाहिए। आपने फ़रमाया, ला इलाह इल्लल्लाहु के साथ क्या करोगे जब ला इलाह इल्लल्लाहु क़ियामत के दिन आयेगा? आपने इसके सिवा कुछ भी नहीं फ़रमाया, यही फ़रमाते रहे कि ला इलाह इल्लल्लाहु के साथ क्या करोगे जब क़ियामत के दिन ला इलाह इल्लल्लाहु आयेगा? [मुस्लिम]

ज़ाहिरी हालत पर फ़ैसला

हज़्रत अब्दुल्लाह (र०) बिन उतबः बिन मस्ऊद से रिवायत है कि मैंने हज़्रत उमर (र०) से सुना है कि रसूलुल्लाह (स०) के ज़माने में

१ बहुदेव पूजकों।

लोगों के ऐब व सवाब का अन्दाज़ा वहीय के ज़रीये होता था। उसी के मुताबिक़ जज़ा व सज़ा का मुस्तौजिब[1] होता था। लेकिन अब वहीय का सिलसिला मुन्क़तअ़ हो गया[2] अब हम तुम्हारे ज़ाहिरी आमाल[3] पर तुमको पकड़ेंगे। जिस शख़्स से भलाई ज़ाहिर होगी उससे हम मुत्मइन[4] होंगे, और उसको अपने क़रीब करेंगे। और उसके दिली भेदों को हम क्या जानें, अल्लाह उनके भेदों का हिसाब करेगा। और जिससे बुराई ज़ाहिर होगी हम उससे मुत्मइन न होंगे। और न उसको सच्चा समझेंगे। अगरचि वह कहे कि हमारा बातिन[5] अच्छा है। [बुख़ारी]

ख़ौफ़ ख़ुदा

आयात

...व अिय्याय फ़र्हबूनि।

और मुझ ही से डरो। [सू० बक़र, रु ५ आ० ४०]

अिन्न बत़्श रब्बिक लशदीदुन्

बेशक तुम्हारे रब की पकड़ सख़्त है। [सू० बुरूज, रु० १ आ० १२]

व कज़ालिक अख़्ज़ु रब्बिक अिज़ा अख़ज़ल्क़ुरा व हिय ज़ालिमतुन्, अिन्न अख़्ज़हू अलीमुन् शदीदुन्।

और इसी तरह तुम्हारे रब की पकड़ है जब बस्तियों को पकड़ता है और वहाँ के रहने वाले ज़ालिम होते हैं। बेशक तुम्हारे रब की पकड़ दर्दनाक है। [सू० हूद, रु० ६ आ० १०२]

अिन्न फ़ी ज़ालिक लआयतल्लिमन् ख़ाफ़ अ़ज़ाबल्-आख़िरति ज़ालिक यौमुम्मज्मूअ़ुन् ल्'लहुन्नासु व ज़ालिक यौमुम्मश्हूदुन् (१०३) व मा नुअख़्ख़िरुहू अिल्ला लिअजलिम्-मअ़्दूदिन् (१०४) यौम यअ्ति ला तकल्लमु नफ़्सुन् अिल्ला बिअिज़्निही फ़मिन्हुम् शक़िय्युंव्व सअ़ीदुन् (१०५) फ़अम्मल्लज़ीन शक़ू फ़फ़िन्नारि लहुम् फ़ीहा ज़फ़ीरुंव्व शहीक़ुन् (१०६)

---

१ लाइक़, योग्य २ रुक गया है ३ कर्मों ४ संतुष्ट ५ हृदय।

इसमें उन लोगों की निशानियाँ हैं जो आख़िरत के अ़ज़ाब से डरते हैं। उस दिन कि लोग जमा किये जायेंगे और वह सबकी हाज़िरी का दिन होगा। और हम उसको सिर्फ़ थोड़ी मुद्दत के लिए (बाज़ मस्लहतों से) मुल्तवी किये हुए हैं। और उस दिन कोई शख़्स बग़ैर ख़ुदा की इजाज़त के बात न कर सकेगा। और उनमें कुछ बदबख़्त और कुछ नेकबख़्त होंगे। बदबख़्त आग में होंगे उनके लिए उसमें चीख़ व पुकार होगी।

[सू० हूद, रु० ६ आ० १०३-१०६]

…व युहज़्ज़िरुकुमुल्लाहु नफ़्सहू…।

तुमको अल्लाह अपने नफ़्स से डराता है।

[सू० अ़िम्रान, रु० ३ आ० २८]

यौम यफ़िर्रुल्मर्अु मिन् अख़ीहि (३४) व उम्मिही व अबीहि (३५) व साहिबतिही व बनीहि (३६) लिकुल्लिम्रिअिम्-मिन्हुम् यौमअिज़िन् शअ्नुंय्युग़्नीहि (३७)

जिस दिन आदमी भागेगा अपने भाई से, अपनी माँ से, अपने बाप से, अपने दोस्तों और अपने बेटों से। हर एक के लिए ऐसी हालत होगी जो उसको बेपरवा कर देगी। [सू० अ़बस, रु० १ आ० ३४-३७]

या अय्युहन्नासुत्तक़ू रब्बकुम् अिन्न ज़ल्ज़लतस्साअ़ति शैअुन् अ़ज़ीमुन् (१) यौम तरौनहा तज़्हलु कुल्लु मुर्ज़िअ़तिन् अ़म्मा अर्ज़अ़त् व तज़अु कुल्लु ज़ाति ह़म्लिन् ह़म्लहा व तरन्नास सुकारा व मा हुम् बिसुकारा व लाकिन्न अ़ज़ाबल्लाहि शदीदुन् (२)

ऐ लोगो! अपने रब से डरो। बेशक क़ियामत की भौंचाल बड़ी चीज़ है। उस दिन तुम उनको देखोगे औरत अपनी गोद के बच्चे को भूल जायेगी। और बच्चे वाली का बच्चा पैदा हो जायेगा। तुम देखोगे लोगों को बेहोश मगर वह बेहोश न होंगे लेकिन अल्लाह का अ़ज़ाब सख़्त है। [सू० ह़ज्जि, रु० १ आ० १-२]

व लिमन् ख़ाफ़ मक़ाम रब्बिही जन्नतानि।

और जो अपने रब की जगह से डरा उसके लिए दो बाग़ हैं।

[सू० रह़्मान, रु० ३ आ० ४६]

व अक़्बल बअ़्ज़ुहुम् अ़ला बअ़्ज़िय्यतसाअलून (२५) क़ालू अिन्ना कुन्ना क़ब्लु फ़ी अह्लिना मुश्फ़िक़ीन (२६) फ़मन्नल्लाहु अ़लैना व वक़ाना अ़ज़ाबस्समूमि (२७) अिन्ना कुन्ना मिन् क़ब्लु नद्अ़ूहु, अिन्नहू हुवल्बर्रुर्रहीमु (२८)

और एक दूसरे की तरफ़ मुतवज्जिः होकर बात-चीत करेंगे। कहेंगे हम इससे पहले अपने घरों (यानी दुनिया में) अन्जामकार से डरा करते थे। पस अल्लाह ने हम पर इहसान किया और हमको अज़ाबें दोज़ख़ से बचाया हम इससे पहले (यानी दुनिया में) उससे दुआएँ माँगा करते थे वह रहमत वाला मेहरबान है। [सू० तूर, रु० १ आ० २५-२८]

अहादीस

३६८ अंजाम की किसी को ख़बर नहीं

हज़्रत इब्नि मस्ऊ़द (र०) कहते हैं कि हम से रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, और आप सच्चे और आप से ज़ियादः कौन सच्चा है कि इन्सान चालीस दिन अपनी माँ के पेट में नुत्फ़ः[1] रहता है। फिर चालीस दिन में ख़ून की फुतकी बनता है। फिर चालीस दिन में गोश्त का लोथड़ा बन जाता है। फिर फ़िरिश्ता भेजा जाता है, जो उसमें रूह फूँकता है। फिर चार बातों के लिखने का उसको हुक्म होता है। उसके (१) रिज़्क़[2] (२) उम्र (३) अ़मल के मुतअ़ल्लिक़ और यह कि (४) वह नेकबख़्त[3] होगा या बदबख़्त[4]। क़सम है उस ज़ात की कि जिसके सिवा कोई माबूद नहीं। कोई जन्नतियों के अ़मल करता रहता है। यहाँ तक कि जन्नत में और उसमें एक हाथ का फ़ासला रह जाता है। तो अल्लाह का लिखा ग़ालिब आ जाता है। और वह जहन्नम के अ़मल करने लगता है और जहन्नम में दाख़िल होता है। और एक आदमी दोज़ख़ियों के काम करता रहता है। यहाँ तक कि उसके और दोज़ख़ के दर्मियान सिर्फ़ एक हाथ का फ़ासला रह जाता है। उस वक़्त अल्लाह का लिखा ग़ालिब आता है। वह जन्नत के अ़मल करने लगता है। और जन्नत में दाख़िल हो जाता है। [बुख़ारी-मुस्लिम]

---

१ वीर्य २ रोज़ी, जीविका ३ भाग्यवान् ४ अभागा।

३६९[२] जहन्नम का मन्ज़र[१]

हज़्रत इब्नि मस्ऊद (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (स०) ने फ़रमाया कि उस दिन जहन्नम को सत्तर हज़ार लगामों के साथ लाया जायेगा और हर लगाम के साथ सत्तर हज़ार फ़िरिश्ते होंगे जो उसको खींचते होंगे। [मुस्लिम]

३७०[३] सबसे हल्का अज़ाब

हज़्रत नुअमान (र०) बिन बशीर से रिवायत है कि मैंने रसूलुल्लाह (स०) से सुना है कि क़ियामत के दिन दोज़ख़ियों में सबसे कम्तर[२] अज़ाब[३] उसको होगा जिसके पाँव के तलवों पर दो अँगारे रक्खे जायेंगे; उन दो अँगारों से उसका दिमाग़ पकेगा। [मुस्लिम]

और एक रिवायत है कि दोज़ख़ वालों में सबसे हल्के अज़ाब वाला वह होगा जिसके दो जूते और दो तस्मे आग के होंगे जिनसे उसका दिमाग़ इस तरह पकेगा जैसे हाँडी उबलती है; और वह यह ख़याल करता होगा कि मुझसे ज़ियादः सख़्त किसी पर अज़ाब नहीं हालाँकि वह सबसे हल्का अज़ाब होगा। [बुख़ारी-मुस्लिम]

३७१[४] जहन्नम के अज़ाब के दर्जे

हज़्रत समुरः (र०) बिन जुन्दुब (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया आग उनमें से किसी के टख़्नों को पकड़ेगी और किसी के घुटनों को और किसी के कमर तक होगी और किसी की हँसली को पकड़ेगी। [मुस्लिम]

३७२[८] क़ियामत का पसीना

हज़्रत इब्नि उमर (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया लोग रब्बुल—आ़लमीन के पास खड़े होंगे। उनमें से बाज़ अपने पसीने में आधे कानों तक डूब जायेंगे। [बुख़ारी-मुस्लिम]

३७३[६] अगर हक़ीक़तँ हाल मालूम हो जाये

हज़्रत अनस (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने ऐसा ख़ुतबा फ़रमाया कि इससे पहले मैंने कभी नहीं सुना।

---

१ दृश्य २ हलका ३ पापों का दण्ड।

विमळिन नीळोत्पळदळे जळ ।
विपृश कि पड़िबारे ढळढळ । ५८ ।

सरलार्थ—सीता के नीले वर्ण के केशों पर शुक्लवर्ण की वह मणि हिलती हुई इस प्रकार शोभित हुई मानो निर्मल नील पद्म की पंखुड़ियों पर स्वच्छ जल की बूँदें लुढ़क रही हों। (५८)

विमळिन—स्वच्छ; जळ-विपृष—जळ-बिन्दु; ढळढळ—लुढ़कना। (५८)

वृषा-नीळमणि-वृन्द-प्रभा चोरि ।
वज्रठारु करि किवा कोळे धरि । ५९ ।

सरलार्थ—फिर ऐसा प्रतीत हुआ मानो इन्दुनीलमणियों के समूह ने हीरे की ज्योति चुराके अपनी गोद में धारण की हो। (५९)

वृषानीळमणि-वृन्द—इन्द्रनीलमणि (नीलकान्तमणि)-समूह; वज्र—हीरा। (५९)

विज्वळित काळीमणि काळिन्दीरे ।
वीचि कुञ्चिते किवा चाञ्चल्य धरे । ६० ।

सरलार्थ—यमुना की कुञ्चित (टेढ़ी-मेढ़ी) लहरों पर विशेष रूप से जलती हुई कालीय सर्पकी मस्तकमणि मानो चंचलता के साथ उतरा रही हो। (६०)

विज्वळित—विशेष चमकती हुई, विशेष रूप से जलती हुई। (६०)

विदित ये सन्ध्याकाळे हेला परा ।
विहायसे एक काव्य दिव्य तारा । ६१ ।

सरलार्थ—और भी दिव्य काव्यतारा (शुक्रतारा) सायंकालीन आकाश में उदित हुआ सा दिखाई दिया। (६१)

विहायस—आकाश; काव्यतारा—शुक्रतारा। (६१)

बारिवाह भेदि इन्दु उदे तर्कि ।
बाहारिछि ज्योतिच्छळे किरण कि ? । ६२ ।

सरलार्थ—अथवा केशरूपी मेघ को बेधकर मानो मणिरूपी चन्द्र उदित हुआ हो। सुतरां मणि की ज्योति के मिस मानो ज्योत्स्ना बिखर रही हो। (६२)

बारिवाह—मेघ, बादल; इन्दु—चन्द्र। (६२)

बाळी अशेष शोभा कहिबा पाइँ ।
वार्त्तावह होइ प्रभाग्रश ग्राइ । ६३ ।

सरलार्थ--अथवा सीता की अनिर्वचनीय शोभा के यश का प्रचार करने के लिए वह मणि मानो अपनी बहुत दूर तक फैलने वाली प्रभा को दूत के रूप में भेज रही हो । (६३)

वार्त्तावह—दूत । (६३)

वधू तिनिङ्कि ग्रे स्तिरी-रत्न घेनि ।
विळोहिले अमूल्य रतन तिनि । ६४ ।

सरलार्थ--इसके बाद तीनों वधुओं को स्त्री-रत्न समझकर दशरथ ने उन तीनों को तीन अमूल्य रत्न पुरस्कार स्वरूप प्रदान किये । (६४)

विळोहिले—मुँहदेखके स्वरूप दिये । (६४)

बिलम्बाइले वामा काहार हृदे ।
विन्ध्यगिरि पाशे कि अगस्त्य उदे । ६५ ।

सरलार्थ--किसी सखी ने एक वधू के वक्ष पर एक रत्न लटका दिया । स्तनों के पास उस रत्न ने परम शोभा धारण की । उस शोभा को देखकर ऐसा प्रतीत हुआ मानो अगस्त्य नक्षत्र बिन्ध्यपर्वत के पास उदित हुआ हो । (अगस्त्य नक्षत्र का वर्ण लाल है । मणि की तुलना उसके साथ की जाने के कारण इसके पद्मराग मणि होने की सूचना मिल रही है) । (६५)

बान्धि मणिबन्धरे काहार आळी ।
वनरुहनाळ-मूळे किवा अळि । ६६ ।

सरलार्थ--फिर किसी सखी ने दूसरी एक कन्या की कलाई पर एक रत्न बाँध दिया । इस रत्न ने पद्म-नाल की जड़ में बैठे भौंरे की शोभा धारण की । (भ्रमर का रंग नीला है । इससे रत्न की तुलना की जाने से सूचना मिलती है कि यह रत्न नीलकान्त मणि है) । (६६)

विभूषणे कले काहा कण्ठ शोभा ।
बोळ पानर फुटि दिशिला प्रभा । ६७ ।

सरलार्थ--तीसरी कन्या के कंठ की शोभा को किसी सखी ने एक रत्न द्वारा विभूषित किया। उसकी शोभा इस प्रकार प्रस्फुटित हुई मानो पान की पीक कण्ठ पर फूटी दिखाई दे रही हो। (पान की पीक से उपमित तथा कंठ का भूषण होने के कारण अनुमान किया जाता है कि यह रत्न प्रवाल (मूँगा) है)। (६७)

बाहुड़ाइले कन्या सैरिन्ध्री-वृन्द।
बोधिगला चकोर द्वितीया चान्द। ६८।

सरलार्थ--कन्याओं को रत्नों से विभूषित करने के उपरान्त श्रृंगार सजानेवाली दासियाँ उन्हें अन्तःपुर में लौटा ले गईं। जैसे दूज का चाँद थोड़े ही समय के लिए चकोर पक्षी को सान्त्वना देकर अस्त हो जाता है, उसी तरह ये कन्याएँ भी थोड़े ही समय के लिए देखनेवालों के नेत्र-चकोरों को आनन्द-प्रदान करके चली गयीं। (६८)

सैरिन्ध्रीवृन्द--वेशकारिणियाँ। (६८)

विलक्षित एहि क्षण दरशने।
विद्यु झटकिबा कान्ति परसन्ने। ६९।

सरलार्थ--क्षण भर के लिए उन कन्याओं के दर्शन से बिजली की यह तुलना विशेष रूप से जँची। जिस प्रकार बिजली बहुत थोड़े ही समय के लिए आकाश में अपनी ज्योति फैलाकर अदृश्य हो जाती है, उसी प्रकार ये कन्याएँ भी क्षण भर के लिए अपनी-अपनी प्रभा का प्रदर्शन करके गायब हो गईं। (जिस प्रकार विद्युत् क्षणप्रभा है, वैसे ही इन कन्याओं की उजली कान्ति भी क्षणिक थी)। (६९)

विलक्षित--विशेष रूप से उपमित; विद्यु--बिजली; झटकिबा--झलकना, चमकना। (६९)

बिहि इकार निज नामरे कहि।
बशिष्ठ ये सर्व कन्यागणे एहि। ७०।

सरलार्थ--उस समय वशिष्ठ ने (इनकी शोभा के दर्शन से विमुग्ध होकर) अपने नाम के साथ 'इकार' का योग करके ('विशिष्ट' शब्द बनाके) कहा कि सब कन्याओं में ये ही कन्याएँ विशिष्ट (प्रसिद्ध) हैं। (७०)

वामदेव ये सफळ हेला बोले ।
वामदेव या त्रिनेत्र बहिथिले । ७१ ।

सरलार्थ--वामदेव ऋषि ने कहा, "महादेव ने जो तीन नेत्र धारण किये हैं, उनका यह तीन नेत्र धारण करना सफल ही है। (क्योंकि अपनी तीन आँखों से वे इनकी शोभाओं को सबसे अधिक देख सकेंगे । (७१)

विचक्षणङ्क मन होइला तोष ।
बार अधिक त्रिविंश पदे शेष । ७२ ।

सरलार्थ--उन कन्याओं की शोभा के दर्शन से पण्डितों के मन सन्तुष्ट हुए । बहत्तर पदों में यह छान्द समाप्त हुआ । (७२)

विचक्षणङ्क—पण्डितों के; बार अधिक त्रिविंश—तीन बीस (= साठ) से बारह अधिक = बहत्तर (७२) ।

।। प्रथम खण्ड समाप्त ।।

।। इति त्रयोदश छान्द ।।

वैदेहीश-विळास

द्वितीय खण्ड

चतुर्दश छान्द

राग—मङ्गळगुज्जरी

बेहरण भाङ्गि विभादिन मूळ करि।
बिशुद्ध तार लग्नकु ज्योतिषे विचारि ये। १।

सरलार्थ—कन्या-दर्शन के बाद सभा-भंग करके जनकजी ने ज्योतिषियों को बुलवाया और उनसे आलोचना-चर्चा आदि करके बिवाह के लिए शुभ लग्न, शुभ नक्षत्र तथा शुभ दिवस आदि का निर्णय किया। (१)

बेहरण—सभा (कन्या दर्शन सम्बन्धी); बिशुद्ध—शुभ; तारा—तारा, नक्षत्र। (१)

बर्द्धकीचय कि मय विश्वकर्मा गुरु।
बेदिका मण्डप कले अतिशय चारु ये। २।

सरलार्थ—बढ़इयों ने वेदी तथा विवाह-मण्डप ऐसे मनोहर ढंग से बनाया कि उन्हें देख ऐसा प्रतीत हुआ मानो वे बढ़ई मय दैत्य तथा विश्वकर्मा, दोनों के गुरु हैं। (वे दोनों प्रसिद्ध शिल्पी होते हुए भी मण्डप-निर्माता कारीगरों से न्यून तथा कम योग्यतावाले हैं।) (२)

बर्द्धकीचय—बढ़ई समूह, कारीगर या शिल्पी समूह; मय—दैत्य-शिल्पी; विश्वकर्मा—देवशिल्पी। (२)

बइकुण्ठपुरु रथ पड़िला कि खसि।
बइकुण्ठ-पुर सभा शोभनकु हसि ये। ३।

सरलार्थ—उस वेदी तथा मण्डप की शोभा को देख ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वैकुण्ठ भवन से विष्णु-रथ मर्त्य लोक में खिसक पड़ा हो। उस मण्डप ने इन्द्र की सुधर्मा सभा की शोभा की भी हँसी उड़ाई। (३)

बइकुण्ठपुर—स्वर्गपुर, विष्णुपुर; रथ—विष्णु-रथ; बइकुण्ठपुर-सभा—इन्द्र-सभा, सुधर्मा सभा। (३)

बिहरित हरितवसने होइछन्ति।
बिलगन तळरे उपरे रम्भा स्थिति य़े। ४।

सरलार्थ—उस रथ में (विष्णु-रथ में) नारायण विहार करते हैं। उसी तरह इस वेदी में कुञ्चित पीतवस्त्र बँधे हुए हैं। सुधर्मा-सभा में स्वर्गवेश्या रम्भा नृत्य करने के लिए कभी ऊपर, कभी नीचे खड़ी होती है। उसी प्रकार इस मण्डप पर कहीं ऊपर, कहीं नीचे रम्भा (केले) के वृक्ष संस्थापित किये गये हैं। (४)

हरितवसन—पीला वस्त्र, विष्णु; रम्भा—रम्भानाम्नी स्वर्गवेश्या, केले का वृक्ष। (४)

बिभ्रमिला चित्त छायामण्डपकु चाहिँ।
बेढ़ि रहिला कि सुरसभा आसि तहिँ य़े। ५।

सरलार्थ—छायामण्डप को देखकर चित्त में ऐसा भ्रम पैदा हुआ मानों देव-सभा आकर यहाँ घिर गई हो। (५)

बिनय त सुमनमाळारे अविरत।
बाञ्छा—कळ्पद्रुम परि फळरे पूरित य़े। ६।

सरलार्थ—देव-सभा में सुमन (देवता लोग) हमेशा विनयी (विनम्र) होकर रहते हैं। उसी तरह इस छायामण्डप में सुमन (पुष्प) की मालाएँ सर्वदा विनम्र होकर (झुककर) झूल रही हैं। फिर वह छायामण्डप कल्पद्रुम के सदृश प्रतीत हुआ। कल्पवृक्ष इच्छित फलों से भरपूर रहता है। उसी प्रकार यह मण्डप सुपारियों तथा नारियल आदि फलों से परिपूर्ण है। (६)

विनय—विनम्र, झुका हुआ; सुमनमाळारे—देवता समूह से, फूल की मालाओं से; अविरत—हमेशा, सर्वदा; बाञ्छा-कल्पद्रुम—कामनानुसार फल देनेवाला कल्पतरु। (श्लेष) (६)

बरण वरुणाळय प्राय वेष्टनारे।
विचित्र चित्र मकर गङ्गा य़मुनारे य़े। ७।

सरलार्थ—यह सभामण्डप एक परकोटे से घिरा हुआ है जैसा कि

पृथिवी समुद्र से घिरी हो। समुद्र में गंगा तथा यमुना आदि नदियाँ मिली हुई हैं तथा वह मत्स्य तथा मगर आदि जलचर प्राणियों के निवास के कारण विचित्र दीखता है। उसी तरह यह प्राचीर गंगा, यमुना आदि नदियों तथा मत्स्य, मगर आदि जलचर प्राणियों के चित्रों से चित्रित है। (७)

वरण—प्राचीर, परकोटा; वरुणाळय—समुद्र। (७)

बेनि नरेश्वरङ्कर मण्डित नवरे।
बिहाइले गन्धषण महाउत्सवरे ये। ८।

सरलार्थ—परिचारिकाओं ने दशरथ एवं जनक—इन दोनों राजाओं के मण्डनपुरों का गन्धाधिवास विधान महोत्सव के सहित संपन्न किया। अर्थात् परिचारिकाओं ने दोनों राजाओं के मण्डनपुरों को अत्यन्त आनन्द से चन्दन, कर्पूर आदि सुगन्ध-द्रव्यों से सुगन्धित किया। (८)

मण्डितनवर—मण्डनपुर, सजावट के घर; गन्धषण—चन्दन, कर्पूर आदि सुगन्ध द्रव्य। (८)

ब्राह्मणी सात सअळंकार करि तहिँ।
वस्त्र पाटे ललाटे सिन्दूर चिता देइ ये। ९।
वियोगिले चन्द्र दीप्तिमान कुम्भराशि।
बन्धुरतारे धनिष्ठा होइ परशंसि ये। १०।

सरलार्थ—अनन्तर जल-उत्तोलन के लिए सात ब्राह्मण-कन्याओं को नाना प्रकार के आभूषणों से भूषित किया गया। फिर उन्हें रेशमी वस्त्र पहनाकर, उनके ललाटों पर सिन्दूर की टीकाएँ दी गयीं। फिर उनके कंधों पर दीप्तिमान सुवर्ण के घट रखे गये। जिस प्रकार चन्द्र कुम्भराशि से युक्त होकर धनिष्ठा नक्षत्र सहित बन्धुता स्थापनपूर्वक अपने को प्रशंस्य समझता है, उसी तरह सुवर्ण-घट-संयुक्त इन कन्याओं ने अपने-अपने को धन्य समझा क्योंकि वे भाग्यवन्तों (धनी आदमियों) की बन्धु हैं। (९-१०)

सअलंकार—अलंकार-भूषित; चिता—टीका, बिन्दी; चन्द्र—सुवर्ण, चन्द्रमा; कुम्भराशि—कुम्भनामक राशि, स्वर्णघट समूह; धनिष्ठा—धनिष्ठा नक्षत्र, धनी लोग। (श्लेष) (९-१०)

विषमेषु सूर्पयुक्त नारीकेळ तीरे।
विरहिणी प्राय दिवाकीर्त्ति-नारी धरे ये। ११।

सरलार्थ—सूप कन्दर्प की तरह है। कन्दर्प अपनी नारी 'केलति' (रति) से युक्त है, अर्थात् रति को अपनी गोद में धारण किये रहता है। सूप भी नारिकेल (नारियल) के तीरों (काण्डों) से युक्त हुआ है। उसी सूप को एक नापितिन ने इस प्रकार धारण किया है मानो विरहिणी नारी ने काम विकार को धारण किया हो। (११)

विषमेषु—कन्दर्प; सूर्प—सूप, छाजनी; नारीकेळतिरे—कन्दर्प की नारी रति को, नारीकेळतीरे—नारियल के काण्डों से; (श्लेष); दिवाकीर्त्तिनारी—नापितिन, नाइन। (११)

विज्ज्वळित दीपे ये सरितईश सरि।
वेश्यावार सङ्गीतमन्दिर शोभा धरि ये। १२।

सरलार्थ—फिर वह सूप समुद्र के सदृश शोभित हो रहा है। क्योंकि समुद्र जम्बु, प्लक्षादि सात द्वीपों से शोभित होता है। वैसे यह सूप जलते हुए सात दीपों से सुशोभित हो रहा है। वेश्याओं ने संगीत-मन्दिर की शोभा धारण की है। (१२)

सरित-ईश—नदियों के पति, समुद्र; सरि—सदृश; वेश्यावार—वेश्या-समूह। (१२)

वीणाकण्ठ पयोधर मर्द्दळ राजित।
विस्तारि नृत्य नर्त्तकी नेत्र ख्यात गीत ये। १३।

सरलार्थ—वेश्याओं की संगीत-मन्दिर से तुलना की गयी है। संगीत-मन्दिर वीणाओं तथा मर्द्दलों से सुशोभित होता है। उसी तरह ये वेश्याएँ वीणा के से कण्ठस्वर तथा मर्द्दलों के सदृश स्तनों से सुशोभित हो रही हैं। फिर संगीत-मन्दिर में नर्त्तकियाँ नृत्य करती हैं। उसी प्रकार वेश्याओं के नेत्र भ्रूभंगी के मिस यहाँ नृत्य कर रहे हैं। वेश्याएँ संगीत भी गा रही हैं। (१३)

पयोधर—स्तन; मर्द्दळ—मृदंग से मिलता-जुलता एक प्राचीन बाजा। (१३)

बाहारु ये मुखर-रसना स्वन कले।
बिस्तरे अन्तःपुरस्था द्विविध मङ्गळे ये। १४।

सरलार्थ—संगीतशाला से निकलते वक्त नर्तकियों की शब्दायमान करधनियों की आवाज सुनाई पड़ती है। उसी प्रकार पुर से निकलते वक्त इन वेश्याओं के मुखों से उलुध्वनि (ळुळू ध्वनि) सुनाई पड़ी। इस समय अन्तःपुरस्था रमणियाँ नाना प्रकार से मांगलिक क्रियाएँ सम्पादन करने लगीं। (१४)

अध्याय—६

श्रीगणेशाय नमः। जय जय जगद्वंद्या वेदसारा। अनंगदहन-हृदय-विहारा। कमलोद्भव-जनका परात्परा। अगोचरा निरुपाधिका। १ इच्छामात्रें प्रचंड। मायेनें रचिलें ब्रह्मांड। चौऱ्यायशीं लक्ष योनि उदंड। जीव आंत भरियेले। २ ते जीव विसरूनि तूतें। भुलले देखोनि विषयांतें। म्हणोनि विसरले निजपदातें। अहंमतानें भुलोनियां। ३ शब्दविषय घेतां कानें। कुरंग वेंचिला समूळ प्राणें। स्पर्शविषय सेवितां वारणें। अंकुशें आकर्षोनि हिंडविती। ४ रूपविषय देखतां पतंग। करी आपला देहत्याग। रसविषयें मीन सवेग। गळ गिळोनि मुके प्राणा। ५ गंधविषयें मिलिंद भुलोन। कमळकोशीं वेंची प्राण। ते पांचही विषय संपूर्ण। भोगिती जाण मानव हे। ६ तुज विसरोनि श्रीरामा। जीव भुलले देह-गेह-धन-कामा। त्यांसी तारावया पूर्णब्रह्मा। दशरथात्मज जाहलासी। ७ पंचमाध्यायाचे अंतीं कथा। दशरथें राम दिधला गाधिसुता।

हे जगत् के लिए वन्दनीय, वेदों के सार-तत्त्व, मदन को जला डालनेवाले श्रीशिवजी के हृदय में विहार करनेवाले, ब्रह्माजी के पिता, अगोचर और उपाधि-रहित सर्वश्रेष्ठ भगवान् (राम), तुम्हारी जय हो। १ तुमने इच्छा मात्र से माया द्वारा प्रचण्ड ब्रह्माण्डों की रचना की (और) उनके अन्दर चौरासी लाख योनियों के अनगिनत जीव भर दिये (उत्पन्न किये)। २ वे जीव तुम्हें भूलकर (इन्द्रियों द्वारा भोग्य) विषयों को देखकर मोहित हुए। इसलिए अहंभाव-घमण्ड से सुध-बुध खोकर उन्होंने (अपने सच्चे स्थान को अर्थात्) तुम्हारे चरणों को भुला दिया। ३ शब्द—अर्थात् मधुर ध्वनि विषय को कानों द्वारा अपनाने पर हिरन मूल सहित अर्थात् पूर्णतः प्राणों से नष्ट हुआ (हो जाता है)। स्पर्श विषय का सेवन करने पर हाथी को अंकुश से वश करके (लोग) घुमाते हैं। ४ रूप विषय को देखते हुए पतंगा अपनी देह का उत्सर्ग कर देता है। रस-विषय के कारण मीन (मछली) वेग-पूर्वक काँटे को निगलकर प्राणों को खो देता है। ५ गन्ध विषय से भ्रमर मोहित हो, कमल-कोश में (फँस कर) प्राणों को खो देता है। समझो, उन सभी पाँचों ही विषयों का भोग ये मनुष्य करते हैं। ६ हे श्रीराम, तुम्हें भूलकर जीव देह, घर, धन, काम से मुग्ध हो गये। हे पूर्णब्रह्म श्रीराम! उनका उद्धार करने के

यावरी वर्तलें तें तत्त्वतां। ऐका आतां सावधान। ८ गुरूसी शरण निघाला रघुनाथ। हे कथा वाल्मीकें कथिली अद्भुत। तो बृहद्वासिष्ठ ग्रंथ। छत्तीस सहस्र श्लोक पैं। ९ समुद्राऐसा थोर ग्रंथ। त्यांतील सार सांगों मुख्यार्थ। जैसें भागीरथींतूनि तृषार्त। पाणी सेवी अंजुळीनें। १० सागरामाजी बुडी घेऊन। काढिती सतेज मुक्तें वेचून। कीं याचकासी सांपडे अपार धन। परी यथाशक्ति मोट बांधी। ११ देखिला अन्नाचा पर्वत। परी आपणापुरतेंच घे क्षुधार्त। तैसा बृहद्वासिष्ठ ग्रंथ। त्यांतील गुह्यार्थ ऐका हो। १२ वाल्मीकाचीं उच्छिष्ट उत्तरें। तींच परिसा तुम्ही आदरें। श्रोते म्हणती उच्छिष्ट खरें। तरी तेंच कां हो बोलतां। १३ पराचें उच्छिष्ट अंगीकार। कदा न करिती श्रोते चतुर। संदेह-धनुष्य घेऊनि थोर। प्रश्नाक्षर-शर सोडिती। १४ तों वक्त्यानें स्फूर्ति-धनुष्य घेऊन। शास्त्र-संमत

लिए तुम दशरथ के पुत्र (के रूप में उत्पन्न) हो गये हो। ७ पाँचवें अध्याय के अन्त में यह कथा (कही) है—दशरथ ने राम गाधि-सुत विश्वामित्र को (सौंप) दिये। इसके बाद जो यथार्थ में घटित हो गया, अब उसे सावधान होकर सुनो। ८

श्रीराम गुरु की शरण में जाने के लिए प्रस्तुत हुए। वालमीकि ने यह अद्भुत कथा (जिस ग्रन्थ में) कही, वह बृहद् वासिष्ठ (नामक) ग्रन्थ है। उसमें छत्तीस हज़ार छन्द हैं। ९ वह समुद्र-सा बड़ा ग्रन्थ है। जिस प्रकार प्यासा मनुष्य गंगा नदी में से अंजली से पानी लेकर पीता है, उसी प्रकार उस (परम विशाल ग्रन्थ) का सार-भूत मुख्य अर्थ मैं कहूँगा। १० (गोताखोर) समुद्र में डुबकी (गोता) लगाकर (केवल) तेजस्वी मोतियों को चुनकर निकाल लेते हैं। अथवा याचक को अपार धन मिल जाए, तो (भी) वह (उसमें से) यथाशक्ति लेकर थैली (में) बाँध लेता है। भूख से व्याकुल मनुष्य ने अन्न का पर्वत देखा, तो भी वह अपने लिए जितना आवश्यक हो, उतना ही लेता है। उसी प्रकार बृहद् वासिष्ठ ग्रन्थ विशाल है, (फिर भी हे श्रोताओ,) उसका गुह्यार्थ (ही) सुनो। ११–१२ वाल्मीकि ऋषि के जो उच्छिष्ट—जूठे वचन हैं, तुम उन्हीं को आदरपूर्वक श्रवण करो। (इसपर) श्रोताजन कहते हैं—(यदि) वह सचमुच जूठन है, तो तुम वही क्यों कहते हो? १३ चतुर श्रोता दूसरे के जूठे वचन कदापि स्वीकार नहीं करते। (इसलिए) वे सन्देह रूपी बड़ा धनुष लेकर प्रश्न रूपी बाण चलाते हैं। १४ त्यों ही वक्ता ने स्फूर्ति रूपी धनुष्य लेकर

टाकूनि बाण। प्रश्नाक्षर-शर निवारून। संदेह-धनुष्य छेदिलें। १५
वक्ता म्हणें ऐका सावधान। कोणतें उच्छिष्ट घेती सज्जन।
तरी तें मधुमक्षिकांचें उच्छिष्ट पूर्ण। मधु आवडे देवांतें। १६
वत्स आधीं करी दुग्धपान। तें अवश्य घ्यावें न करितां
अनमान। भ्रमर आधीं जाय पुष्प सेवून। परी तें शास्त्रज्ञ
अंगीकारिती। १७ मेघमुखींचें जीवन। तें उच्छिष्ट नव्हे
कदा जाण। यागींचा पुरोडाश पूर्ण। उच्छिष्ट कोण म्हणे
त्यासी। १८ गौतमें गोदा आणिली प्रार्थून। तेणें आधीं केलें
स्नान-पान। व्यासाचें उच्छिष्ट पुराण प्राचीन। पूर्ण उच्छिष्ट
नव्हे तें। १९ विष्णु-नैवेद्य पावन। त्यास उच्छिष्ट म्हणेल
कोण। वाल्मीक-काव्य म्हणोन। उच्छिष्ट नव्हे सर्वथा। २०
व्याघ्रमृगचर्म गहन। सूकरकेश पट्टकुलें जाण। हस्तिदंत
गवाश्रृंग पूर्ण। इतुकीं ब्राह्मण पवित्र म्हणती। २१ असो ऐका
पूर्वानुसंधान। यागरक्षणार्थ जातां रघुनंदन। कौशिकाप्रति

शास्त्र से सम्मत (वचन रूपी) बाण चलाकर प्रश्नों के अक्षर रूपी बाणों का निवारण करते हुए (विपक्षी के) सन्देह रूपी धनुष को काट डाला। १५
वक्ता कहता है—सावधान होकर सुनो। सज्जन किसके उच्छिष्ट को स्वीकार करते हैं? वह (मधु) तो मधुमक्खियों का ही पूर्ण उच्छिष्ट होता है। (फिर भी) ऐसा वह मधु देवों को भाता है। १६
बछड़ा (गाय का) दूध पहले पीता है। फिर भी संकोच या संशय न करते हुए वह अवश्य लें। भ्रमर तो फूल का (रस-) सेवन पहले कर जाता है, फिर भी शास्त्रों के जानकार स्वीकार करते हैं। १७
समझ लो, मेघ के मुख से बरसनेवाला पानी कदापि जूठा नहीं होता (माना जाता)। पुरोडाश यज्ञ में हवन किये जानेवाले द्रव्य का जो शेष भाग होता है, उसे जूठा कौन कहता है? १८
गौतम ऋषि प्रार्थना करके गोदावरी नदी को ले आये। उन्होंने उसमें पहले स्नान और (जल) पान किया। (फिर भी गोदावरी के जल को कोई जूठा नहीं समझता।) पुरातन पुराण (एक दृष्टि से) व्यास ऋषि का उच्छिष्ट है, फिर भी वह कदापि उच्छिष्ट नहीं है। १९
भगवान् विष्णु को समर्पित नैवेद्य (भोग) पवित्र होता है। कौन उसे जूठन कहेगा? अतः वाल्मीकि ऋषि का रचा हुआ काव्य कदापि जूठा नहीं है। २०
श्रेष्ठ बघ-छाला (बाघ का चमड़ा) और मृगछाला, सूअर के बालों से बना कूँचा, रेशमी वस्त्र, हाथी-दाँत, बनबैल का सींग—इतनी (इन) वस्तुओं को ब्राह्मण पवित्र कहते हैं। २१

राजीवनयन। बोलता जाहला तेधवां। २२ श्रीराम म्हणे
महाऋषी। मज तुम्ही नेतां युद्धासी। क्षणभंगुरता देहासी।
आत्मप्राप्ति नाहीं मातें। २३ आत्मप्राप्तीविण साधन। जैसे
अलंकार गळसरीविण। कीं दीपाविण शून्य सदन। जीवनाविण
सरिता जैसी। २४ कीं प्राणाविण कलेवर। कीं आवडीविण
आदर। कीं इंद्रियनिग्रहाविण आचार। अनाचार तोचि
पैं। २५ कीं भ्रताराविण कामिनी। कीं अत्रिसुताविण रजनी।
तैसे आत्मप्राप्तीवांचूनी। व्यर्थ प्राणी नाडले। २६ आत्म-
प्राप्तीसी कारण। धरावे श्रीगुरूचे चरण। गुरुकृपेविण ज्ञान।
कल्पांतींही साधेना। २७ पदार्थ न दिसे नेत्रेंविण। गोड न वाटे
जीवनाविण। परिसाविण सुवर्ण। लोहाचें नोहे कल्पांतीं। २८
जो गुरुसेवेसी सादर। आत्मज्ञान जोडोनि कर। उभा त्यापुढें
निरंतर। अहोरात्र तिष्ठतसे। २९ गुरुसेवा ज्यासी नावडे।

अस्तु। (अब) पूर्वक्रम के अनुसार (कथा) सुनो। तब यज्ञ की रक्षा के लिए जाते समय कमलनयन रघुनन्दन श्रीराम विश्वामित्र से बोले। २२ श्रीराम ने कहा—हे महर्षि ! तुम मुझे युद्ध के हेतु लिये जा रहे हो। देह क्षण-भंगुर है। मुझे आत्म-ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो रही है। २३ जिस प्रकार (स्त्री के लिए) बिना (सौभाग्य सूचक चिह्न) मंगल-सूत्र के आभूषण व्यर्थ होते हैं, अथवा बिना दीपक के गृह शून्य होता है, अथवा जल-हीन नदियाँ निरर्थक होती हैं, अथवा प्राण-हीन शरीर अथवा प्रेम-हीन आदर व्यर्थ होता है, अथवा जैसे बिना इन्द्रियों के संयम के आचार-व्यवहार अनाचार (दुराचार) ही माना जाता है, वैसे ही बिना आत्म-ज्ञान के साधना को निरर्थक समझा जाता है। २४-२५ अथवा पति के अभाव में कामिनी (का अस्तित्व) अर्थहीन है, अथवा चन्द्र के अभाव में रात अर्थ-हीन है, वैसे ही बिना आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के (मनुष्य) प्राणी व्यर्थ ही नष्ट हो जाते हैं। २६ (इसलिए) आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के हेतु श्रीगुरु के चरण पकड़ लें (चरणों का आश्रय ग्रहण किया जाए)। बिना गुरु की कृपा के (आत्म-) ज्ञान कल्पान्त तक भी सिद्ध नहीं होगा। २७ बिना नेत्र के पदार्थ दिखायी नहीं देता। पानी के अभाव में (पदार्थ) मधुर नहीं लगता। बिना पारस के, लोहे का सोना कल्पान्त में (भी) नहीं हो जाता। २८ जो (मनुष्य) गुरु की सेवा के लिए तत्पर (आदरपूर्वक तैयार) रहता है, उसके सामने आत्म-ज्ञान हाथ जोड़कर अविरल दिन-रात खड़ा रहता है। २९ जिसे गुरु की सेवा (करना)

त्याचे ज्ञानासी पडले किडे। जन्ममरणांचें सांकडें। न सरे त्याचें कल्पांतीं। ३० ज्यासी नावडे गुरुसेवन। तो जाह्ला चतु:षष्टिकळाप्रवीण। साही शास्त्रें मुखोद्गत पूर्ण। परी तें भाषण मद्यपियाचें। ३१ तेणें केलें जरी कीर्तन। दावी वरपांगें डोलोन। परी गुरुदास्य नावडे पूर्ण। त्याचें बंधन चुकेना। ३२ जळो जळो त्याचा प्रताप। काय चाटावें कोरडें तप। जैसें विगतधवेचें स्वरूप। यौवन काय जाळावें। ३३ गर्भान्धाचे विशाल नेत्र। अदातयाचें उंच मंदिर। कीं धनलुब्धाचा तत्त्वविचार। कीं रम्य गृह अंत्यजाचें। ३४ भ्रष्टासी कायसें कुळगोत्र। श्वान नेणे पवित्रापवित्र। जैसें मद्यपियाचें पात्र। श्रोत्रिय न शिवे सर्वथा। ३५ तैसे गुरुकृपेविण जे नर। व्यर्थ नरदेहा आले खर। सदा विषयव्यापारीं सादर।

अच्छी नहीं लगती, उसके ज्ञान में (मानो) कीड़े लगे। उसके लिए जन्म-मरण का संकट कल्पान्त में (भी) नहीं टलता। ३० जिसे गुरु-सेवा अच्छी नहीं लगती, ऐसा मनुष्य यद्यपि चौंसठ कलाओं में प्रवीण हुआ (हो), छहों शास्त्र पूर्णतः उसके मुखोद्गत हो गये (हों) तथापि उसका (वह) भाषण मद्यपी का (-सा) होता है। ३१ यद्यपि उसने कीर्तन किया (हो)। और ऊपरी-तौर से डोल-झूमकर उसने (भक्ति-भाव) दिखाया (हो), तो भी, चूँकि उसे गुरु की दासता (दास्य भक्ति) पूर्णतः अच्छी नहीं लगती, उसके (जन्म-मृत्यु आदि सम्बन्धी सांसारिक) बन्धन नहीं टलते। ३२ जल जाए—जल जाए उसका प्रताप! (उसकी ऐसी) कोरी तपस्या को (लेकर) क्या चाटें? विधवा का सौन्दर्य और यौवन क्या जला दें?—अर्थात् वह जैसे अर्थहीन है, वैसे ही गुरु-सेवा के अभाव में ज्ञान, तप आदि व्यर्थ है। ३३ गर्भावस्था से ही जो अन्धा है, उसके नेत्र विशाल होने पर भी किस काम के? जो दानी नहीं है, ऐसे व्यक्ति का ऊँचा भवन किस काम का? अथवा धन के प्रति लुब्ध व्यक्ति का तत्त्व सम्बन्धी विचार, अथवा अन्त्यज (अछूत) का रमणीय घर व्यर्थ होता है। ३४ शील या आचार-भ्रष्ट व्यक्ति का कैसा (उच्च) कुल और गोत्र! कुत्ता पवित्र और अपवित्र नहीं जानता। जिस प्रकार शराबी के पात्र को श्रोत्रीय ब्राह्मण कदापि नहीं छूता, वैसे ही गुरु-सेवा न भानेवाले व्यक्ति को अस्पृश्य—सम्बन्ध रखने के लिए अयोग्य मानते हैं। उसी प्रकार गुरु-कृपा के बिना जो लोग (रहते) हैं, वे गधे ही हैं, जो व्यर्थ ही नर-देह को प्राप्त हुए हैं। वे हमेशा विषय-व्यवहार में तत्पर रहते हैं।

त्यांसी आपपर नाठवे । ३६ उत्तम मनुष्यदेह पावोन । तेथें साधावें आत्मज्ञान । ज्ञानहीन ते मूढ पूर्ण । गूढ नरक भोगिती । ३७ रघुपतीचे बोल ऐकुनी । सभासंत सुखावले मनीं । विश्वामित्र तेव्हां आनंदोनी । ब्रह्मनंदनाप्रति बोले । ३८ जगद्वंद्य रविकुलभूषण । त्यास उपदेशी दिव्यज्ञान । जो अनंतब्रह्मांडांची सांठवण । लीलावेषधारक जो । ३९ ते वेळे उठोनि रघुनाथ । जो होय कमलोद्भवाचा तात । तो वसिष्ठासी साष्टांग नमित । शरणागत जाहला असे । ४० म्हणे तनमनधनेंसीं अनन्य । श्रीवसिष्ठा तुज मी शरण । ऐसें ऐकतां ब्रह्मनंदन । हृदयीं धरी राघवातें । ४१ म्हणे जगद्वंद्या श्रीरामा । अवतारपुरुषा परब्रह्मा । तूं सच्चिदानंदघन परमात्मा । तुज मी काय उपदेशूं । ४२ तूं आदिनारायण निष्कलंक । भोगींद्र जाहला तुझा तल्पक । वेदशास्त्रांसी पडलें ठक । तुझें स्वरूप वर्णितां । ४३ तुझें नाम जपतां सार ।

उन्हें अपना-पराया याद नहीं रहता । ३५-३६ उत्तम मनुष्य शरीर प्राप्त कर उस (मनुष्य-जीवन) में आत्म-ज्ञान की सिद्धि करें । जो ऐसे आत्म-ज्ञान-हीन हैं, वे पूरे-पूरे मूढ़ हैं और वे गहन नरक (वास) का भोग करते हैं । ३७

(वक्ता द्वारा कहे हुए) रघुपति श्रीराम के ऐसे वचन सुनकर सभा में उपस्थित सज्जन मन में सुख को प्राप्त हो गये । तब विश्वामित्र ने आनन्दित होकर ब्रह्म-नन्दन वसिष्ठ से कहा । ३८ जो श्रीराम जगत् के लिए वन्दनीय हैं, रविकुल के भूषण हैं, जो अनन्त ब्रह्माण्डों के संग्रह और लीला-वेशों के धारक हैं, उन्हें (तुम) दिव्य ज्ञान का उपदेश दो । ३९ उस समय श्रीराम, जो ब्रह्मा के पिता हैं, उठकर वसिष्ठ ऋषि को साष्टांग नमस्कार करके, उनकी शरण में गये । ४० (वे) कहते हैं—'हे श्रीवसिष्ठ (गुरो), तन-मन-धन से, अनन्य भाव से तुम्हारी शरण में आया हूँ ।' यह सुनकर ब्रह्म-नन्दन वसिष्ठ ने श्रीराम को गले लगा लिया । ४१ उन्होंने कहा—हे जगद्-वन्द्य श्रीराम ! हे अवतार धारण करनेवाले (परम) पुरुष, हे परब्रह्म ! तुम सच्चिदानन्द-घन परमात्मा हो । मैं तुम्हें क्या उपदेश दूँ ? ४२ तुम आदि-नारायण हो, निष्कलंक हो । योगीन्द्र शेष भगवान् तुम्हारे लिये पलंग हो गये हैं । तुम्हारे रूप का वर्णन करते हुए वेद-शास्त्र थक गये । ४३ तुम्हारे श्रेष्ठ नाम का जाप करने पर अपर्णा-पति

शीतळ जाहला अपर्णावर। गुरुमहिमा प्रगटवावया साचार।
शरण मज आलासी। ४४ देव भक्तांची पूजा करी यथार्थ।
याचकांसी राजा दान मागत। सागर जैसा स्तवन करीत।
सरोवराचें प्रीतीनें। ४५ वाचस्पति मुक्यासी पुसे विचार।
दीपप्रकाश इच्छी दिनकर। चकोरांसी म्हणे अत्रिकुमर।
मज तृप्त करा तुम्ही। ४६ कल्पतरु दुर्बळासी मागे दान।
जलद चातकासी मागे जीवन। चक्रवाकाचें दर्शन। तरणि
इच्छी नवल हें। ४७ प्रीतीनें माता बाळकासी म्हणत। मी
तुझें स्तनपान करीन सत्य। कीं तृषाक्रांतासी मागत। उदक
जैसें जान्हवी। ४८ वनस्पतींस म्हणे वसंत। मज तुम्ही
निववा समस्त। तैसा तूं जगद्गुरु रघुनाथ। गुरूसी शरण
आलासी। ४९ संतोषोनि ब्रह्मनंदन। श्रीरामास सन्मुख
बैसवून। गुरुसंप्रदाय शास्त्रप्रमाण। महावाक्य दीक्षाविधि। ५०
जो मायानियंता जगद्भूषण। तो वसिष्ठापुढें ओढवी कर्ण।

श्रीशिवजी शीतलता को प्राप्त हो गये। तुम वस्तुतः गुरु-महिमा को प्रकट करने के हेतु मेरी शरण में आये हो। ४४ तुम्हारा मेरी शरण में आना ठीक वैसे ही है जैसे यथार्थतः देवता भक्तों का पूजन कर देते हैं, जैसे राजा याचक से दान माँगता हो, समुद्र प्रीति-पूर्वक सरोवर का स्तवन करता हो, जैसे बृहस्पति गूँगे से विचार-परामर्श पूछ लेता हो, सूर्य दीये का प्रकाश चाहता हो, जैसे चन्द्रमा चकोरों से कहता हो कि तुम मुझे तृप्त करो, जैसे कल्पवृक्ष दुर्बल से दान माँगता हो, जैसे मेघ चातक से पानी माँगता हो; अथवा जैसे सूर्य चक्रवाक के दर्शन की इच्छा करता हो—यह सब आश्चर्य (कारी) है। ४५-४७ तुम्हारा मेरी शरण में आना ठीक वैसे ही है, जैसे माता प्रेम-पूर्वक बालक से कहे कि मैं सचमुच तेरा स्तन-पान करूँगी; अथवा गंगा प्यासे व्याकुल मनुष्य से पानी माँगे; अथवा वसन्त वनस्पतियों से कहे कि तुम सब मुझे शान्त करो। वैसे ही (यह बात अद्भुत है कि) हे जगद्गुरु रघुनाथ श्रीराम, तुम गुरु की शरण में आये हो। ४८-४९ ब्रह्म-नन्दन वसिष्ठ ने सन्तुष्ट हो श्रीराम को सामने बैठाकर, गुरु-सम्प्रदाय और शास्त्रों की आज्ञा के अनुसार महावाक्य (अर्थात् वेदों के अनुसार जीव और ब्रह्म की अभिन्नता सूचित करनेवाले 'तत्त्वमसि' वाक्य का अथवा गायत्री मंत्र) का उपदेश देते हुए दीक्षा-विधि को सम्पन्न किया। ५० जो (श्रीराम) माया के नियन्ता और जगत् के लिए आभूषण हैं, वे वसिष्ठ के सामने (श्रवण करने के लिए) कान कर बैठे हैं (अर्थात्

चहूं वेदांचें जीवन। तें महावाक्य ऋषि सांगे। ५१ वसिष्ठ म्हणे सप्रेम। सर्वद्रष्टा तूं आत्माराम। सर्वव्यापक तूं पूर्णब्रह्म। अतींद्रिय वेगळा। ५२ जगडंबराभास सकळ। हा तुझे मायेचा खेळ। मिथ्याभूत जैसें मृगजळ। साच नव्हे सर्वथा। ५३ तूं अलिप्त सर्वांसी तत्वतां। जैसा सर्वां घटीं बिंबला सविता। कीं काष्ठामाजी अग्नि पाहतां। अलिप्त जैसा असोनि। ५४ कीं वाद्यांमाजी ध्वनि उमटती। कीं कंठीं राग उठती। परी तेथें असोनि नसती। जैसा सर्वां भूतीं राघवा तूं। ५५ कीं दर्पणींचीं स्वरूपें। दिसती परी मिथ्यारूपें। तैसा रामा तूं विश्वरूपें। व्यापोनियां अलिप्त। ५६ बीजामाजी तरुवर। कीं तंतूमाजी वस्त्र। कीं उदकीं तरंग अपार। विश्व समग्र तुजमाजी। ५७ अनंत ब्रह्मांडांच्या कोडी। तुझी माया घडी मोडी। जीवांस भुरळ घालोनि पाडी। विषयावर्तीं सर्वदा। ५८ मायेचे अवघे विकार। ते मृगजळाचे

ध्यानपूर्वक श्रवण करने के लिए बैठे हैं और वसिष्ठ) ऋषि उन्हें चारों वेदों का जीवन-भूत वह महावाक्य (=तत्त्वसि) सुनाते हैं। ५१ वसिष्ठ ने प्रेमपूर्वक कहा—(हे श्रीराम,) तुम सर्वद्रष्टा आत्माराम हो, तुम सर्वव्यापक पूर्णब्रह्म हो, अतीन्द्रिय एवं अनोखे हो। ५२ जगत् का समस्त ठाठबाट और झलक तुम्हारी माया का खेल है। जिस प्रकार मृग-मरीचिका मिथ्या (भ्रम) होता है, वैसे ही यह सब मिथ्या है, यह कदापि सत्य नहीं है। ५३ जिस प्रकार समस्त घटों में प्रतिबिम्बित होने पर भी सूर्य उनमें नहीं होता, अथवा काठ में अग्नि होने पर भी वह उससे अलिप्त रहती है, उसी प्रकार तुम वस्तुतः सब में होते हो, फिर भी सबसे अलिप्त हो। अथवा वाद्यों में से ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं (यद्यपि वे उनमें नहीं होतीं), अथवा कण्ठ से राग (गीत) निकलते हैं, फिर भी वे वहाँ होने पर भी नहीं होते, वैसे ही हे श्रीराम, तुम सब भूतों में होने पर भी नहीं हो। ५४-५५ अथवा दर्पणों में (दिखायी देनेवाले) रूप, दीखते तो हैं, फिर भी वे मिथ्या-आभास रूप हैं, उसी प्रकार हे श्रीराम, तुम विश्व को अपने रूप से व्याप्त किये रहने पर भी उससे अलिप्त हो। ५६ जैसे बीज के अन्दर बड़ा वृक्ष होता है, अथवा तन्तु के अन्दर वस्त्र अथवा जल के अन्दर असंख्य तरंगें होती हैं, वैसे ही समग्र विश्व तुम में है। ५७ अनन्त ब्रह्माण्डों की पंक्तियों में तुम्हारी माया सुव्यवस्था को बिगाड़ देती है, जीवों को मोहित करके विषय (वासना) के भँवर में नित्य डाल देती है। ५८

रामर समान पुरुष उत्तम इतिनि लोकत नाइ।
त्रैलोक्यर रूप इहान शरीरे थैला बिधि एक ठाइ ॥ ६४
सीतार सदृश एहेन्तेसे बर बिधि निर्म्मिलन्त जानि।
सयम्बर सम— यत मिथिलात दैवे मिलाइलन्त आनि ॥
जनक नृपति कि कार्य्य करिला अंगीकार बिपरीत।
कठिन धनुत कोमल शरीरे नपारिबे गुण दित ॥ ६५
इहेन बरत आपोन इच्छाये सीताक दिबे नपाइल।
येन कोनजने हातर अमृत आपुनि ठेलि पलाइल ॥
येन नवनिधि पाया हरुवावे दरिद्र आपोन दोषे।
रामक देखिया यत नर-नारी एहिमते सबे घोषे ॥ ६६
मुनिर पिचत परम हरिषे चलन्त राम—लक्ष्मण।
विश्वामित्र मुनि सयम्बर शाला पाइल गैया कतक्षण ॥
जनक नृपति देखि सचकित उठिलन्त चालि गाव।
आपुनि आसन पारिया दिलन्त बुलि आति मृदुभाव ॥ ६७
पाचे जानुशिरे परशि सादरे करिलन्त नमस्कार।
सअर्घे ऋषिक करिलन्त पूजा हरिषर नाई पार ॥
सुखे आसनत बसिया आछन्त विश्वामित्र मुनिबर।
दक्षिणत राम रामत लक्ष्मण आरो शिष्य निरन्तर ॥ ६८
गौतमर पुत्र नामे शतानन्द पुरोहित जनकर।
विश्वामित्र महा मुनिक देखिया सादरिला बहुतर ॥
राम—लक्ष्मणक देखि शतानन्द पुछिला बिश्वामित्रत।
काहार कुमार रूपे मनोहर देखि नतो हेनमत ॥ ६९

राम के समान उत्तम पुरुष इन तीनों लोकों में नहीं है। तीनों लोकों का सारा रूप विधाता ने एक ही स्थान पर एकत्रित कर दिया है ॥११६४॥ यह जानता हूँ कि सीता के योग्य ऐसा वर विधाता ने ही निर्माण किया है। दैव ही ने इनको स्वयम्वर के समय मिथिला में ला पहुँचाया है। राजा जनक ने यह कैसी विपरीत प्रतिज्ञा कर डाली। यह कोमल शरीर उस कठिन धनुष पर प्रत्यंचा नहीं चढ़ा पायेगा ॥ ११६५ ॥ इन सरीखे वर को जनक अपनी इच्छा से सीता को न दे सकेंगे—मानों किसी ने अपने हाथ का अमृत खुद ही धकेल कर गिरा दिया हो। मानों नवनिधि पाकर दरिद्र ने अपने ही दोष से उसे गँवा दिया हो। राम को देखकर सारे नर-नारी इसी प्रकार की घोषणा करने लगे ॥ ११६६ ॥ मुनि के पीछे-पीछे बड़े हर्ष से राम-लक्ष्मण चलते रहे। कितनी ही देर में विश्वामित्र मुनि स्वयंवर शाला में जा पहुँचे। चकित होकर राजा जनक उठकर उनकी ओर चल पड़े। स्वयं ही उनके लिए आसन बिछाकर बड़े मृदुभाव से उनसे बोले ॥ ११६७ ॥ बाद में जाँघ और शिर का स्पर्श कर उनको सादर नमस्कार किया और अर्घ्य सहित ऋषि की पूजा की, जिससे उनके हर्ष का ओर-छोर न रहा। सुख से आसन पर मुनिवर विश्वामित्र बैठे हैं। उनके दक्षिण में राम और वाम दिशा में लक्ष्मण एवं कितने ही शिष्य बैठे हैं ॥ ११६८ ॥ शतानन्द नामक गौतम का पुत्र जनक का पुरोहित है। उसने महामुनि विश्वामित्र को देखकर उनका कई तरह से समादर किया। शतानन्द ने राम-लक्ष्मण को देखकर विश्वामित्र से पूछा, ये किस राजा के कुमार हैं? ऐसा मनोहर रूप धारण करनेवाला और कोई नहीं देखा ॥ ११६९ ॥ तब शतानन्द के सम्मुख ऋषि विश्वामित्र ने

शतानन्द आगे ऋषि बिश्वामित्रे कहिला कथा सकल।
दशरथ महा राजार तनय राम एन्ते महाबल ॥
रामर कनिष्ठ एहेन्ते लक्ष्मण परम गुणे युगुत।
चरणे परशि मातृक तोमार करिला रामे मुकुत ॥ ७०
रामर चरण प्रसादे अहल्या घोर शाप निस्तारिला।
गौतम आसिया रामक प्रशंसि अहल्याक संवरिला ॥
शुनि शतानन्दे भैलन्त हरिष पाइलन्त मातृ निस्तार।
रामक प्रशंसि ऋषिक बोलन्त प्रसाद इटो तोमार ॥ ७१
नोहन्त मानुह परम पुरुष जानिलो राम निश्चय।
जगत निस्तार हेतु अवतार भैला एन्ते महाशय ॥
यिटो पदधूलि सदा आराधन्त ब्रह्मा आदि देवगणे।
याक आशा करि सर्ब्ब पुरुषार्थ एरे महा महाजने ॥ ७२
हेनय परम दुर्ल्लभ धूलाक पाइला मातृ मोर लाग।
जानि लोक तरा कोटि जनमर आछे तान महाभाग ॥
आमियो चक्षुये देखिलो रामक कतबा पुण्यर फले।
एहि बुलि शता— नन्दे राघवक अर्च्चिलन्त कौतुहले ॥ ७३
यत यत महा महाराजागण आछय बसि सभात।
रामक देखिया समस्ते राजार मुखत हरिल मात ॥
राघवर महा तेजे धरषिल भैल आति संकोचित।
प्रमत्त सिंहक देखि मृगगण होवे येन भये भीत ॥ ७४
सयम्बर सम— ज्यात यत यत आछे नर-नारीचय।
रामर अद्भुत रूपक देखिया भैं गैला महा विस्मय ॥

सारी बातें बतायीं। यह महाबली राम महाराजा दशरथ के पुत्र हैं। राम का छोटा भाई यह लक्ष्मण परम-गुणों से युक्त है। इसी राम ने तुम्हारी माँ को चरणों से स्पर्श कर मुक्त किया है ॥ ११७० ॥ राम के चरणों की कृपा से अहल्या को घोर शाप से निस्तार मिला है। गौतम ने आकर राम की प्रशंसा कर अहल्या को सँभाल लिया है। माँ को निस्तार मिला है, यह सुनकर शतानन्द हर्षित हुआ। राम की प्रशंसा कर उसने ऋषि से कहा, यह तुम्हारी ही कृपा से संभव हुआ ॥ ११७१ ॥ यह मैंने निश्चय रूप से जान लिया कि राम परम पुरुष हैं, मनुष्य नहीं। संसार के निस्तार के लिए इन महापुरुष का अवतार हुआ है। जिस पदधूलि के लिए ब्रह्मा आदि देवता सदा आराधना किया करते हैं, जिसकी आशा करते हुए बड़े-बड़े महापुरुष भी सभी पुरुषार्थों का त्याग कर देते हैं ॥ ११७२ ॥ ऐसी परम दुर्लभ धूलि मेरी माँ को मिल गई। मैं जानता हूँ कि वह कोटि जन्म के लिए तर गई। वह महाभाग्यवती है। मैंने भी कितने ही पुण्यों के बल पर अपनी आँखों से देखा। यह कहकर शतानन्द ने कौतूहल से राम की अर्चना की ॥ ११७३ ॥ जितने बड़े-बड़े महाराजा सभा में बैठे थे, राम को देखकर उन सभी राजाओं की बोलती बन्द हो गई। राघव के महातेज ने उनको अभिभूत किया, वे अत्यन्त संकुचित से हो गये जिस प्रकार प्रमत्त सिंह को देखकर हिरन भयभीत हो जाते हैं ॥ ११७४ ॥ स्वयंवर-समाज में जितने नर-नारी थे, राम का अद्भुत रूप देखकर सब दंग रह गये। जिसकी दृष्टि राम के जिस अंग पर भी पड़ गई वहाँ से वह हटाई नहीं जा सकी, वहीं की

यार येहि अंगे रामर रूपत परि गैला दृष्टिपात।
पुनरपि आर पालटि नासय रहिल तंभि तथात ॥ ७५
रामक देखिते नखंडे तृपित लागि गैल येन ध्यान।
अमतृक येन पिवन्ते पिवन्ते जुराय तनु मन प्राण ॥
जनकनन्दिनी देखिले रामक रूप आति बिपरीत।
रामर रूपत निमजिल मन भैगैल देवी मोहित ॥ ७६
मनत बोलन्त कोन नो बिधिये स्रजिला रूप रामर।
कोटि एक काम देवो जानो आन नुहिबेक समसर ॥
एहेन्तेसे मोर हैबे निजपति करिलो मने निश्चय।
इहान आगत देखो येन मरा आछे यत राजाचय ॥ ७७
रामत बिनाइ आन पुरुषक नबरिबो कदाचित।
किबा काजे मोर पितृ करिलन्त अंगीकार बिपरीत ॥
तथापि आनक नभजिबो यदि धनुत गुण लगावे।
पितृर बचन छन्न करि मइ भजिबो रामर पावे ॥ ७८
रामर नखर समान नाहिके इतिनि लोकर माजे।
इहांक एरिया आन पुरुषक भजिबो कमन काजे ॥
मोहर कर्म्मर फले जानो आनि रामक मिलाइला बिधि।
अकस्मात् हेन दरिद्रर हाते उपगत नवनिधि ॥ ७९
रामक एरिया कोन अभागिनी आनक भजिबे जाय।
हातर अमृत एरि कोनजनी मरिबेक बिष खाइ ॥
एहिमते सीता देवी कान्दिलन्त रामर चरण सार।
तेजि आन काम बोला राम राम यत लोक समज्यार ॥११८०

वहीं चिपक कर रह गई ॥ ११७५ ॥ राम को देखते हुए मानों किसी का भी मन भर नहीं रहा है—सभी मानों ध्यान-मग्न हो गये। मानों अमृत पीते-पीते सभी के तन-मन जुड़ाने लगे। जनकनन्दिनी सीता ने राम का ऐसा अद्भुत रूप देखा। राम के रूप में उनका मन डूब गया और वे मुग्ध हो गईं ॥ ११७६ ॥ वे मन ही मन बोलीं, जाने किस विधाता ने राम के रूप का सृजन किया है। एक करोड़ कामदेव भी इनके समान नहीं होगें। सीता ने अपने मन में यह निश्चय किया कि यही मेरे पति होंगे। इनके आते ही मानो सारे राजाओं का समूह मृत सा हो गया ॥ ११७७ ॥ राम के बिना अन्य किसी भी पुरुष का मैं कभी भी वरण नहीं करूँगी। जाने किस कारण मेरे पिता ने ऐसी विपरीत प्रतिज्ञा कर डाली। फिर भी यदि अन्य किसी ने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा दी तो मैं पिता की बात की उपेक्षा कर राम के चरणों की सेवा करूँगी ॥ ११७८ ॥ इन तीनों लोकों में कोई राम के नख के समान भी नहीं है। इनको छोड़ कर दूसरे पुरुष का भला मैं क्यों भजन करूँगी। मेरे कर्मों के फल के कारण ही शायद विधाता ने राम को लाकर मिलाया है। सहसा ही ऐसे दरिद्र के हाथों में नवनिधि आ गई है ॥ ११७९ ॥ ऐसी कौन अभागिन होगी जो राम को छोड़ कर अन्य की उपासना करेगी। कौन है जो हाथ का अमृत छोड़कर विष का पान कर मर जायेगा। इसी प्रकार से सीतादेवी राम के चरण को सार समझकर रोती रहीं। हे समाज के लोगो! दूसरा काम छोड़कर राम का नाम लो ॥ ११८० ॥

पद

राम लक्ष्मणक देखि जनक नृपति * विश्वामित्र मुनित पुछिला महामति
किबा नाम आन दुइरो काहार तनय * महा रूपवन्त आतिशय शुभानय১১৮১
आपोनार कहियो कुशल आगमन * आज्ञा करियोक किबा साधो प्रयोजन
शुनि हासि विश्वामित्रे बुलिला बचन * आरा दुइ दशरथ राजार नन्दन১১৮২
आन राम नाम सर्ब्बगुणर आलय * आन नाम लक्ष्मण परम शुभानय
श्रेष्ठ राम कनिष्ठ लक्ष्मण बीरबर * जानिबा रामक तुमि परम ईश्वर ৮৩
परम पुरुष हरि जगत आधार * रामरूपे भैला पृथिवीत अवतार
हरिवा भूमिर भार राक्षस संहरि * तयु गृहे लक्ष्मी आछे सीता नाम धरि ৮৪
रामरेसे भार्य्या सीता जाना स्वरूपत * दियोक सीताक तुमि बिबाह रामत
हैबेक तोमार तेवे परम कल्याण * एहि प्रयोजने आसि आछो तयु स्थान ৮৫
त्रैलोक्य विजयी राम महा धनुर्द्धर * त्रिभुवने नाहिके रामर समसर
जनक नृपति मातिलन्त हेन शुनि * मोहोर बचन शुनियोक महामुनि ৮৬
नाहि दशरथ राजा पृथिवीत सम * ताहान तनय राम पुरुष उत्तम
महा सुकुमार रूप लावण्य प्रचुर * भुवन मोहन आति मूरति मधुर ৮৭
एन्तेसे निश्चय पति हैवन्त सीतार * किन्तु मइ एक करि आछो अंगीकार
मृग मारि महादेवे दुवारे आमार * एरि गैल धनुखान येन बज्रसार ৮৮
ताक घरे थैया मइ बुलिलो बचन * इहाते लगाइबे गुण पारे यिटो जन
ताहान्ते बिबाह सीता दिबोहो निश्चय * नपारिले गुण दिबे यत राजाचय ৮৯

राजा जनक ने राम-लक्ष्मण को देखकर विश्वामित्र मुनि से पूछा, हे महामति, इन दोनों के क्या नाम हैं, ये किसके बेटे हैं ? ये तो बड़े ही रूपवान् और सुचरित्र हैं ।। ११८१ ।। अपना कुशल-मंगल बतावें और आगमन का कारण बतावें । आज्ञा करें, कौन सा प्रयोजन पूरा किया जाय । यह सुनकर विश्वामित्र ने हँस कर कहा, ये दोनों राजा दशरथ के बेटे हैं ।। ११८२ ।। इसका नाम राम है जो कि सारे गुणों का धाम है । इसका नाम लक्ष्मण है जो कि बड़ा ही चरित्रवान है । राम बड़ा है और वीरवर लक्ष्मण छोटा है । राम को तुम परम ईश्वर के रूप में जानना ११८३ ।। वे परमपुरुष भगवान् हैं और विश्व के आधार हैं । राम का रूप धारण करके उन्होंने संसार में अवतार लिया है । राक्षसों का संहार कर ये धरती का भार हरण करेंगे । तुम्हारे घर में सीता के रूप में लक्ष्मी है ।। ११८४ ।। यह प्रत्यक्ष रूप से जान लो कि सीता राम की भार्या है । राम से तुम सीता का विवाह करना । इससे तुम्हारा बड़ा कल्याण होगा । मैं इसी प्रयोजन से तुम्हारे पास आया हूँ ।। ११८५ ।। राम तीनों लोकों की विजय करनेवाला महान् धनुर्धर है । त्रिभुवन में राम के समकक्ष कोई नहीं । ऐसा सुनकर राजा जनक ने कहा, हे महामुनि, मेरी बात तो सुनो ।। ११८६ ।। संसार में दशरथ के समान कोई राजा नहीं । उनका पुत्र राम पुरुषोत्तम है । वह बड़ा ही रूपवान् है, उसमें लावण्य कूट-कूट कर भरा है । उसकी भुवन-मोहन मूर्ति अति मधुर है ।। ११८७ ।। यह अवश्य ही सीता का पति बनेगा, किन्तु मैंने एक प्रतिज्ञा कर रखी है । मृग मारने के उपरान्त महादेव मेरे दरवाज़े पर अपना वज्रसम धनुष छोड़ गये ।। ११८८ ।। उसको घर में रखकर मैंने यह वचन कहा, इस पर जो भी व्यक्ति प्रत्यंचा चढ़ा सकेगा उसी से मैं निश्चय रूप से सीता का विवाह करूँगा । जितने राजा हैं कोई भी प्रत्यंचा नहीं चढ़ा

रामक देखिया बसि गुणे मने-मने * मिछा अंगीकार करिलोहो कि कारणे
एन्तेसे जानिबा बर सीतार उचित * बिधाता आनिया करिलन्त उपस्थित ९०
महा उचपिच मुनि करे मोर चित्त * नपारिबे राघवे धनुत गुण दित
रामक चाहन्ते अंगीकार हरुवाओं * अंगीकार चाहो षेवे रामक नापाओं ९१
एकक चाहन्ते मोर अपरे नघटे * बाजिया रहिलो मइ उभय-संकटे
विश्वामित्रे बोलन्त जनक महाभाग * इसब चिन्ताक तुमि करा परित्याग ९२
कोन बस्तु धनुखान रामर आगत * नजानाहा तुमि रामचन्द्रर महत्त्व
ईषत कटाक्षे धनु भांगिबन्त रामे *पाइबन्त सीताक चिन्ता करा किबा कामे ९३
बुलिला जनके विश्वामित्रक दुनाइ * केमने गुचिबे चिन्ता शुनिओ आताइ
धरिलेक धनु महा महा राजागणे * लारिबाको नपारिला अनेक यतने ९४
कोमल शरीर राम बयसत अल्प * परम कठिन धनु येन बज्रकल्प
ताक धरि गैया रामचन्द्रे कि करिब * आछो गुण दिबे लारिबाको नपारिब ९५
धनुत लगाइबे गुण रामर नलागे * समाजत लघु केने हैब महाभागे
अंगीकार लारि सीता दिबोहो रामक * कैत खुजि पाइबो आर इमत बरक ९६
अजिज्ञासि पूर्ब्बत करिलो अंगीकार * ताक एरिलात दोष नाहिके आमार
यदि दोष होवे ताक नकरोहो उर * गुचिबे सकले दोष प्रसादे रामर ९७
शुनि बिश्वामित्र हासि बुलिलन्त बाणी * कराहा संशय तुमि रामक नजानि
एन्तेसे ईश्वर चराचर जगतर * धनु भांगिबन्त कोन प्रयास रामर ९८

सका ।। ११८९ ।। राम को देखकर वे मन ही मन विचारने लगे, नाहक मैंने ऐसी प्रतिज्ञा क्यों कर डाली। इसी को मैंने सीता का उचित वर जान लिया। विधाता ने स्वयं इसको यहाँ लाकर उपस्थित किया ।। ११९० ।। हे मुनि, मन व्याकुल हो रहा है, कदाचित् राम धनुष पर प्रत्यंचा नहीं चढ़ा सकेंगे। राम को चाहूँ तो अपनी प्रतिज्ञा गँवाता हूँ, और यदि प्रतिज्ञा को चाहूँ तो राम को गँवाता हूँ ।। ११९१ ।। एक को चाहने पर मुझे दूसरे से हाथ धोना पड़ता है। मैं बड़े ही उभय-संकट में फँस गया हूँ। विश्वामित्र ने कहा, हे महाभाग जनक, ये सारी चिन्ताएँ तुम त्याग दो ।। ११९२ ।। राम के सामने धनुष कौन बड़ी चीज़ है। तुम रामचन्द्र के महत्त्व को नहीं जानते। तनिक कटाक्ष से ही राम धनुष को तोड़ डालेंगे और सीता को प्राप्त करेंगे, क्यों नाहक चिन्ता करते हो ।। ११९३ ।। जनक ने फिर विश्वामित्र से कहा, हे गुसाईं सुनो, मेरी चिन्ता किस प्रकार दूर हो। बड़े-बड़े राजाओं ने धनुष सँभाले, किन्तु काफ़ी प्रयत्न करने के उपरान्त भी उसे हिला न सके ।। ११९४ ।। राम उम्र में छोटा और कोमल शरीर का है। धनुष अत्यन्त कठिन है, मानो वज्र हो। उसको रामचन्द्र कैसे उठा सकेगा! उस पर प्रत्यंचा चढ़ाना तो दरकिनार, उसको हिला भी नहीं सकेगा ।। ११९५ ।। राम धनुष पर प्रत्यंचा नहीं चढ़ा सकेगा। यह महाभाग व्यर्थ ही में समाज में क्यों अपमानित हो। प्रतिज्ञा भंग कर मैं राम को अपनी सीता दे दूँगा। इस प्रकार का वर मुझे और कहाँ ढूँढ़े मिलेगा ।। ११९६ ।। बिना पूछे-जाँचे पहले मैंने यह प्रतिज्ञा की थी। उसका उल्लंघन करने में मुझे दोष नहीं लगेगा। यदि दोष हो भी तो मैं उससे नहीं डरूँगा। राम की कृपा से मेरे सारे दोष मिट जाएँगे ।। ११९७ ।। सुनकर विश्वामित्र हँसे और बोले, तुम राम को जाने बिना ही मन में यह संशय कर रहे हो। यह तो चराचर विश्व के ईश्वर हैं। धनुष को तोड़ने में भला राम को कौन सा प्रयास करना पड़ेगा ।। ११९८ ।। राजा

चाहि थाका जनक नृपति कौतूहले * धनुते परीक्षा आजि पाइबाहा सकले
शुनि सीता मने कोप करन्त ऋषिक * मोहोर बिपक्ष एन्त आछरन्त किक ९९
अंगीकार पारि मोक बिहा दिबे चान्त * ऋषिर कारणे पितृ ताहाक नपान्त
धनु भांगिबाक एन्ते बोलन्त किसक * इहान निमित्ते मइ नपाइबो रामक १२००
राम मोर स्वामी हाते मिलाइलेक बिधि * बिश्वामित्र हेतु हरुवाइबो नवनिधि
लवनु पुतलि येन सुकोमल तनु * हेन रामे किमते भांगिबे बज्रधनु १२०१
नलागे भांगिबे धनु सीता देन्त हाक * अंगीकार एरि बिहा दियोक आमाक
पाचे बिश्वामित्र ऋषि बुलिला बचन * शुनियोक राम रघुकुलर नन्दन २
धनुखानि भांगि बिहा करियो सीताक * उठियो सत्वरे राखियोक मोर बाक
शुनि रामचन्द्रे उठिलन्त तावक्षणे * कंकालत बस्त्र काचिलन्त रंगमने ३
ऋषिक प्रणामि चलिलन्त रघुबर * देखि हासि तुलिलेक राजा निरन्तर
बर बर बीरे नपारिला लारिबाक * भैलो लघु लोके बेढ़ि हासिले आमाक ४
शिशुमति हुया ताक प्रति करे सास * हेनसे इहार जानकीक भैल आश
बिश्वामित्र मुनि शुनि चपराइला माथ * जानो धनु भांगिबे नपारे रघुनाथ ५
असुख अशान्ति आति मनत सीतार * हरि हरि बिधि सिद्धि न भैल आमार
हासिया चलन्त रामचन्द्र महाबल * प्रत्येक भरित मही करे टलमल ६
प्रमत्त केशरी येन यान्त महाशय * देखि राजागण भैल परम बिस्मय
गुचिल सबार हासि बिबर्ण बदन * सीता गोसानीर मन भैगैल प्रसन्न ७

जनक कौतूहल से देखने लगे कि आज सभी को धनुष की परीक्षा देखने को मिलेगी। यह सुनकर सीता ने मन ही मन ऋषि पर कोप किया कि यह किस प्रकार मेरे विपक्ष में हो गये ।। ११९९ ।। प्रतिज्ञा को परे रखकर पिता जी मेरा विवाह करना चाहते थे, किन्तु ऋषि के कारण वे ऐसा नहीं कर पा रहे हैं। किस कारण ये धनुष तोड़ने को कह रहे हैं? इन्हीं के कारण मैं राम को प्राप्त नहीं कर सकूँगी ।। १२०० ।। विधि ने मेरे लिए राम को पति के रूप में मेरे हाथों में ला दिया। विश्वामित्र के कारण ही मैं इस नवनिधि को खो दूँगी। राम का शरीर मक्खन के बने हुए गुड्डे के समान सुकोमल है। ऐसा राम किस प्रकार से उस वज्र-कठोर धनुष को तोड़ सकेगा ।। १२०१ ।। सीता ने निषेध किया कि धनुष तोड़ने की आवश्यकता नहीं है। प्रतिज्ञा का उल्लंघन कर मेरा ब्याह कर दो। इसके पश्चात् ऋषि विश्वामित्र ने कहा, हे रघुकुल के नन्दन राम, मेरी बात सुनो ।। १२०२ ।। धनुष को तोड़ कर सीता से विवाह कर लो। झटपट उठो और मेरा कहना मानो। यह सुन कर रामचन्द्र तत्क्षण उठ खड़े हुए और उत्तरीय को कमर पर कस कर बाँधा ।। १२०३ ।। ऋषि को प्रणाम करके रामचन्द्र चल पड़े। यह देखकर सभी राजा हँसने लगे। बड़े-बड़े वीर इस धनुष को हिला नहीं सके। मुझको घेर कर लोग हँसते रहे और मुझको नीचा देखना पड़ा ।। १२०४ ।। जो अभी शिशुमति है उसमें इतना साहस कहाँ? ऐसे व्यक्ति के प्रति जानकी की आशा है। विश्वामित्र मुनि ने यह सुनकर माथा ठोक लिया कि रघुनाथ धनुष को तोड़ नहीं सकेगा ।। १२०५ ।। सीता के मन में बड़ा दुःख और बड़ी अशान्ति है। हाय ईश्वर, मेरी मनोकामना सिद्ध न हो सकी। महाबली रामचन्द्र हँसते हुए चले। उनके प्रत्येक पग पर धरती डगमगाने लगी ।। १२०६ ।। महाशय राम यों चलने लगे, मानो प्रमत्त सिंह हों। देखकर राजाओं को बड़ा आश्चर्य हुआ। सभी के चेहरे से हँसी उड़ गई और सबके

धनुर निकट गैया चापिलन्त रामे * करे चिकिमिकि सुवर्णर चित्र कामे
बाम हाते लीलाये धरिला धनुखान * क्षेपिलन्त आकाशक कतोदूर मान ८
पुनु बामहाते धरि परम निपुण * निमिषेके धनुत लगाइला रामे गुण
आगत थापिला निया तुलि राम भरि * दिला टान गुणत दक्षिण पाच करि ९
टानन्ते धनुर आग पाच नामि आइल * देखि सबे राजागण माथा चपराइल
बिश्वामित्र माथा तुलिलन्त हास्य करि * रामर भरत थिर नुहि बसुन्धरी १०
धनु टानिबार देखि हरिष सीतार * पृथिवी कम्पिते चिन्ता भैल आरोबार
भरि थिर नभैले नपाइबे बल गावे * पृथिवीक कातर करिल सीता मावे ११
मातृ बसुमती कृपा करियोक मोक * थिर हुया प्रभु राघवक धरियोक
दिग्गज सकल तुमिसबे हैबा थिर * शुनियो अनन्त तुमि नलारिबा शिर १२
हे कूर्म्म भाले अनन्तक धरिबाहा * दिगपाल सकल स्वामीर हैबा सहा
एहिमते सीता हुया आछन्त आकुल * पाचे रामचन्द जगतर आदि मूल १३
गुणगाच एरि दिया टंकार करिला * प्रचंड शवदे आदि ब्रह्मांड लरिला
दशोदिश व्यापि प्रतिध्वनि गैल बरे * त्रास भैल सर्ब्बजने बोले बज्रपरे १४
सातोखान स्वर्ग बारम्बार लरि गैल * सप्तद्वीपा बसुमती टलबल भैल
काखर लंघिल सातो सागर खलकि * जलजन्तु भैल त्रास प्रलयक शंकि १५
दिग्गज सकल कम्पे तरतरिमान * महात्रासे कम्पिल पाताल सातोखान
कम्पिलन्त अनन्त यतेक नागगण * कूर्म्म कम्पि फोकार तेजय घने घन १६

चेहरे फीके पड़ गये। सीतादेवी का मुखमंडल प्रसन्न हो गया ।। १२०७ ।। राम धनुष के निकट जाकर खड़े हो गये। वह धनुष स्वर्ण की पच्चीकारी से चमचमा रहा था। बाएँ हाथ से अनायास उन्होंने धनुष को पकड़ा फिर उसको आकाश की ओर कितनी ही दूर तक फेंक दिया ।। १२०८ ।। फिर बाएँ हाथ से परम दक्षता से उसको गोच लिया। क्षणभर में राम ने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा दी। बायाँ पैर उठाकर उन्होंने आगे रखा और दाहिने को पीछे कर उन्होंने धनुष की प्रत्यंचा खींची ।। १२०९ ।। खींचने पर धनुष का आगा-पीछा उतर आया। यह देखकर राजाओं ने अपने-अपने माथे ठोक लिए। विश्वामित्र ने हँसकर सिर उठाया। राम के भार से धरती स्थिर नहीं रहीं ।। १२१० ।। धनुष को खींचते देखकर सीता हर्षित हुई। पृथ्वी को काँपते देखकर उनको फिर चिन्ता होने लगी। पैर अगर स्थिर न रहे तो शरीर में बल नहीं मिलेगा। सीता माता ने पृथ्वी से कातर निवेदन किया ।। १२११ ।। हे माँ बसुमती, मुझ पर कृपा करना। स्थिर होकर प्रभु राघव को थामे रहना। हे दिग्गजो! तुम लोग स्थिर होना। हे अनन्तनाग! तुम अपना सिर न हिलाना ।। १११२ ।। हे कूर्म! अपने माथे पर अनन्तनाग को सँभालना। हे दिक्पालो! तुम लोग मेरे पति की सहायता करना। इसी प्रकार सीता व्याकुल बनी रही। इसके पश्चात् संसार के आदि मूल रामचन्द्र ने, ।। १२१३ ।। प्रत्यंचा को खींचकर टंकार किया। अति प्रचंड शब्द से ब्रह्मांड हिल गया। दशों दिशाओं को व्याप्त कर उसकी गूँज ऊपर उठ गई। सभी लोगों में भय छा गया कि वज्र गिरा है ।। १२१४ ।। सातों स्वर्ग बार-बार हिल गये। सप्तद्वीप वाली पृथ्वी डगमगाने लगी। सातों सागरों में उथल-पुथल मच गई। सारे जल-जन्तुओं में प्रलय की शंका से भय छा गया ।। १२१५ ।। सारे दिग्गज कम्पन से थरथराने लगे। महात्रास से सातों पाताल काँप उठे। अनन्त आदि सारे नाग कम्पित होने लगे। कूर्म काँपते हुए जोर से बार-बार फुंकारने लगा ।। १२१६ ।।

मेरु आदि कम्पिल यतेक गिरिबर * भय हुया काम्पे आति देवासुर नर
चराचर लोके कम्पि कम्पि लैल ठाइ * समाजर लोकर चेतन ज्ञान नाइ १७
कर्णत हानिला ताल हृदय शुकाइल * पाचे कतक्षणे कथमपि धातु आइल
पाचे रामे गुणत धरिया बल दिल * ठाकोर करिया धनु माजते भांगिल १८
पुनरपि प्रकम्पित भैल त्रिभुवन * प्रलय मिलिल हेन बोले सर्ब्बजन
मिथिलार लोक माने भैल पूर्ब्बवत * चेतन लभिया पाचे राजागण यत १९
रामक निरेखि महाभय चित्त भैल * हेट माथे चक्षु मुदि मरा येन रैल
त्रासत हृदय कम्पे बुद्धि नोहे थिर * मने बोले नतु देखि शुनि हेन बीर २०
जानिलोहो एन्ते राम मानुष नोहय * देवतो उत्तम देव हेन मने लय
रामचन्द्रे धनुखान भांगि अप्रयासे * हासि बसिलन्त गैया बिश्वामित्र पाशे २१
धरिया रामक बिश्वामित्र मुनिबर * चुम्बन करिया प्रशंसिला बहुतर
धन्य रामचन्द्र तुमि बिक्रम तोमार * रहिल निर्म्मल यश जुरिया संसार २२
धनु भांगिलन्त रामचन्द्र महाशय * आनन्दे नधरे सीता देवीर हृदय
परम प्रेमत नीर बहे नयनर * सुप्रसन्न बिधि बुलि उठिला सत्वर २३
सुवर्णर पुष्प माला हाते तुलि लैला * विष्णुक बरिबे येन लक्ष्मी साज भैला
सखीगण माजहन्ते बाज भैला सती * हरर पाशक येन चलिला पार्ब्बती २४
दिश पाश प्रकाशिया शरीर ज्वलय * गजेन्द्रर पाशे येन हस्तिनी चलय
राजहंस जिनि आति गति लयलास * चलि यान्त रति येन मदनर पाश २५

मेरु आदि जितने भी श्रेष्ठ पर्वत थे काँप उठे। देव, असुर और नर अत्यन्त भय से काँप उठे। चराचर के लोगों ने काँप कर अपना-अपना आश्रय ले लिया। सभा में उपस्थित लोगों में न कोई चेतना रही और न होश ॥ १२१७ ॥ सबके कान बधिर हो गये और मन सूख गये। बहुत देर के बाद सभी कुछ-कुछ अपने आपे में आए। इसके पश्चात् प्रत्यंचा पकड़ कर राम ने उस पर ज़ोर डाला तो भयानक शब्द करता हुआ धनुष बीच से टूट गया ॥ १२१८ ॥ फिर त्रिभुवन प्रकम्पित हो उठा। सभी लोग कहने लगे मानो प्रलय आ गया हो। मिथिला के सारे लोग फिर से पूर्ववत् हो गये। इसके पश्चात् सारे राजाओं को होश आ गया ॥ १२१९ ॥ राम को निरख कर मन में बड़ा भय आ गया। सिर झुका कर आँखें मूँद कर लोग मानों मृत के समान बैठे रहे। भय से उनके मन काँपने लगे, बुद्धि स्थिर नहीं रही। वे मन ही मन कहने लगे कि न तो ऐसा वीर देखा है और न सुना है ॥ १२२० ॥ यह जान लिया कि यह राम मनुष्य नहीं हैं। लगता है कि यह कोई उत्तम देवता हैं। रामचन्द्र बिना प्रयास के धनुष तोड़कर, हँसकर विश्वामित्र के बगल में जाकर बैठ गये १२२१ ॥ मुनिवर विश्वामित्र ने राम को पकड़ कर चुम्बन किया और उसकी बहुत प्रशंसा की। रामचन्द्र, धन्य है तुम्हारा पराक्रम, सारे संसार भर में तुम्हारा निर्मल यश फैल गया है ॥ १२२२ ॥ रामचन्द्र ने धनुष तोड़ डाला। सीतादेवी का हृदय आनन्द से भर गया। परम प्रेम से उनके नयनों से आँसू ढरकने लगे। विधाता सुप्रसन्न है कहकर वह झटपट उठकर बैठ गई ॥ १२२३ ॥ स्वर्ण की पुष्प-माला उसने हाथ में उठा ली, विष्णु का वरण करने के लिए मानो लक्ष्मी सुसज्जित हो गई। सखियों के बीच में सती आगे बढ़ी मानो महादेव के निकट पार्वती चल पड़ी ॥ १२२४ ॥ चारों दिशाएँ उसके शरीर की ज्योति से प्रकाशित हो उठी हैं। मानो करिवर के पास हस्तिनी जा रही हो। उसकी चाल राजहंस की चाल जैसी ही स्वच्छन्दतापूर्ण है। मानो रति मदन के निकट जा रही हो ॥ १२२५ ॥

पोतानी जन्मभूमिनाजन, तीर्थ करता आव्यो ते वन,
तेणे ओळखियो वनमांथी, अल्या कटंक तुं आंहां क्यांथी । ३४ ।
सुणी मन पाम्यो लज्जाय, सैन्य प्रधान विस्मे थाय,
प्रधाने पछी तेडी एकांत, पूछ्युं तेनी भांगी भ्रांत । ३५ ।
अमारा गामनो ए चंडाळ, अहीं थई बेठो छे भूपाळ,
मंत्रीए सुणी दंडज दीधो, कंटकने लूंटी लीधो । ३६ ।
त्यांथी मारी काढ्या चंडाळ, नग्रमांहे आव्यो तत्काळ,
थयां भ्रष्ट सहु नर नार, सर्वे करतां हाहाकार । ३७ ।
पुरनी मळी सर्व प्रजाय, काढ्यो धर्मशास्त्रनो न्याय,
प्रजाए कर्यो अग्निप्रवेश, नग्रमां न रह्युं कोई शेष । ३८ ।
आव्यो कंटक नग्र मोझार, प्रजा दीठी भस्माकार,
मारे सारुं वळ्यां ए आप, मारे शिर बेठुं ते पाप । ३९ ।
करी काष्ट चिता तेणी वार, बळवा बेठो ते मोझार,
एटले थयुं कौतकमान, माया ईश्वरनी बळवान । ४० ।
एटळे थयुं कौतुकमान, माया ईश्वरनी बळवान,
ऋषिपत्नी पूरवनी जेह, आवी बारणे ऊभी तेह । ४१ ।

यह सुनकर वह मन में लज्जा को प्राप्त हो गया । उसका सैन्य तथा प्रधान विस्मित हैं (थे) । अनन्तर प्रधान ने उन्हें एकान्त में ले जाकर पूछा—तो उसका भ्रम भंग (दूर) हो गया । ३५ । (उन्होंने कहा)—'वह हमारे गाँव का चण्डाल है, (जो) यहाँ राजा होकर बैठा है ।' मंत्री ने (यह) सुनकर कंटक को दंड ही दिया और उसे लूट लिया । ३६ । वहाँ से उन्होंने उस चण्डाल को मार भगाया और वह (प्रधान) तत्काल नगर में आ गया । सब नर-नारी भ्रष्ट हो गये (थे), वे हाहाकार करते थे । ३७ । नगर की समस्त प्रजा इकट्ठा हो गयी और (उन लोगों ने) धर्मशास्त्र का निर्णय (खोज) निकाल लिया । (तदनुसार) प्रजा ने अग्नि-प्रवेश किया । नगर में कोई बाक़ी न रहा । ३८ । (तदनन्तर) कंटक (जब) नगर में आया (तो) उसे प्रजा भस्माकार हुई दिखायी दी । वे सब मेरे कारण स्वयं जल गये; वह पाप मेरे सिर पर बैठा (चढ़ा) । (यह सोचकर) उस समय लकड़ियों की चिता बनाकर उसमें वह जल (मर) जाने के हेतु बैठ गया । ३९-४० । इस समय एक चमत्कार हो गया । ईश्वर की माया बलवान होती है । जो पहले ऋषि (गाधि) की पत्नी थी, वह आकर दरवाजे में खड़ी रही । ४१ । उसने पुकार कर (उन्हें) बुलाया (और पूछा) —'हे स्वामी ! वहाँ से क्यों नहीं आ रहे हो? रसोई बनाकर मैं (तुम्हारी)

तेणे हाक मारी बोलाव्यो, स्वामी त्यारना शेना आवो ?
हुं रसोई करी जोउं छुं वाट, वार लागी थयो उचाट । ४२ ।
घणी वारना आव्या आंहे, शुं नाहो छो गंगामांहे ?
एवुं सांभळी चमक्यो मन, दीठो आश्रम ने स्त्रीजन । ४३ ।
पूर्वस्मृति आवी मनमांह्य, चिता नग्र न दीठुं त्यांय,
दीठो आश्रम पोतातणो, भयभीत थयो अति घणो । ४४ ।
अरे हुं ब्राह्मण अवतार, शिष्य गौतमनो निर्धार,
हुं थयो भ्रष्ट हिंसावंत, एवुं कही करतो कल्पांत । ४५ ।
विष्णु स्मरण कर्युं छे त्यारे हरि प्रगट थया तेणी वारे,
गाधिने मुखे फेरव्यो हाथ, थयुं पूरवज्ञान सनाथ । ४६ ।
श्रीहरिनी घणी स्तुति करी, कर जोडी वाणी ऊचरी,
जाण्यो माया तणो प्रताप, पछी शुद्ध थयो निज आप । ४७ ।
हे नाथ ! ए माया तमारी, महाबळवंती ने विकारी,
ते दुरस्त निर्दे अपार, कृपा राखजो देवमोरार । ४८ ।
हुं छुं शरण तमारे स्वामी, माया वारजो अंतर्यामी,
एवुं कही मुनि लाग्या पाय, त्यारे हसिया वैकुण्ठराय । ४९ ।

बाट जोहती हूँ। (तुमको) देर हुई तो चिंता हो गयी । ४२ । बहुत समय से यहाँ आये; क्या गंगा में नहा रहे हो ?' ऐसा सुनने पर (गाधि का) मन चकित हो गया । उसे आश्रम और स्त्री दिखायी दी । ४३ । मनमें पूर्व (स्थिति की) स्मृति हो आयी । उन्हें चिता और नगर वहाँ नहीं दिखायी दिया । उन्होंने स्वयं का आश्रम देखा, तो वे अत्यधिक भयभीत हो गये । ४४ । (उन्होंने सोचा)—अरे ! मैं (तो) ब्राह्मण (के कुल में) अवतरित हूँ, निश्चय ही गौतम ऋषि का शिष्य हूँ। मैं भ्रष्ट तथा हिंसाचारी हुआ । ऐसा कहकर वे अतिशय शोक करने लगे । ४५ । तब उन्होंने भगवान् विष्णु का स्मरण किया है, उस समय श्रीहरि प्रकट हो गये । उन्होंने गाधि के मुख पर हाथ फेर दिया, तो उस (गाधि) को पूर्वज्ञान हो गया और वे अपने को सनाथ (अनुभव करने लगे) हो गये । ४६ । (फिर) उन्होंने श्रीहरि की बहुत स्तुति की, हाथ जोड़कर शब्दों का उच्चारण किया । उन्होंने (अब) माया का प्रताप जान लिया और अनन्तर वे स्वयं शुद्ध हो गये । ४७ । (उन्होंने कहा–' हे नाथ ! तुम्हारी वह माया महा बलवती और विकारी है । वह बहुत दुस्तर तथा निर्दय है । हे देव मुरारि ! कृपा (दृष्टि) रखो । ४८ । हे स्वामी ! मैं तुम्हारी शरण में (आया) हूँ । हे अन्तर्यामी ! (अपनी)

ऋषिने आप्युं अभेदान, हरि पाम्या अंतर्धान,
कहे वसिष्ठ सुणो रघुराय, एवी माया तमारी कहेवाय । ५० ।
अति दुर्जय नव जिताय, तम शरण रहे सुख थाय,
छे मिथ्या पण महा बळवान, महापुरुषनां मुकावे मान । ५१ ।

वलण (तर्ज़ बदलकर)

मान मुकावे महापुरुषनां, हरिमाया बळवान रे,
ते माटे सहु अभिमान मूकी, भजवा श्रीभगवान रे । ५२ ।

माया का निवारण कर लो।' ऐसा कहकर गाधि मुनि श्रीहरि के पाँव लगे। तब वैकुण्ठराय श्रीहरि हँस दिये । ४९ । उन्होंने ऋषि को अभयदान दिया और वे अन्तर्धान (को प्राप्त) हो गये। वशिष्ठ ऋषि कहते हैं–'हे रघुराज ! सुनो। ऐसी तुम्हारी माया कही जाती है । ५० । वह अति दुर्जय है, वह नहीं जीती जाती है। तुम्हारी शरण में रहने से सुख होता है। वह (माया) है (तो) मिथ्या, पर वह महा बलवती है। वह महापुरुषों के अभिमान को छुड़ाती है । ५१ ।

वह महापुरुषों के अभिमान को छुड़ाती है। हरि की माया ऐसी बलवती है। इसलिए अभिमान को त्यागकर सब श्रीभगवान का भजन करें । ५२ ।

* * *

अध्याय—२४ (उत्पत्ति-प्रलय-कथन)

वसिष्ठ कहे सुणो श्री रघुरायजी, ए चिद्शक्ति तमारी कहेवायजी,
आदि अंते नथी आकार जी, मध्ये माया पामी विकार जी । १ ।

अध्याय–२४ (उत्पत्ति-प्रलय-कथन)

वसिष्ठजी कहते हैं—'हे रघुराज ! वह चिद्-शक्ति तुम्हारी कही जाती है। (ब्रह्माण्ड के) आदि और अन्त में उसके (कोई) आकार नहीं है; (केवल) मध्य (अवस्था) में (वह) माया विकार (अर्थात् स्थित्यन्तर) को प्राप्त हो जाती है । १ ।

ढाल

विकार पामी मूळ माया, ज्यारे इक्षणा पुरुषे करी,
महत्तत्व तेथी उदे पाम्युं, अहं त्रिगुणे विस्तरी । २ ।
अहंतत्त्व त्रिगुण विकारथी, जे तत्त्व चोवीस निरमयां,
नभ समिर तेज सलिल भूत, पंच भूत ए तमनां थयां । ३ ।
रजोगुण थी दशे इंद्री, पंचज्ञान पंचकरम कही,
ते मन आधीन सकळ वरते, निज विषय भक्ते रही । ४ ।
सत्त्वनुं आशे चतुर, मन बुद्धि चित्त अहंकार,
शब्द स्पर्श रस रूप गंध, ए तत्त्व चोवीस सार । ५ ।
स्वराट सरवे थयुं तेनुं, स्थूळ सूक्ष्म जेह,
मांहे पुरुषसत्ता प्रवेशी, त्यारे थयुं चैतन्य एह । ६ ।
ब्रह्मांड सरवे भरायुं, चर अचर जीवनी काय,
पण एक आत्मा रमे सघळे, ते नव आवे न जाय । ७ ।

जब (आदि) पुरुष ने (कोई) इच्छा की, तो मूल (आदि) माया विकार को प्राप्त हो गयी। उससे (सत्त्व, रज तथा तम गुणों की साम्यावस्था से युक्त) महत्तत्व अर्थात् आदिमाया उदित हो गयी, तो अहंतत्त्व ('मैं भी कोई हूँ'—यह अहंभाव) सत्त्व, रज तथा तम नामक त्रिविध गुणों में विस्तार को प्राप्त हो गया। २। अहंतत्त्व ने तीन प्रकार के (उन) गुणों के विकार से जो (कुल) चौबीस तत्त्व हैं, उनका निर्माण किया। आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी (नामक) वे पाँच महाभूत (तत्त्व) तमोगुण से उत्पन्न हो गये। ३। रजोगुण से दस इन्द्रियाँ उत्पन्न हो गयीं, जो पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (नेत्र, कान, जिह्वा, त्वचा, नाक) और पाँच कर्मेन्द्रियाँ (हाथ, पाँव, वाणी, शिस्न और गुदा) कही गयीं। वे सब मन के अधीन रहती हैं और अपने-अपने (भोग्य) विषय की भक्ति (लगाव) में (लगी) रहती हैं। ४। सत्त्व गुण के मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार (नामक) चार (रूप-तत्त्व) हैं। (इनके अतिरिक्त) शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध (—ये और पाँच तत्त्व) हैं। (इस प्रकार) वे कुल चौबीस तत्त्व हैं। ५। स्थूल और सूक्ष्म जो-जो तत्त्व हैं, उनके वे सब अधिपति हो गये। उन (तत्त्वों) में (आदि) पुरुष अर्थात् ब्रह्म की सत्ता प्रवेश कर गयी, तब वह समस्त चैतन्य (युक्त) हो गया। ६। सबने चर, अचर-जीवों के शरीरों से—ब्रह्माण्ड को भर दिया। परन्तु सब में एक (वह परम) आत्मा—परब्रह्म—रमण करता है—वह न (कहीं) आता है, न

विराट रूपे एक आत्मा, नथी बीजुं अन्य,
ते रूप संक्षेपे कहुं, रघुवीर धरजो मन। ८।
चरणतळ पाताळ छे, प्रपद रसातळ जाणिये,
महातळ बे गुल्फ पद केरां, विराट वखाणिये। ९।
जानुं जंघा ते तळातळ वितळ भ्रूकुटि देश,
नैॠत लोके गुदस्थानक, शिश्न प्रजापति एश। १०।
आकाश मंडळ पोळ, पेट ज, उदर सागर सात,
जठराग्नि ते वडवानळ, रुदे भूर्लोक विख्यात। ११।
महर लोक कंठनाले, जनलोक मुख कहेवाय,
यमलोक रहे छे दंत दाढचो, वरुण ते रसनाय। १२।
अश्वनीकुमारने घ्राण ईंद्री, भुवरलोक भ्रूकुटि विषे,
ललाटे तपलोक मस्तक, सत्यलोक रहो सुखे। १३।
नेत्र दिनकर हस्त वासव, रोमावळी वनराय,
त्वचा वायु पृष्ठ अधरम, पर्जन्य रेत कहेवाय। १४।

(कहीं) जाता है। ७। (उस) विराट् (ब्रह्माण्ड) रूप में एक (मात्र) परमात्मा (निवास करता) है; (वहाँ) दूसरा कोई नहीं है। उस रूप को संक्षेप में मैं बताता हूँ। हे रघुबीर! मन लगाओ (मनःपूर्वक सुनो)। ८। (उस परब्रह्म के) चरण-तल (तलुए) उस (विराट् ब्रह्माण्ड का) पाताल है, (उसके) पैर का पंजा रसातल समझो। पाँवों के गुल्फ (एड़ी के ऊपर वाली गाँठ) को महातल के रूप में बखानो। ९। (उसके) घुटने और जंघाएँ तल और अतल हैं। भ्रुकुटि वाला भाग वितल है। [पुराणों के अनुसार सात पाताल हैं—अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल।] उसका गुदस्थान नैॠत्यलोक है; शिस्न प्रजापति है। १०। (उस विराट् परमपुरुष का) रिक्त पेट (उस विराट् ब्रह्माण्ड का) आकाश-मण्डल है और पेट सात सागर है। वह जठराग्नि वड़वानल है और हृदय विख्यात भूर्लोक है। ११। (उसका) कण्ठनाल महर्लोक है और मुख जनलोक कहाता है। उसके दाँत और दाढ़ें यमलोक हैं और जिह्वा वरुणलोक है। १२। (उस विराट् परम पुरुष की) घ्राणेन्द्रिय (नाक) (उस विराट् ब्रह्माण्ड के) अश्विनीकुमार है, तो भृकुटि (भौंह) में भुवर्लोक है। ललाट-स्थान में तपलोक है, तो मस्तक में सत्यलोक सुख-पूर्वक रहता है (बसा हुआ है)। १३। [पुराणों के अनुसार मुख्य सात लोक हैं—भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक।]

क्षुधा ते दुर्भिक्ष जाणो, क्रोध सृष्टिसंहार,
मोह पालन प्रजानुं ते, मृत्यु भय निरधार । १५ ।
मन चंद्रमा बुद्धि विरंचि, नारायण चित् रूप,
अहंकार ते महा रुद्ररूपे, मुख ते अग्नि अनुप । १६ ।
लोभ लज्या अधर बे गिरि, अस्थि सरिता नाड,
ए विराट सप्तावरण सुधी, एक छे गत आड । १७ ।
एक एकथी दशगुणुं आ व्रण, छे अपार अनुप,
एक पुरुष व्यापक रह्या सघळे, अकळ अलख स्वरूप । १८ ।
ज्यम बाजीगर विस्तारे लीला, समेटे निरधार,
एम पुरुष सृष्टि समेटे, त्यारे कहेवाय संहार । १९ ।
ज्यम उर्ण नाभि जाळ काढी, रमे तेनी मांहे,
पाछी समेटे मुखे एम, लय सृष्टि पुरुष मांहे । २० ।
ज्यम उत्पत्ति त्यम लय ज पामे, विश्व सघळुं एह,
प्रलय पंच कहुं जथा, ए सुणो राघव तेह । २१ ।

नेत्र सूर्य हैं, हाथ इन्द्र हैं, रोमावली (बाल) वनराजी है; त्वचा वायु और पीठ अधर्म है। रेत (वीर्य) पर्जन्य (वर्षा) कहाता है । १४ । (उस परमपुरुष की) क्षुधा (भूख) को (उस विराट् ब्रह्माण्ड का) अकाल और क्रोध को सृष्टि का संहार समझो; मोह वह प्रजा का पालन है तो भय निश्चय ही मृत्यु है । १५ । मन चन्द्रमा है, तो बुद्धि ब्रह्मा है; उसका चिद् रूप नारायण है। अहंकार उस महारुद्र-रूप में है, तो मुख वह अद्भुत अग्नि है । १६ । लज्जा लोम (रोम, बाल) हैं; हड्डियाँ पर्वत और नाड़ियाँ नदियाँ हैं। (इस प्रकार यह विराट् ब्रह्माण्ड सात आवरणों तक एक ही है।) १७ । एक-एक से दसगुना आवरण अपार और अनुपम है। इन सब में एक (ही) आदिपुरुष व्यापक रहा (है)। वह अकल, अलख स्वरूपी है । १८ । जैसे जादूगर लीला का विस्तार करता है और उसे निश्चय ही समेट लेता है, उसी प्रकार एक पुरुष (सृष्टि का निर्माण कर उसे) समेट लेता है। यह 'संहार' कहाता है । १९ । जैसे मकड़ी नाभि में से (धागा निकालते हुए) जाला तैयार करके उसी में रम जाती है और बाद में उसे मुख में समेट लेती है, वैसे ही उस महापुरुष में सृष्टि (सिमट जाती है और) लय हो जाती है । २० । जैसे (उसकी) उत्पत्ति होती है, वैसे वह समस्त विश्व लय ही को प्राप्त हो जाता है। मैं जैसे पाँच प्रकार के प्रलय कहता हूँ, हे राघव राम ! उसे सुनो । २१ । पिण्ड के निद्रा

पिंडने बे प्रलय नित्य, निमित्त निद्रा मर्ण,
त्रीजो प्रलय त्रिलोकनो, करे विधि निद्राचर्ण । २२ ।
चारे युग जाय सहस्र वेळा, सृष्टिनो लय थाय,
प्रलय नाम ज ते तणुं, तमो सुणो श्रीरघुराय । २३ ।
आठ लक्ष योजन चढे पाणी त्रिलोक बूडी जाय,
ब्रह्मा निद्रा करे त्यारे, प्रलय ते कहेवाय । २४ ।
हावे महाप्रलय ते कहुं, वरसे शत वरस घनमाळ,
शत वरस सूरज तपे द्वादश शेष मुखनी ज्वाळ । २५ ।
ब्रह्मांड बळीने भस्म थाये, त्यारे अग्नि शोषे नीर,
लय थाय अग्नि वायुमां, आकाशमांहे समीर । २६ ।
नभ तमोगुणमां जई मळे रजमांहे तम लय थाय,
रज समाये सात्त्विकमां, अहंतत्त्व सत्व समाय । २७ ।
अहंतत्त्व ते महत्तत्त्वमां, थई समाये गुणहीन,
महत्तत्त्व मायामां मळे प्रकृति पुरुषमां लीन । २८ ।
ते पुरुष अचळ अखंड निर्मळ, सदा एक रसरूप,
ए पुरुषोत्तम आनंदघन सुख ज्ञानरूप अनूप । २९ ।

और मरण नामक नित्य और नैमित्तिक दो प्रलय होते हैं। तीसरा प्रलय है त्रिलोक का—तब विधाता निद्रा का आचरण करता है (विधाता सो जाता है) । २२ । चार युग हज़ार बार व्यतीत हो जाते हैं, तब सृष्टि का लय हो जाता है। उसका नाम प्रलय है। हे श्रीरघुराज राम ! तुम उसे सुनो । २३ । (उस प्रलय की अवस्था में) आठ लाख योजन (ऊँचा) पानी चढ़ता है; (उसमें) त्रिभुवन (स्वर्ग, मृत्यु, पाताल) डूब जाता है। तब ब्रह्मा सो जाता है। वह प्रलय कहा जाता है । २४ । अब मैं कहता हूँ कि महाप्रलय क्या है। घनघटा सौ वर्ष बरसती रहती है। सौ वर्ष बारह सूर्य तपते रहते हैं। शेष भगवान् मुख से ज्वाला निकालते रहते हैं । २५ । उसमें जाकर ब्रह्माण्ड भस्म हो जाता है। तब अग्नि पानी को सोख लेती है। (फिर) अग्नि का वायु में लय हो जाता है और वायु का (लय) आकाश में हो जाता है । २६ । आकाश तमोगुण में जाकर मिल जाता है; (फिर) तमोगुण का लय रजोगुण में हो जाता है। (तदनन्तर) रजोगुण सत्त्वगुण में समाविष्ट हो जाता है, तो सत्त्वगुण अहंतत्त्व में । २७ । (फिर) अहंतत्त्व गुणहीन होकर उस महत्तत्त्व में समा जाता है। (फिर) महत्तत्त्व माया में मिल जाता है और प्रकृति (आदि) पुरुष में लीन हो जाती है । २८ । वह (आदि) पुरुष अचल

तमो छो रघुनाथ जी, सर्वना आत्माना ईश,
भक्ति थकी साक्षात् जाणे, जीव श्रीजगदीश । ३० ।
भक्ति विना नव लेश थाये, स्वरूप केरुं ज्ञान,
भक्तिए अंतर शुद्ध थाये, भास श्रीभगवान । ३१ ।
हवे प्रलय आत्यंतिक कहुं, रघुवीर सुणजो तेह,
वळी ज्ञानप्रलय एने कहे, मानुभाव पंडित जेह । ३२ ।
जे ज्ञानी जाणे एक ब्रह्म, अखंड रूप अभेद,
आभास विश्व प्रपंचथी, पाम्यो जथा निर्वेद । ३३ ।
जेणे प्राण आशय अक्ष होमी, ज्ञान अग्निमांहे,
जग्त दृष्टि टळी तेनी, द्वैत न जुए कांहे । ३४ ।
अद्वैत पद भास्युं तदा, एक पुरुष अखिल प्रकाश,
ब्रह्मांडमां भरपूर आत्मा, रह्यो यथा अवकाश । ३५ ।
ज्ञाने करीने विश्व टाळ्युं जीवन्मुक्ते जेह,
ए प्रलय कहिये पांचमो, रघुवर जाणो तेह । ३६ ।

अखण्ड, निर्मल तथा सदा एकरस (एक-सा) रूप होता है। वह पुरुषोत्तम आनन्दघन, सुख और ज्ञान-रूप, अनुपमेय है। २९। हे रघुनाथ राम ! तुम (वही) सबकी आत्माओं के ईश्वर हो। हे श्रीजगदीश ! जीव भक्ति से (तुम्हें) प्रत्यक्ष जान जाते हैं। ३०। बिना भक्ति के, (भगवान के) स्वरूप का लेश मात्र (तक) ज्ञान नहीं होता। भक्ति से हृदय शुद्ध हो जाता है; उससे श्रीभगवान् दिखायी देते हैं। ३१। हे रघुवीर राम ! अब मैं आत्यन्तिक प्रलय का वर्णन कहता (करता) हूँ। वह (तुम) सुनो! जो महानुभाव पण्डित हैं, वे उसे 'ज्ञान-प्रलय' कहते हैं। ३२। जो ज्ञानी (व्यक्ति) ब्रह्म को एक, अखण्ड-रूप और अभेद समझता है और विश्व को प्रपंच से (निर्मित) आभास (मिथ्या) समझता है तथा इससे जो (व्यक्ति) निर्वेद (परम शान्ति) को प्राप्त हो गया (हो), जिसने ज्ञान-रूपी अग्नि में प्राणों के हेतु आँखों का हवन किया, (समझो कि) उसकी दृष्टि संसार से हट गयी, (और इसलिए) वह कहीं भी द्वैत नहीं देखता। तब उसे अद्वैत का ज्ञान हो जाता है अर्थात् एक पुरुष और एक प्रकाश दिखायी देता है। (और वह अनुभव करता है कि) ब्रह्माण्ड में जहाँ अवकाश हो, वहाँ (यथा स्थान एक मात्र परम) आत्मा (ब्रह्म) भरा (व्याप्त) रहता है। ३३—३५। हे रघुवीर, (यह) समझो कि जिस जीवन-मुक्त व्यक्ति ने ज्ञान द्वारा विश्व (के मायाजाल) को टाल दिया, उसे (टाल देने की क्रिया को) पाँचवाँ प्रलय कहा जाता है। ३६।

नी पापफलमुन नी वमुष्कुंड । वै पोम्मु पो' म्मनि यट शपिंचुटयु
गौतमु शापमखंडमै ताकि । यातनि यंडंबु लंतलो देंगियें १४८०

अहल्या शापमोचनमु

नडरि गौतमुडहल्यादेवि जूचि । 'पडति! पाषाणमै पडियुंडु मीवु
करमुग्रमगु नेण्ड गालि, पेन्धूळि । बोरलुचुंडुमु नीवु पोडगान बडक'
यनिन 'शापमुन केंय्यदि तुदि नाकु'। ननिन नहल्यकिट्लनियें गौतमुडुः
'वैकुंठधामु डवाप्तकामुंडु । लोकरक्षणकळालोलमानसुडु
रामुडै वच्चि पुराणपूरुषुडु । भूमिपै जन्मिचि पोंगडु दीपिंप
जनुदेंन्चि कौशिकु जन्नंबु गाचि । यिनकुलाधीश्वरुडीत्रोव वच्चिच
तोलगिपोवक निन्नु द्रोक्किन जालु । जलजलोचन! नीदुशापंबु दीरु'
ननि चेप्पि शीताद्रि करिगें गौतमुडु; । मुनिपत्नि डारूपमुननुंडे; नंत
सुरराजु दनपाटु सुरलतो देल्प । दरमिडि पितृदेवतल वारु वेडि
वेरवरुलै मेषवृषणमुल् देच्चि । सुरलु संधिचिरि सुरलोकपतिकिः
१४९०

अहिल्या-शाप-विमोचन

—(उसके पश्चात्) रोषावेश से गौतम ने अहिल्या को देखकर कहा—'हे नारी! तुम पाषाण हो पड़ी रहो। अति उग्र हो धूप में तपते हुए अधिक धूल में लोटती रहो जिससे तुम्हारा स्वरूप (किसी को) दिखाई न पड़े'। (ऐसा) कहने पर (अहिल्या ने) कहा—'मेरे लिए इस शाप का अन्त कब होगा'? (तब) गौतम ने अहिल्या से कहा—'वैकुण्ठधाम, अवाप्तकाम, लोकरक्षण कला-लोलमानस (लोक-रक्षा की कला में लीन मन वाले) (और) पुराण-पुरुष (विष्णु) राम के रूप में भूमि पर जन्म लेंगे। अत्यन्त प्रशंसनीय रूप में आकर, कौशिक के यज्ञ की रक्षा कर, (वे) इनकुल के अधीश्वर (राम) इस मार्ग से आकर, मार्ग से न हटकर तुम्हें चरणों से स्पर्श-भर करेंगे तो बस हे कमललोचने! तुम शाप-मुक्त हो जाओगी'। ऐसा कहकर गौतम शीताद्रि को चले गए और मुनि-पत्नी (अहिल्या) पाषाण के रूप में पड़ी रही। तब देवराज ने अपनी दुर्गति के बारे में देवताओं को बताया। क्रम से उन्होंने पितृदेवताओं से प्रार्थना की। देवताओं ने समर्थ हो भेड़ के अण्डकोश लाकर सुरलोकपति के शरीर में जोड़ दिये। ॥ १४९० ॥

नतुलपुण्यात्मकु लदियादिगाग । ग्रतुवुल जंपुदुर्कडगि मेषमुल:
नाडादिगा मुनिनाथु शापमुन । बोडिमि सॆडि यी तपोवनि नुन्न
या यहल्य नतुल्य हतमनश्शल्य । जेयवे श्रीराम! श्रितपुण्यनाम!'
यनि चॆप्पि गौतमुनाश्रमंबुनकु । जनुदेर श्रीरामचरणमुल् सोक
मॊगुलॆल्ल विरिय सोमुनि कळ वोलॆ । बॊग यडंगिन हव्यभुक्कीलवोलॆ
गलक दॊलंगिन कमलिनि वोलॆ । बलुमसटुडिगिन बंगारु वोलॆ
श्रीरामपादराजीवपराग । दूरीकृताघसंदोहयै यपुडु
वॆलदि यंतट शिलावेषंबु मानि । तिलकिंचि तन तॊण्टिदेहंबु बूनि
मुनिपति चेत रामुनि महत्त्वंबु । विनिनदि गान ना वेदंडायान
या महामहुनकु नातिथ्यमॊसगि । 'श्रीमीऱ निटकु विच्चेसिति गान १५००
जरितार्थनैति नी चरणपद्ममुलु । दर्शिंचि श्रीराम! त्रैलोक्यनाथ!
मी पादतीर्थमौ मिन्नेरु भुवन । पापंबुलॆडबाप बाल्पडॆननग,
निलयॆल्ल नॊकट मिन्नॊक्कट गॊलिचि । बलिमॆट्टि ब्रह्मांडभांडंबु मुट्टि

—(इसी कारण से) तब से लेकर अतुल पुण्यात्मक (अति पुण्यवान्) लोग ऋतु (यज्ञ) के समय सप्रयत्न भेड़ों का वध करते हैं। उस दिन से लेकर मुनिनाथ (गौतम) के शाप के कारण, मनोज्ञता को खोकर इस तपोवन में स्थित उस अहिल्या को जो अतुल्य (असमान) है, (उसे) हतमनशल्य (मन के दुख से मुक्त) करो न, हे श्रीराम! हे श्रितपुण्यनाम (वाले)!' ऐसा कहकर गौतम के आश्रम पहुँचने पर, श्रीराम के चरण के स्पर्श से, सभी मेघों के छँट जाने पर चन्द्र की कला के समान, धुएँ के कम होने पर हवनकुण्ड की अग्नि-ज्वाला के समान, कलंक से मुक्त कमलिनी के समान, मलिनता के कम होने पर सुवर्ण के समान, श्रीराम के पादराजीव के पराग से दूरीकृत अघ-संदोह (पाप-समूह) वाली होकर, (वह) नारी तब शिलारूप को छोड़, अपने पूर्वदेह को धारण कर, मुनिपति (गौतम) द्वारा राम के महत्त्व को सुन चुकने के कारण, उस वेदंडयाना (गजगामिनी) ने उस महामह (महापुरुष) को आतिथ्य दिया और यह कहकर राम की विनुति (स्तुति) की कि 'श्री (शोभा) की अतिशयता से (आप) यहाँ आए हैं इसलिए ॥ १५०० ॥

—आपके चरण कमलों के दर्शन कर, हे श्रीराम! त्रैलोक्यनाथ! मैं चरितार्थ हुई हूँ। मानों आपका चरणोदक होकर आकाशगंगा (समस्त) भुवनों के पापों को दूर करने के लिए निकल पड़ी है। एक (चरण) से समस्त पृथ्वी को और अन्य (चरण) से आकाश को नापकर, पराक्रम

वेदशिरोवीथि विहरिंचुनोदु । पादमुल् नादुशापमु बापुटरुदे?'
यनि रामु विनुतिंचे; नंतगौतमुड्‌ु । सनुदेन्चि रघुरामचंद्रु बूजिंचि
प्राकट जन्मसाफल्य नह्ल्य; । गैकोनि तोल्लिलटिगति विलसिल्ले;
ग्रोव्विरि जडिवान कुंभिनि गुरिसे। नव्वेळ; देवतूर्यंबुलु मोरसे;

श्रीरामलक्ष्मणुलु विश्वामित्रुतो मिथिल जेरुट

घनपुण्युलंदुंडि कदलि मिन्नंटि । तनरु प्राकारसौधमुल यूथमुल
नमरिन रत्नगेहमुल वाहमुल । रमणीय राजमार्गमुल दुर्गमुल
वलनोप्पु श्रृंगार वनुल जव्वनुल । बोलुचु संततशुभंबुल निभंबुलनु
१५१०
ननुवोन्दु वैरिवर्गाशिथिलकुनु । जनकुनि मिथिलकु जनुदेन्चि; रंत
गाळिंग नेपाळ कर्नाट लाट । माळव सौवीर मगध पांचाल
कुरु पांड्य बर्बर कुंतलावंति । मरु तुरुष्काभीर मनुज वल्लभुल
घनतर यागोपकरणभागमुल । ननुरूप पशुगणायतन यूपमुल

से ब्रह्माण्डभाण्ड में व्याप्त होकर, वेद-शिरोवीथि (उपनिषद् रूपी मार्ग) में विहार करनेवाले आपके चरणों के लिए, मेरे शाप को दूर करने में आश्चर्य ही क्या है?' इतने में गौतम आए (और) रघुवंशी रामचन्द्र की पूजा की। जन्म की सफलता के प्रकट-रूप अहिल्या को ग्रहणकर पूर्ववत् (पहले जैसे) विराजमान हुए। उस समय ताजे फूलों की कुम्भवृष्टि हुई, देवतूर्य बज उठे।

श्रीराम-लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ मिथिला पहुँचना

—वे घन (महान्) पुण्यवान् वहाँ से चलकर जनक की (राजधानी) मिथिला पहुँचे जो गगन को स्पर्शकर सुशोभित प्राकार सौध-समूहों, सुनिर्मित रत्न (खचित) गृहों, वाहनों, रमणीय राजमार्गों, दुर्गों, शोभायमान श्रृंगारोद्यानों, युवतियों, निरन्तर मांगलिक पदार्थों तथा हाथियों से शोभित, विलसित थी। ॥ १५१० ॥

—वह (नगर) वैरिवर्ग के लिए अशिथिल था। तब कलिंग, नेपाल, कर्नाट, लाट, मालव, सौवीर, मगध, पांचाल, कुरु, पांड्य, बर्बर, कुन्तल, अवन्ति, मरु, तुरुष्क, आभीर (आदि देशों के) राजाओं, (और) घनतर (श्रेष्ठतर) याग-उपकरण भागों के अनुरूप पशुगण से युक्त यूपों, भूरि (अधिक) दधि-क्षीर-पूर्ण कुम्भों, सार (श्रेष्ठ) समिधाओं से भरे सुन्दर स्थलों, उचित रूप से पंक्तियों में (सजे हुए) दर्भासनों (कुश के आसनों),

भूरि दधिक्षीरपूर्णकुंभमुल । सारसमिद्भार चारुदेशमुल
दगुपंक्तुलैयुन्न दर्भासनमुल । दगु पीठमुल नुन्न तापसोत्तमुल
ललिग्रालु रत्नपल्लवतोरणमुल । मलगि पै चेसाचु मदवारणमुल
नडरि घोषिंचु सामादि वेदमुल । नुडुगक चनुदेन्चु चुन्न तापसुल
नुडुवीथि नुप्पोंगु होमधूममुल । नडरेडु देवताह्वानरावमुल
बूजलु गैकोनु पुण्यसंयमुल । बूजिप सोलयनि भूसुरोत्तमुल १५२०
नरुदारु जनकुनि यज्ञवाटंबु । गरमर्थि जोच्चे नग्गाधिनंदनुडु ।
अंत ना जनक महाराजवर्यु । डेन्तयु ब्रियमुतो नेदुरुगा वच्चि
मुनिनाथुनकु म्रोक्कि मुदमोप्प दोडु।कोनिपोयि पूजिचि कुशलंबुलडिगि
'नीवु विच्चेसिति, नेडु ने मिगुल । बावनात्मुडनैति; ब्रबले ना क्रतुवु'
ननि चाल गोनियाडि यम्मुनिचंद्रु । वेनुकने विनतुलै विलसिल्लुचुन्न
गुरुतरस्फीतवक्षुल गाकपक्ष । धरुल महाधनुर्धरुल श्रीकरुल
गोमलांगुल नभंगुरयशोनिधुल । भूमि जरिंचु वेल्पुल बोलु घनुल
सदयांतरंगुल सततप्रसन्न । वदनुल भुवनपावनचरित्रुलनु

(और अन्य) उचित आसनों पर स्थित उत्तम तपस्वियों, उत्साह से शोभित रत्नपल्लव-तोरणों (बन्दनवारों), भ्रमण करते हुए (तथा) सूँड ऊपर उठाए मत्तगजों, सामादि वेद-पाठ की समधिक ध्वनियों, निरन्तर आते हुए तपस्वियों, आकाशवीथि में परिव्याप्त होम-धूमों, अधिकता से विलसित देवताओं के निमन्त्रण की ध्वनियों, पूजाएँ ग्रहण करनेवाले पवित्र संयमियों, पूजा करने पर न थकने (सन्तुष्ट न होने) वाले भूसुरोत्तमों (ब्राह्मणों)— ।। १५२० ।।

—से युक्त जनक की यज्ञभूमि आश्चर्यजनक थी। उस गाधिनन्दन ने बड़ी प्रसन्नता से उस यज्ञवाट (भूमि) में प्रवेश किया। तब उस महाराज-श्रेष्ठ जनक ने अत्यधिक प्रेम से (उनकी) अगवानी की, मुनिनाथ को प्रणाम किया, प्रसन्नता के साथ (उन्हें) लिवा ले गए, पूजा की, कुशल-प्रश्न किए (और कहा)—'आप आए, आज मैं अधिक पवित्र बन गया हूँ। मेरा यज्ञ समृद्ध हो गया'। इस प्रकार बहुत प्रशंसा करके, उस मुनिचन्द्र के पीछे ही विनयशील हो विलसित राम-लक्ष्मण को देखा जो गुरुतर (विशाल) स्फीत वक्षवाले, काकपक्ष (अलक) धारी, महाधनुर्धर, श्रीकर (शोभाकर) कोमल शरीरवाले, अभंगुर (शाश्वत) यशोनिधि, पृथ्वी पर संचार करनेवाले देवताओं के समान दीखनेवाले महापुरुष, सदयान्तरंग (दया से युक्त अन्तरंग वाले), सतत प्रसन्न वदन वाले, भुवन-पावन-चरित्र वाले, चारु प्रभा से युक्त भानु

जारुप्रभाभानु चंद्र सन्निभुल । धीरुल नाश्विनदेवताकृतुल
नाजानुबाहुल नतुलविक्रमुल । राजीवनेत्रुल रामलक्ष्मणुल
जूचि 'यी शरचापशोभितहस्तु । ली चतुरात्मकुलेव्वरिवार ?
लीपल्लवारुण मृदपादपद्मु । ले पगिदिनि वच्चिरिचटिकि नडचि?'
यनिन विश्वामित्रु 'डनघुलु वीरु । जननाथ! दशरथ जनपालसुतुलु;
नायतशक्ति ना यागंबु गाचि । या यहल्यनु ब्रोचि यनुकंप नेंचि,
निरुपमतरशक्ति नी यिंटनुन्न । हरुनि चापमु जूडनरुदेंन्चि' रनुडु
मुनिनाथु माटकु मुदमंदि जनकु । डनुनयंबुन वारि नर्थि बूजिंचें ।
गौशिकु गनुगोंनि गौतमसूनु । डाशतानंदु डिट्लनियें रागिल्लि:
'नीवु रामुनि देंच्चि नेंम्मि मम्मेलि: । ती विश्वविभु देर नेंव्वरितरमु?
अडरि मा तल्लि यहल्यपापमुलु । गडिगें रामुनि पादकमलरेणुवुलु;
गौतमशापदुर्गति निस्तरिंचि । गौतमु ग्रम्मरऽ गलसें मा तल्लि;
रामचंद्रुनि पाद राजीव महिम । लेमंदु' ननि रामु नीक्षिंचि पलिकें:

(सूर्य) (और) चन्द्र के समान दीखनेवाले, धीर, अश्विनीकुमार नामक देवताओं की आकृतियों वाले, आजानु (घुटनों तक लंबे) बाहु वाले, अतुल विक्रम वाले और राजीव नेत्र (कमलनेत्र) थे। ।। १५३० ।।

—(देखकर) पूछा—'धनुष-बाण से शोभित हाथों वाले, ये चतुरात्मक कौन हैं ? ये पल्लव के समान लाल तथा कोमल चरण-कमलों वाले किस प्रकार यहाँ (तक) पैदल आए हैं' ? (तब) विश्वामित्र ने कहा—'हे अनघ जननाथ ! ये (बालक) जनपाल दशरथ के पुत्र हैं। आयत (व्याप्त) शक्ति से मेरे यज्ञ की रक्षा कर, उस अहिल्या का उद्धार कर, अनुकम्पा से (अब) तुम्हारे घर में रखे हुए हर (शिव) के निरुपमतरशक्ति वाले धनुष को देखने आए हैं'। मुनिनाथ के वचन से आनन्दित होकर, जनक ने अनुनय-पूर्वक (और) हृदय से उनकी पूजा की। कौशिक को देखकर गौतम के पुत्र शतानन्द प्रेम से यों बोले—'राम को (यहाँ) लाकर, प्रसन्नता-पूर्वक हमें धन्य किया है। (वरन्) इस विश्व-व्यापक को ला सकने की सामर्थ्य किसमें है ? मेरी माता अहिल्या के पापों को राम के चरणकमल के रेणुओं ने, प्रबल होकर, धो डाला। गौतम के शाप की दुर्गति से पार होकर (शाप से मुक्त होकर) मेरी माता फिर से गौतम से मिल गई हैं। ।। १५४० ।।

—रामचन्द्र के चरणकमलों की महिमा का वर्णन कैसे करूँ ?'। (ऐसा) कहकर राम को देखकर बोले—'सुनते हैं, ये कौशिक जो पुण्यात्मा हैं, इस

'नी कौशिकुडु पुण्युडीक्षोणिमीद । नीकु रक्षकुडट! नीकेमि कोंदव ?

विश्वामित्र प्रभावमु

यरय विश्वामित्रु नतुल प्रभाव । मरिदि प्रस्तुतिसेय; नैननु विनुमु;
दशरथात्मज! ब्रह्मतनयुंडु गुशुडु । गुशुर्डथि तोडुत गुशनाभु गनियें;
गुशनाभुनकु गाधिकोंडुकय्यें; नट्टि । कुशपवित्रुडु गाधिकोंडुकय्यें नीतः
डतिधर्मनिरतुडै यतुलसत्त्वमुन । नितडु महीचक्रमेलुचुनुंडि
योंलसिन वेडुक नोंकनाडु दन्नु । बलसि यक्षौहिणि बलमुलु गोंल्व
वेंडलि काननमुल वेटलु सल्पि । पुडमियंतयु जरिंपुचु जाल बडलि
बहुगंधबंधुर प्रसवमंजरुल । बहुफलंबुल नोंप्पु पादपावळुल
बहुपक्षिरवमुल ब्रह्मघोषमुल । बहुसरोवरमुल बहुवेदिकलनु १५५०
नलरुचु जाति वैरादुलुलेक । मेंलगु नानाविध मृगमुलु गलिगि
यनिलांबु जीर्णपर्णाशुलै तपमु । नोनरिंचु मुनुलचे नुल्लसिल्लुचुनु

क्षोणि (पृथ्वी) पर तुम्हारे रक्षक हैं। (तब) तुम्हें किस (बात) की कमी हो सकती है ?

विश्वामित्र का प्रभाव

—विचार करने पर कोई विरला ही विश्वामित्र के अतुल प्रभाव की प्रशंसा करने में समर्थ हो सकता है। तब भी (आप) सुनिए। हे दशरथात्मज! ब्रह्मा के पुत्र हैं कुश। कुश ने प्रेम से कुशनाभ को जन्म दिया। कुशनाभ के गाधि (नामक) पुत्र हुए। ऐसे कुश-पवित्र गाधि के पुत्र हुए ये (विश्वामित्र)। अति-धर्म-निरत हो (और) अतुल सत्त्व (शक्ति-पराक्रम) से ये महीचक्र पर शासन कर रहे थे। एक दिन अतिशय रुचि से, अक्षौहिणी सेना से अपने को परिवेष्ठित कर, सेवा करते समय, काननों की ओर आखेट के लिए निकल पड़े। (देर तक) शिकार खेलते हुए समस्त प्रदेश में घूम-घूमकर बहुत थक गए (और) वसिष्ठ के आश्रम में पहुँचे। (वह वसिष्ठ-आश्रम) बहु (प्रकार की) (सु) गन्ध से बन्धुर पुष्पमंजरियों (और) बहु (प्रकार के) फलों से सुशोभित पादप (वृक्ष) समूहों से भरा था, बहु-पक्षि-रव (ध्वनियों), ब्रह्म-घोष (वेदध्वनियों), बहु सरोवर, बहु वेदिकाओं (यज्ञ की वेदियों) से सम्पन्न था।। १५५० ।।
—जाति (गत) वैर आदि के बिना विचरण करनेवाले नानाविध मृगों से युक्त था, अनिल (पवन), अंबु (जल) पर्ण (पत्ते) खाते हुए तप करनेवाले मुनियों से विलसित था। पन्नग, सिद्ध, सुपर्व, गन्धर्व, किन्नर

बन्नग सिद्ध सुपर्व गंधर्व । किन्नरादुल वालखिल्यादि मुनुल
गड्नोप्पि ब्रह्मलोकमु बोलि घनत। नडरु वसिष्ठुनि याश्रमंबुनकु
नतिमुदंबुन वच्चि या वसिष्ठुनकु । नतिभक्ति म्रोक्किन नतडु दीविंचि
युचितासनंबुन नुनिचि पूजिंचि । प्रचुररसस्वादु फलमूलततुल
वरुसतो निच्चिन वानि गैकोनुचु । गरमुलु मुकुळिंचि कडुभक्ति बलिकें:
'ननघात्म! तपसुलु नग्निहोत्रमुलु । जनलोकनुतमुलै जरुगुचुन्नवियें ?
मीरु मी शिष्युलु मी याश्रममुन । नारय वीरु वारनकेल्लवारु
मुदमुन नुन्नारें? मुनिनाथ! 'यनिन। 'नोंदवुसम्मदमुन नुन्नार मेमु;
१५६०
नीतितो जेयुदें नीवु राज्यंबु ? । ब्रीतिमै भरियिंतें भृत्यवर्गमुल ?
मुदमोप्प राज्यांगमुलु परीक्षिंतें?। वदलक निर्जितें वालु शात्रवुल?
गुशलमे सर्वंबु ? गुशलमे नीकु । गुशलमे नी पुत्रकुलकु, बत्नुलकु?'
ननि पल्क 'मी कृप नखिलंबु गुशल'। मनियें गौशिकु; डंत नव्वसिष्ठुंडु
'करमर्थि ना यिंटिकड विंदु गुडिचि। यरुगुम यी' वनि यतनि ब्रार्थिंप
नंदुकु गौशिकुंडनुमतिंचुटयु । विंदु सेयुटकुनै वेगंब यतडु

आदि से (और) वालखिल्यादि मुनियों से अति मनोहर (वह) बन ब्रह्म-लोक के समान महानता से शोभायमान था। वसिष्ठ के उस आश्रम में अति प्रसन्नता से (जाकर विश्वामित्र ने) उस वसिष्ठ को अति भक्ति से प्रणाम किया। उसने (वसिष्ठ ने) आसीस देकर, उचित आसन पर बिठाकर, (विश्वामित्र की) पूजा (सत्कार) की (और) क्रम से प्रचुर रस (और) स्वाद से युक्त फल (और) मूल-समूह दिए। उन्हें ग्रहण करते हुए, हाथ जोड़कर अतिभक्ति से (विश्वामित्र) बोले—'हे अनघात्म! तपस्याएँ (और) अग्निहोत्र (आदि) जनलोकनुत (लोकसम्मत) रूप से हो रहे हैं न? हे मुनिनाथ! आप (और) आपके शिष्य (और), आपके आश्रम के सभी लोग प्रसन्नता (सुख) से हैं न?' (ऐसा) कहने पर वसिष्ठ ने कहा—'हम सब बड़े सुख से हैं ॥ १५६० ॥
—तुम नीति के साथ राज्य करते हो न? भृत्यवर्ग का प्रीति से पालन कर रहे हो न? राज्यांगों का (राज्य के सात अंग माने गए हैं) मोद से पर्यवेक्षण कर रहे हो न? क्रूर शत्रुओं को, न छोड़कर, हरा देते हो न? सभी कुशल तो है न? तुम कुशलता से हो न? तुम्हारे पुत्र (और) पत्नियाँ कुशलपूर्वक हैं न? (ऐसा) कहने पर कौशिक ने कहा—'आपकी कृपा से सभी कुशल से हैं'। तब वसिष्ठ ने उनसे प्रार्थना की—'बड़े प्रेम से मेरे घर पर भोजन कीजिए'। उसके लिए कौशिक ने अनुमति दी (स्वीकार किया)। (तब) भोजन

तन होमधेनुवु दलचि रप्पिंचि । 'जननाथवरुनकु सकलसेनलकु
विविधभक्ष्यंबुलु विविधभोज्यमुलु । विविधभंगुल विंदु वेड्क गाविंप
वलयु गावुन नीवुवलयु वस्तुवुलु । गलिगिंपु' मनवुडु गामधेनुवुनु
गलमान्नततुलु शाकमुलु भक्ष्यमुलु । गलवंटकमु लूरुगायलंबळ्ळु १५७०
फलविशेषंबुल पायसान्नमुलु । जिलुगु पालुनु वेन्न चीनि चक्करेलु
सद्योघृतंबु रसायनंबुलुनु । मद्यविशेषमुल् मांसभेदमुलु
वाविरि मरियु नेव्वारि केमेमि । कावले नवि येल्ल गलिपप नपुडु
ना धेनु महिम कत्याश्चर्यमोन्दि । गाधेयुडप्पुडु कडिमाडसेय
गुडिचि सेनलु दानु गोर्कि दीपिंप । गडु दृप्ति नोन्दि, या गाधितनूजु
'डी कामधेनुवु नेब्भंगिनैन । जेकोन्दु' ननुचु वसिष्ठुनि जेरि
'लक्षगुर्रंबुलु लक्षधेनुवुलु । लक्षयेनुगुलु वेलक्षलु मणुलु
निच्चेद नी धेनुविम्मु ना' कनिन । निच्चलो मुनिनाथुडेन्तयु वगचि
'यिदि नाकु जीवनंबिदि नाकु ब्राण। मिदि ना तपंबुलकेल्ल साधनमु;
हव्यकव्यंबुलु नतिथिसत्कार । मव्याहतमुग नी यावुचे नडचु १५८०

(दावत) (की तैयारी) करने के लिए वशिष्ठ ने स्मरण करके शीघ्रता से अपनी कामधेनु को बुलाया (और) कहा—'जननाथ-वर (राजश्रेष्ठ विश्वामित्र) (और) समस्त सेना को विविध भक्ष्य (और) विविध भोज्यों से विविध प्रकार से प्रेम से भोजन कराना है। अतः तुम आवश्यक वस्तुओं को उत्पन्न करो'। (ऐसा) कहने पर कामधेनु ने महीन और सुगंधित अन्न के समूह, शाक (साग), भक्ष्यों से युक्त रसोई, अचार, काँजी, ॥ १५७० ॥

—विविध फल, खीर, गाढ़ा दूध, मक्खन, चीनी, सद्यो (ताजा) घृत, रसायन, कई प्रकार के मद्य और मांस (आदि) जिसको जो चाहिए क्रम से उन सभी का प्रबन्ध किया। तब उस धेनु की महिमा पर अति आश्चर्य-चकित होते हुए गाधेय (विश्वामित्र) ने स्वयं, सेनाओं के साथ भरपेट भोजन किया। इच्छाओं के प्रदीप्त होने पर, अत्यन्त सन्तुष्ट होकर, उस गाधि-तनूज (विश्वामित्र) ने सोचा—'किसी भी प्रकार से इस कामधेनु को प्राप्त करूँगा'। (यह सोचते हुए) वसिष्ठ के पास जाकर कहा—'लाख घोड़े, लाख धेनु, लाख हाथी (और) हज़ार लाख (कई) मणियाँ दूँगा। यह धेनु मुझे दे दो'। (ऐसा) कहने पर मुनिनाथ मन में अत्यन्त दुखी हुए और बोले—'यह मेरे लिए जीवन है, यह मेरा प्राण है। यह मेरी सभी तपस्याओं का साधन है। हव्य-कव्य, अतिथिसत्कार (आदि) इस धेनु के कारण अव्याहत (निर्विघ्न) रूप से चलते हैं। ॥ १५८० ॥

अन्धो अभाग़ो, सचु सुञाणे कीन की ।
भुली भरे सभ जो लोभी थी लाग़ो ।
माणे सुखु स्वरूप जो, को साधू सुजाग़ो ।
सदा अनुराग़ो, सामी रहे स्वभाव में ॥ ३८० ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धा (अज्ञानी) भाग्यहीन है; क्योंकि वह सत्य को नहीं पहचानता है। वह अपने (स्वरूप) को भूलकर, लालच-वश लेन-देन के फेर में पड़ जाता है (कुछ प्राप्त करने की अपेक्षा सब कुछ गँवा बैठता है)। लेकिन जागृत साधु पुरुष सदैव अपने ही भावों में अनुरक्त हो, स्वरूप-सुख का उपभोग करता रहता है ॥ ३८० ॥

अन्धो जीउ अहमकु, सचु सुञाणे कीन की ।
देही ज्ञाणी पाणखे, भोगे नितु नर्कु ।
विलो को गुर्मुखु रहे, फुर्ने खों फार्कु ।
ब्रांभण थी ब्रालकु, वर्ते सभ वंहिवार में ॥ ३८१ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धा जीव (अज्ञानी जीव) बेवकूफ है क्योंकि वह सत्य को नहीं पहचानता है। वह स्वयं को शरीर समझकर, सदैव नरक (के दुःखों को) भोगता है। कोई विरला गुरुभक्त ही भ्रमों से मुक्त रहता है एवं सब प्रकार के व्यवहार में बालकों की तरह (निर्दोष होकर) बर्ताव करता है ॥ ३८१ ॥

अहंकारी अहमक, सचु सुञाणनि कीन की ।
ब्रुधी वाक्य वेदान्त जा, दरि दरि बकनि बक ।
इस्थति रहनि आकास ज्याँ, के प्रेमी प्रपक ।
लूअं लूअं साणु लटक, सामी लाए लालु थिया ॥ ३८२ ॥

अहंकारी नादान (जीव) सत्य को नहीं पहचानते हैं। वे वेदान्त के वाक्य सुनकर (बिना उन पर आचरण किए) उन्हें द्वार-द्वार बकते रहते हैं। सामीजी कहते हैं किन्तु पक्के प्रेमी पुरुष आकाश की भाँति स्थिर रहते हैं। उनका रोम-रोम परमात्मा के प्रेम-रूपी रंग में रंगकर लाल हो गया है ॥ ३८२ ॥

कर्म करिनि कूड़ा, पाए सघनि न पीअ खे ।
भुली भवनि पाणहीं, ममत्व में मूढ़ा ।
माणिनि दौर दर्संजा, सम थी सचूड़ा ।
सदा ग़उड़ा ग़ूड़ा, सामी रहनि स्वभाव में ॥ ३८३ ॥

सामीजी कहते हैं कि मूढ़ (जीव) झूठे कर्म करते रहते हैं, अतः प्रियतम को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। वे ममता में पड़कर अपने (स्वरूप) को भूलकर स्वयं ही भटक रहे हैं। किन्तु सन्त पुरुष, समभाव होकर प्रियतम के दर्शन का आनंद लूटते हैं तथा अपने ही भावों में सदैव गहराई से डूबे रहते हैं। (जिस प्रकार भारी वस्तु एक ही जगह पर स्थिर रहती है उसी प्रकार आत्मा के गूढ़ ज्ञान को प्राप्त करनेवाले अधजल गगरी की भाँति छलकते नहीं हैं, बल्कि अपनी ही जगह पर स्थिर एवं गंभीर रहते हैं) ॥३८३॥

करे हठु हठी, खोहिनि मानुष्य देहखे ।
खेप खटी विया प्रीतिवान, नेही वाट वठी ।
कसौटी कामिल जी, सामी जिनि सठी ।
कल्पत पिण्ड पठी, सटे मिल्या स्वरूप साँ ॥ ३८४ ॥

हठी (अज्ञानी) हठ कर मानव-शरीर को व्यर्थ ही नष्ट करते हैं, किन्तु प्रेमी प्रेम का रास्ता अपनाकर विजयी बने बैठे हैं (आत्मज्ञान प्राप्त कर मानव-जीवन को सफल कर बैठे हैं)। सामीजी कहते हैं कि जिन्होंने पहुँचे हुए सद्गुरु द्वारा ली गई कसौटी के दुःख सहन किये हैं (गुरू द्वारा ली गई परीक्षा में सफल हुए हैं), वे प्रपंच रूपी पिण्ड को पटककर स्वरूप से जा मिले हैं ॥ ३८४ ॥

कंहिंखे पवे न कल, अणहून्दे आड़ाह जी ।
लुढ़ी लहवारा थिया, सूरवीर सबल ।
लंघे चढ़िया लख्य ते, के नेही निर्मल ।
अठई पहर अचल, सामी रहनि स्वभाव में ॥ ३८५ ॥

सामीजी कहते हैं कि इस मिथ्या (संसार रूपी) समुद्र की पहचान किसी को भी नहीं है, अतः सबल तथा शूरवीर भी (अज्ञान-वश) इसके प्रवाह में नष्ट हो गये हैं। किन्तु कुछ पवित्र प्रेमी अज्ञान को मिटाकर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुए हैं। वे आठों ही याम अपने ही भावों (आत्मा संबंधी भावों) में अचल रहते हैं ॥ ३८५ ॥

किसा करे कूड़ा, ब्रुधाइनि ब्रियनि खे ।
पाणु पछाणनि कीनकी, मूढ़ा मति मूढ़ा ।
माणिनि सुखु स्वरूप जो, साधू जन सूड़ा ।
सदा ग्रौरा गूड़ा, सामी रहनि स्वभाव में ॥ ३८६ ॥

सामीजी कहते हैं कि मन्द बुद्धि मूर्ख (अत्यन्त ही अज्ञानी जीव) अपने (स्वरूप) को तो पहचानते नहीं हैं परन्तु दूसरों को (आत्मा-संबंधी) झूठी कहानियाँ सुनाते रहते हैं। किन्तु पूर्ण साधु पुरुष स्वरूप-सुख का उपभोग करते रहते हैं, फिर भी सदैव अपने ही भावों में (आत्म-संबंधी विचारों में) भारी एवं गंभीर बने हुए रहते हैं। (अज्ञानी जीव अधजल गगरी की भाँति छलकते रहते हैं किन्तु ज्ञानवान सदैव गंभीर रहते हैं) ॥ ३८६ ॥

की ज्ञाताईं पाणु ? प्रीं ज्ञातांई की ब्रियो ?
सामी तंहिखे सन्तजन, ज्ञाणनि अति अज्ञाणु।
पर्ची करे न पाणखे, नानत खों निरब्राणु।
सदा सन्से साणु, भवे भौसागर में ॥ ३८७ ॥

सामीजी कहते हैं कि सन्त-जन उन लोगों को अनभिज्ञ (अज्ञानी) मानते हैं, जो स्वयं को पहचान कर (पहचानने का दावा कर) भी प्रियतम को अपने से अलग मानते हैं (जिनके हृदय में द्वैत की भावना है, जो आत्मा एवं परमात्मा में भेद मानते हैं वे वास्तव में अज्ञानी ही हैं)। ऐसे (अज्ञानी) लोग स्वयं को द्वेष से मुक्त नहीं कर पाते बल्कि भ्रमित होकर सदैव संसार रूपी सागर में भटकते रहते हैं ॥ ३८७ ॥

कूड़नि कूड़ी तार, लाथी माया मोह जी।
भवनि भौसागर में, पाए जन्म अपार।
सामी सचारनि जी, सची समुझ सम्भार।
घर धणीअ खाँ धार, कद्हिं थियनि कीन की ॥ ३८८ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोगों (अज्ञानियों) ने माया तथा मोह से झूठी प्रीति की है, अतः वे अनेक जन्म पाकर संसार रूपी सागर में भटक रहे हैं। किन्तु सच्चे (ज्ञानी) सत्य (ज्ञान) से परिचित हैं अतः वे (हृदय-रूपी) घर के मालिक (ईश्वर) से कदापि अलग नहीं होते हैं ॥ ३८८ ॥

कूड़नि खे कदुरु, कोन्हे मानुष देहि जो।
भवनि भौसागर में, थी अधीनु आतुरु।
सचारनि सोधे लधो, ठिकर मों ठाकुरु।
ऐन अभेद अफुरु, सामी रहनि स्वभाव में ॥ ३८९ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे (अज्ञानी जीव) मानव शरीर की क़द्र

नहीं करते हैं। वे अधीन एवं आतुर होकर सदैव संसार-सागर में भटकते रहते हैं। किन्तु सत्य को जाननेवालों (ज्ञानी जीवों) ने पत्थर में भी परमात्मा को ढूंढ लिया है, अतः वे पवित्र, अभेद तथा अविचलित रहकर अपने ही भावों में (मस्त) रहते हैं ॥ ३८९ ॥

कूड़नि खे कर्तव्य, वेदनि चयो विधि साँ।
सामी सचारनि जो, सुत्ह पाकु पलउ।
पूरणु ड्रिसनि पीअखे, मेटे भोलो भउ।
सोनार्को सउ, लोहार्को धकु हिकिड़ो ॥ ३९० ॥

सामीजी कहते हैं कि वेदों ने झूठे लोगों (अज्ञानी जीवों) को कर्तव्य की विधि बता दी है (परमात्मा को पाने के साधन बता दिये हैं)। किन्तु सच्चे (ज्ञानी जीवों) का आँचल सदैव पाक व पवित्र रहता है। वे भय तथा भ्रम मिटाकर पूर्ण प्रियतम को देखते रहते हैं। जिस प्रकार सुनार के सौ प्रहार लुहार के एक प्रहार के बराबर है उसी प्रकार अज्ञानी जीव सुनार की तरह बार-बार परमात्मा को पाने के प्रयत्न करते रहते हैं, परन्तु ज्ञानी जीव लुहार की तरह एक ही प्रयत्न से परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३९० ॥

कूड़नि खे कर्तारु, पाणु पसाए कीनकी।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, खपी थियनि खुआरु।
माणे दौर दर्स जो, को साधू जन सचारु।
बणीअ ते हुशियारु, सदा रहे सामी चए ॥ ३९१ ॥

सामीजी कहते हैं झूठे (अज्ञानी जीवों) को कर्तार अपने आप को नहीं दर्शाते हैं (अज्ञानी जीव परमात्मा को देख नहीं पाते हैं), अतः वे संसार को सत्य मानकर, अपने को खपाकर, बदनाम होते रहते हैं, किन्तु सत्य को जानने वाला साधु चतुर बनकर परमात्मा के दर्शन का आनन्द भोगता है ॥ ३९१ ॥

कूड़नि ग़ाल्हि कची, मञी कूड़ कल्पत जी।
मरनि माया मोह में, पंहिजो पाण पची।
सचारनि सामी चए, समुझी लख सची।
रह्या रंग रची, सुत्ह सिधि स्वरूप में ॥ ३९२ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे (अज्ञानी) लोगों ने झूठे प्रपंच को सत्य मान लिया है, अतः वे स्वयं ही मोह तथा माया में पच-पच कर मर रहे

हैं। किन्तु सत्य को जाननेवालों ने सत्य को पहचान लिया है (आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया है) अतः वे साक्षात् परमात्मा के रूप में रंगे हुए रहते हैं ॥ ३९२ ॥

कूड़नि जी कहिणी, कूड़ी कथ रहणीअ रे।
भवनि भौसागर में, करे पाणु पिणी।
सामी सुजाग॒नि डि॒ठो, घर में घर धणी।
पिननि पंज कणी, तांभी राजा रांवल देसजा ॥ ३९३ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोगों की कहनी (कथित बातें) आचरण-हीन होने के कारण झूठी है (झूठे लोग दूसरों को तो सत्य का उपदेश देते हैं पर खुद उस पर आचरण नहीं करते हैं। वे स्वयं ही अपने को बदनाम कर संसार-सागर में भटकते रहते हैं। किन्तु जागृतों (ज्ञानी लोगों) ने (हृदय-रूपी) घर में घर के मालिक (परमात्मा) को देख लिया है, अतः यद्यपि वे (पेट के कारण) अन्न के पांच-कण की भीख भी मांग रहे हैं, फिर भी वे संसार के सम्राट् हैं ॥ ३९३ ॥

कूड़नि जो कर्तौं, कूड़ो सभु कल्पत जो।
भवनि भोग॒नि पाणहीं, रखी कूड़ो तौ।
सामी सचारानि जे, मन वसे माधौ।
मेटे भोलो भौ, इस्थति थिया आकास जाँ ॥ ३९४ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोगों (अज्ञानी जीवों) का समस्त व्यवहार झूठा एवं प्रपंच-युक्त है। वे झूठ का सहारा लेकर (अज्ञान-वश) स्वयं ही दुःखों को भोग-भोग कर भटक रहे हैं, किन्तु सत्य को जाननेवालों (ज्ञानी जीवों) के हृदय में माधव (परमात्मा) का निवास है। वे भ्रम तथा भय मिटाकर आकाश की भाँति स्थित हो गये हैं ॥ ३९४ ॥

कूड़नि जो कल्याणु, थिए न समता सच रे।
तोड़े सभि साधन करे, मारिनि पंहिंजो पाणु।
सदा सचारनि जे, सज॒णु रहे साणु।
पाए पदु निरब॒ाणु, सामी माणिनि सेज सुखु ॥ ३९५ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) यद्यपि अपने (मन) को मारकर (परमात्मा को प्राप्त करने के लिए) सब प्रकार के साधन करते रहते हैं, फिर भी समता-सत्य को (शाश्वत आत्मा को सब में समान रूप से देखने के सिवा) अपनाये बिना उनका कल्याण नहीं होता है। लेकिन

सत्य को जाननेवालों के साथ सदैव प्रियतम (परमात्मा) रहता है। वे निर्वाण पद प्राप्त कर, शय्या-सुख लूटते हैं (परमात्मा के साथ विलास करते हैं) ॥ ३९५ ॥

कूड़नि जो कोई, थाइं न पवे जोग़ु जपु।
भोग़िनि भोग़ नर्क जा, रहित बिना रोई।
सामी सचारनि जो सम सचो सोई।
जीएं रंग रती लोई, तीएं रता रहनि रंग में ॥ ३९६ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोगों (अज्ञानियों) को योग और जप करने से भी कुछ प्राप्त नहीं होता है। वे करनी के बिना नरक के दुःख रो-रो कर भोगते रहते हैं; किन्तु सत्य को जाननेवाले (ज्ञानी) उस (आत्मा) को ही सत्य और सम मानते हैं, अतः वे उसके (आत्मा के) रंग में उसी प्रकार रंगे हुए रहते हैं, जिस प्रकार कम्बल अपने रंग में रंगा हुआ रहता है ॥ ३९६ ॥

कूड़नि लिवं लाई, कूड़ीअ माया मोह साँ।
सति ज्ञाणी संसार खे, छाणिनि था छाई।
सामी सचारनि खे, समुझ सची आई।
सम थी सदाई, माणिनि सुखु स्वरूप जो ॥ ३९७ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोगों (अज्ञानी जीवों) ने झूठी मोह-माया से प्रीति की है। वे संसार को सत्य मानकर, राख छान रहे हैं (अपना जीवन नष्ट कर रहे हैं)। किन्तु सत्य को जाननेवालों को सच्ची बुद्धि (ज्ञान) प्राप्त हो गयी है अतः वे सदैव सम-भाव होकर स्वरूप-सुख का उपभोग करते रहते हैं ॥ ३९७ ॥

कूड़ा ऐं कुमती, साड़ न ज्ञाणनि सम जो।
खोहिनि मानुष देह खे, करे मन मती।
सामी सचारनि जी, लिवं लिवं रंग रती।
पाए प्राण पती, इस्थति थिया आकास जाँ ॥ ३९८ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे एवं कुमति-जीव (अज्ञानी और कुमार्गी) समता के महत्व को नहीं जानते हैं। वे मन के अधीन होकर (अमूल्य) मानव-शरीर को व्यर्थ ही गँवाते हैं। लेकिन सत्य को जाननेवालों का रोम-रोम (परमात्मा के प्रेमरूपी) रंग में रंगा हुआ रहता है। वे प्राण-पति (परमात्मा) को प्राप्त कर आकाश की भाँति स्थिर रहते हैं ॥ ३९८ ॥

कूड़ा कथे कथ, बुधाइनि ब्रियनि खे।
वहनि पाण वह में, हारे सभि हिमथ।
पूरणु ज्ञाणनि पीअ खे, सूर्मा समिरथ।
जिनिखे ड्रेई हथ, सामी रख्यो सतिगुरुअ ॥ ३९९ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे जीव (अज्ञानी) दूसरों को झूठे कथन सुनाते रहते हैं, परन्तु स्वयं समस्त हिम्मत हारकर (प्रपंच रूपी) प्रवाह में बहते रहते हैं। किन्तु जिन्हें सदगुरु ने अपने हाथों का सहारा दिया है (ज्ञान का उपदेश दिया है), वे समर्थ शूरवीर (ज्ञानी) पूर्ण प्रियतम (परमात्मा) को जानते हैं ॥ ३९९ ॥

कूड़ा कपटी कोर, सचु सुञाणनि कीनकी।
मरी पाइनि मति रे, जन्म अनेक अघोर।
को सुजागो सूर्मो, माणे दर्सन दौर।
सामी चए जंहिं चोर, भञी कया वसि पंहिंजे ॥ ४०० ॥

झूठे, कपटी तथा मूढ़ लोग सत्य को नहीं पहचानते हैं। वे बुद्धि-हीन मर-मर कर अनेक अघोर (अशुभ) जन्म प्राप्त करते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, किन्तु जिसने (काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार रूपी) चोरों को मार कर अपने वश में कर लिया है, वह जागृत शूरवीर (परमात्मा के) दर्शन के आनन्द का उपभोग करता है ॥ ४०० ॥

कूड़ा कमाई, कूड़ी कनि कल्पत जी।
सभुकी सहनि सिरते, ज्ञाणी वड्राई।
सचा माणिनि सान्ति सुखु, सामी सदाई।
पकी पकाई, रोटी खाइनि रस भरी ॥ ४०१ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) प्रपंच की झूठी कमाई करते हैं (संसार के प्रपंच में फँसे हुए रहते हैं)। वे (प्रपंच के) दुःखों को सहन करने में ही अपना बड़प्पन मानते हैं, किन्तु सच्चे (ज्ञानी) सदैव पकी-पकाई, रस-भरी रोटी खाकर (हृदय में ही स्थित आत्मा का ध्यान कर) शान्ति तथा सुख का उपभोग करते हैं ॥ ४०१ ॥

कूड़ा करे कर्तबु, ड्रेखारिनि सभु ड्रेह खे।
अग्यों अजीबनि जे, छुपे कीन कसबु।
सामी सचारनि खे, कोन्हे लालच लबु।
रात्यूं ड्रींहा रबु, ड्रिसनि पंहिंजे ड्रील में ॥ ४०२ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) संसार को अपनी (झूठी) चतुराई दिखाते रहते हैं, किन्तु परमात्मा के आगे उनके (झूठे) करतब नहीं छिपते हैं (परमात्मा से अपने बुरे कार्यों को नहीं छिपा सकते हैं)। किन्तु सत्य को जाननेवालों (ज्ञानियों) को किसी प्रकार की लालच और चाह नहीं रहती है, वे दिन रात अपने ही शरीर (हृदय) में परमात्मा को देखते रहते हैं ॥ ४०२ ॥

कूड़ा कहाणी, कूड़ी कनि कल्पत जी।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, विलोरिनि पाणी।
सामी सचारनि जी, सची बुधी ब्राणी।
सभ घट समाणी, ज्योति द्रिसनि जगदीस जी ॥ ४०३ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) प्रपंच की झूठी कहानी कहते रहते हैं। वे संसार को सत्य मानकर पानी को मथते रहते हैं (व्यर्थ परिश्रम करते रहते हैं। जिस प्रकार पानी को मथने से मक्खन नहीं निकलता है, उसी प्रकार कठोर से कठोर परिश्रम करने पर भी नश्वर संसार में शाश्वत परमात्मा को नहीं पाया जा सकता है)। किन्तु सत्यवादी लोगों की वाणी एवं बुद्धि सच्ची ही रहती है। वे घर-घर में जगदीश्वर की ज्योति समाई हुई देखते हैं ॥ ४०३ ॥

कूड़ा कारि कची, कूड़ी कनि कल्पत जी।
मरनि मति मर्म रे, पंहिंजो पाण पची।
सामी सचारनि जी, सदा मति सची।
रह्या रंग रची, सुत्ह सिधि स्वरूप जे ॥ ४०४ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) प्रपंच के झूठे कार्य बिना सोचे-समझे करते रहते हैं। वे निर्लज्ज तथा बुद्धिहीन स्वयं ही पच-पच कर मर रहे हैं, किन्तु सत्यवादी लोग सदैव सच्ची बुद्धि (आत्मज्ञान) रखकर, परमात्मा के स्वरूप-रंग में रंगे हुए रहते हैं (सदैव परमात्मा का ही चिन्तन करते रहते हैं) ॥ ४०४ ॥

कूड़ा कुरीतो, हलनि हर्फ हिसाब रे।
मरी पाइनि पाणहीं, किये जो कीतो।
सामी सचारनि सचो, प्यालो पुरि पीतो।
ज्ञाग़ी जंहिं जीत्यो, पूरणु ज्ञाणी पीअखे ॥ ४०५ ॥

शशिलेखॆयॆनल् कर्पू- * र शलाकॆयॆनल् विळोचनोत्सवमं मा-
डि शिलीमुखकुंतलॆ मद- * न शिलीमुखदंतॆ भुवनमं सोलिसिदळ् ॥३०॥
मनसिजनाज्ञारूपमि- * दॆनॆकर्विनबिल्लनॊल्लदुर्चुव सन्मो-
हन शरमॆनॆ बाजिसिदुदु * जनकजॆय बॆडंगु मदनजय डिंडिममं ॥३१॥

लीलॆयनप्पुकॆय्दु नयनोत्सवमं दयॆगॆय्व गाडियि-
देळिसि काम कल्पलतॆयं परिपूर्णकळाविळासदिं
देळिसि चारु चंद्रकलॆयं नॆलॆवॆर्चिसिदळ् मराळ ली-
लाळसयानॆ जानकि विदेहिगॆ मोहरस प्रवाहमं ॥३२॥

जनकंगॆ हर्षदॊदवं * जनियिसि जानकिय रूपविभवं माडि-
त्तनुरूपं नृपसुतना- * वनो वरनी वनितॆगॆंब मनदुम्मळमं ॥३३॥

जनकजॆ मीरॆ शैशवमनॆ तलॆदोरिदुदो नवीन यौ-
वन विभवं मुगुळ्नगॆयनॊदॆरडं निजपल्लवाधरं
ननॆय सरल्गळॊदॆरडुमं कडॆगण् कुडुवुर्वु कामदे-
वन कुडुविल्लनॊदॆरडुमं पडॆदॊप्पमनप्पुकॆय्विनं ॥३४॥

अंतु जानकि जननीजनकर मनक्कॆ संतोषमनॊदविसुतिर्पिन-
मॊंदुदिवसं—

उत्सव प्रदान करती हुई, अपने रूप से उसने सबको वैसे ही पराजित किया जैसे कामदेव के बाण समस्त संसार को पराजित कर देते हैं। ३० जनकनंदिनी (सीता) का रूप, मानो कामचक्रेश्वर की आज्ञा से निर्मित-सी, इक्षुधनुष से भी तीव्रता से निकलनेवाले (कामदेव के) सम्मोहन-बाणों के सदृश मदन (कामदेव) का विजयडंका बजा रहा था। ३१ खेलती हुई, अपनी दृष्टि के उत्सव को रूप के गांभीर्य से, काम-कल्पलता को अपने कलाचातुर्य से पराजित कर, चंद्रप्रकाश को वर्द्धित करके, मयूरी की तरह चलनेवाली जानकी ने विदेही के वात्सल्य-रस-प्रवाह को बढ़ाया। ३२ जनक को अत्यधिक आनंद प्रदान करनेवाली सीता को देखकर वह (राजा) इस बात की चिंता करने लगा कि बेटी के लिए कौन अनुरूपी वर होगा ? । ३३ सीता का शैशव बीतकर उसे यौवन प्राप्त हुआ तो उसके मुस्कराते अधर नये अंकुर के समान, तिरछी नज़र पुष्पबाणों के सदृश, भौंहे कामदेव के ईख-धनुष की तरह दिखाई पड़े। ३४ —इस तरह सीता माता-पिता के मन को आनंद प्रदान कर रही थी कि एक दिन, एक चारण ने, जनक के राजदरबार में प्रवेश कर, राजा के पैरों में गिरकर, भयभीत हो, वस्त्र के छोर को अपने मुँह के पास ले

चरनोर्व बंदु बेगं जनकन सभेयं पोक्कुमैयिक्किभीता-
तुर चितं चीन चेलांचलमनधरदत्तुय्दु चित्तैसिदोंदं-
हरिवंशोत्तंस लोकाद्भुतमनसमयोत्पातमं लोकलुंटा
करसंख्यातर् किरातर् नेरेदु निखिलभूचक्रमं सूरेगोंडर् ।। ३५ ।।
इरिदु तविसुवोडे पडे ना * डेरेयर कैयळवियल्तु कंडंतुटनें-
न्नरिवंतुटनुळ्ळंतुट * नरिपुवेनवधरिपुदेंदु चरनितेंदं ।। ३६ ।।
धनदाचलक्के बडगण * देने विजयार्धचलक्के तेंकणदेने दु-
ष्ट निवासमर्ध परमें * ब नामदिं म्लेच्छदेशमिर्पुदपारं ।। ३७ ।।
अल्लि मयूरमालेयेंब शबर शिबिरनाळ्व तरंगतमनेंब शबर नायकं तन्नाळ्वनाड बेडवडेयेल्लमं कूडिकोंडु कपोतकांभोजकनादि देशंगळं किडिसुत्तुं बंदु—
नाडरसं तगुळ्दु तडेगालद मारिय मूरियंते क-
ण्गोडदे बाल वृद्ध वनिता वधेगय्दु कवर्तेगोंडु सु-
ट्टोडिसि जातियं किडिसि नाडनवं कडिदिक्कि मेच्चिदं
बेडरसं तरंगतमनानिरे बेडरसेंब गर्वदिं ।। ३८ ।।
एंदु बिन्नविसे—
चर वचनमनालिसि तुं- * बुरकोळ्ळिय तेरदिनंबरक्के सिडिल्दा-
हरिवंशकेतु कण्किसु * सेरेवरियें कृतांतनंते मुळिदितेंदं ।।३९।।

जाकर निवेदन किया "प्रभु, चोरों ओर किरातों ने मिलकर, अनपेक्षित समय में, इस राज्य में उत्पात मचाकर, बड़ा लूटपाट किया है। ३५ उनसे भिड़कर उन्हें खदेड़ देने में राज्य के अधिकारी असमर्थ हैं; क्षमा करें; मैंने जो कुछ भी देखा है, समझा है और जो सत्य है (जैसा है वैसा ही) आप से कह रहा हूँ। ३६ कुबेरपर्वत के उत्तर और विजयाचल के दक्षिण में म्लेच्छदेश, जो दुष्ट निवासस्थान के रूप में प्रसिद्ध है न ? । ३७ —वहाँ मयूरमाले नामक शबरपुर पर शासन करनेवाला तरंगतम नामक भीलों का सरदार अपनी सेना (टोली) के साथ कपोत कांभोज, कणा (आदि) राज्यों को लूटता हुआ आया है। राज्य के अधिकारी ने उन्हें भगाने का प्रयत्न किया लेकिन प्रयल-काल के मृत्यु-समूह के समान, आबाल-वृद्ध, स्त्रियों को मारकर, उनके सर्वस्व का अपहरण करते हुए, गाँव-गलियों को जलाकर, बचे हुओं को (जो मरे नहीं उन्हें) भगाकर उस भील राजा ने अभिमान के साथ यह सिद्ध करना चाहा कि मानो वही यहाँ का राजा है"। ३८ —इसे सुनकर, जनक आग की चिनगारी की तरह उछल कर प्रलयकाल के यम की तरह क्रोध से, नस-नाडियाँ

ओंदे कुठारदिंदडवियं कडिवंतिरे पोड्गारनें-
न्नोंदे भुजासियिं शबरकोटियनिक्कि पिशाच कोटिगा-
नंदमनुंटुमाळ्पेनुळिदानिदनेळिसिदंदु दुर्यशो-
दुंदुभि नादमावरिसदिकुमें कूडे जगंगळेल्लमं ।। ४० ।।
इरियदे बेडिदोंडीयदे- ❋ बरिदे कुलीनतेगे बेसेदु पार्थिव शब्द-
क्केरेवट्टिनिसि धरित्रिगे ❋ पोरेयेनिपं राज नामधारकनल्ते ।।४१।।

एंदु परिच्छेदिसि नुडियें—

निनगे सहायं दशरथ ❋ जननाथं तत्सहायदिं लुब्धक वा-
हिनियं मर्दिसु धुरदोळ् ❋ निनगं तनगं जवंगमिदिरांपवरार् ।।४२।।

एंदु मंत्रिमंडलं बिन्नविसे जनकं दशरथनल्लिगे लेख वाहकरनट्टि समरसन्नद्धनागि बेगमोंदेरडु पयणमं नडेदनित्तळ्—

बारिसि लेखार्थमनव ❋ धारिसि दशरथमहीभुजं पोयिसुवुदुं
भेरिय बंभारवमदु ❋ भैरव रवदंते तीवे गगनोदरमं ।। ४३ ।।

आ वृत्तांतमं तिळिदु—

पुदियें विभूषणांशु नभमं तनुदीधिति बेरदोंदु जों-
न्नद सिरिकार कारिरुळ् मेय्सिरि तप्पदेनल् दिगंतमं

तन गई तो, इस तरह बोला—। ३९ "कुल्हाडी के एक ही प्रहार से जिस तरह जंगल काट दिया जाता है, उसी तरह इस लुटेरे किरात को खड्ग से काटकर भूत-पिशाचों को आहार प्रदान करूँगा। अगर इनके अनाहुतों को रोक न सका तो क्या मैं संसार में अपकीर्ति का पात्र नहीं बनूँगा ? । ४० शत्रुओं को न मारकर, माँगनेवालों को दान न देकर, व्यर्थ ही क्षत्रिय-कुल का नाम लेकर शासन करनेवाला राजा पृथ्वी के लिए भार बनता है। ४१ —इस तरह स्पष्ट कह देने पर, "दशरथ राजा आपका सहायक है। उसकी सहायता से किरात सेना को पराजित करने का निश्चय कीजिए तो आपका, दशरथ का और यमराज का सामना कौन कर सकेगा ?"। ४२ —इस तरह उसके मंत्रियों ने निवेदन किया तो जनक ने दशरथ के पास पत्रवाहकों को भेजकर, स्वयं भी सेना के साथ निकल पड़ा। जनक के सेवकों (चारणों) द्वारा लाये गये पत्र का आशय जानकर दशरथ ने डंका बजवाकर (इसकी सूचना) अपने लोगों (सेना) को दी। डंके की ध्वनि भैरव-गर्जन की तरह आकाश में फैलगई (गूँज उठी)। ४३ —इस समाचार को सुनकर, बलाच्युत रामलक्ष्मण आभरणों से, जिनकी कांति आकाश तक जगमगा रही थी, सुसज्जित हो, सिंह-शिशुओं की भाँति युद्ध-कौतुकी बनकर सभा में प्रवेश करके । ४४

पुदियें बलाच्युतर् तरुणकेसरिवोल् पुगुतंदरिर्वरुं
कदन मदोद्भतर् दशरथक्षितिनाथ सभांतरालमं ।। ४४ ।।

अंतुबंदु तंदेयपादरविंदक्केरगि—
बलदेडगेलदासनदोळ् * बलाच्युतर् नेलसि मेरुनगदुपनगमं
गेलेवंदर्पसरिसें नि- *स्तुल मुक्ताभरण किरण निर्झर नीरं ।।४५।।

अनंतरं—
गेलें निटिलमर्धचंद्रन *विलासमं नोसलोळेसेयें कर सरसिज कु-
ट्मलममृतकळेगे दंतां-* गुलेखें मार्पोळेयें रामचंद्रं नुडिदं ।।४६।।
देवर् दिग्विजय व्यस- * नावष्टंभदोळे नडेयदाटविकरोळा
दीविगृहक्के नडेवुदि- * दावुदो जसमिरूपेंगाने मोगमिक्कुवुदे ।।४७।।

अदरिंदेवरी बेसनेमगे दयें गेय्वुदिवरनास्वादित रण रसर्
किरियेरंदु बगेयवेडदेंतेनें—
किडि किरिदाडोडं सुडदे काननमं तरुणार्कनादोडं
किडिसने तीव्रमप्प तममं हरि बालकनादोडं पड-
ल्वडिसने गंधसिंधुर घटावळियं · किरुगूसेल्केंवे-
देंडरिदरं जवंगे पोसतिक्कने विक्रमशालि लक्ष्मणं ।।४८।।
मातेनो किकिरातं * पूतंतें किरातसेनें पुण्बडें शर सं-
घातद सविदोर्कुं रघु-* जातंगेंटनेय केशवंगिदिरुंटे ।।४९।।

—पिता के चरणकमलों को नमन कर, दशरथ के बायें-दाहिने आसनों पर मेरुपर्वत के शिखरों के सदृश सुशोभित हो, धारण किये हुये मोती के आभरणों की शोभा को चारों ओर बिखेरते हुए विराजमान हुए। ४५ —तत्पश्चात्, उनके ललाट अर्धचंद्र को पराजित कर रहे थे और दंतप्रकाश जुड़े हुए हाथों में प्रतिबिंबित हो रहे थे कि रामचंद्र जी निवेदन करने लगे। ४६ "पिताजी, यह आश्चर्य की बात है कि आप दिग्विजय की योजना न बनाकर, जंगली किरातों का सामना करने के लिए सिद्ध हो रहे हैं। हाथी कभी चींटी को पराजित करने की सोचता है? । ४७ अत: किरातों को मारने की आज्ञा हमें दीजिए, हमें छोटा मत समझिए, क्योंकि—चिनगारी छोटी होने पर क्या सारे जंगल को जला नहीं देती? क्या बालसूर्य अंधकार को मिटा नहीं देता? सिंह-शिशु भी हाथियों के समूह को तितर-बितर नहीं कर देता? हमें छोटा न समझें! शत्रुओं को यह लक्ष्मण यमलोक भेजे बिना थोड़ा ही रहेगा! । ४८ अधिक क्यों? जिस तरह अशोकवृक्ष फूल खिलाता है, वैसे ही अष्टम केशव (कहलानेवाला) लक्ष्मण के बाण के प्रहार से किरात-सेना घायल हो जायगी। ४९ बाण

अंबेरिंगांतरं तत्तरदरिदु भुजागर्वमं बिट्टु बाय्वि-
ट्टि बेयॆंबन्नेगं बेंदगुळ्दु मॆरॆदु बिल्बल्मॆयं नाडनिन्नॆं-
दुं बेडपॊर्दॆदंतागिरॆ नियमिसि बंदप्पॆ नानॆंदु शौर्या-
लंबं रामं रणक्कळ्तिगनॆनॆ बॆसनं तंदॆयं बेडिकॊंडं ।। ५० ।।

अंतु बॆसनं बेडिकॊंडु तंदॆयं बीळ्कॊंडु—

अपरिमितमॆनिप चतुरं- * ग पताकिनि तमगॆ कदनकेळिगॆ नॆरम-
ल्तुपकरणमॆनिप कोदं- * डपाणिगळ् दंडपाणिणॆगॆयॆनॆ तळर्दर् ।।५१।।
गॆललरिदिवरिर्वर दो- * र्बलमं त्रिभुवनदॊळिवर्गॆ नॆरमल्तु चतु-
र्बलमिनितुं नुडि नॆरवॆनॆ * बलाच्युतर् निच्चवयणर्दिदॆय्तंदर् ।।५२।।

अंतॆय्दॆवर्पुदुमवरनुचित प्रतिपत्तियिं मन्निसि—

नॆलं बॆसलॆयादवोल् नॆरॆदलुब्धकव्यूहमं
गॆलल् नॆरॆदॆनीगळॆंब बलगर्वमं ताल्दिदं
बलाच्युतर कूर्टिदं जनकनुग्र बन्यद्विपं
बलंबडॆदुदॆंबिनं विकट दंतकूटंगळिं ।। ५३ ।।

अनंतरमुदात्तराघवनमोघ शरासनादि विविधायुध सनायनागि रथमनेरि लक्ष्मणं कालगापिनॊळ् नॆरॆदुबरॆ जनक कनकरिर्वर् विजय गजमनेरि मुंगोलॊळ् नडॆयॆ नाडगडियनॆय्दि बर्प समयदॊळ्—

के प्रहार को सहनेवालों के अहंभाव को त्यागने के लिए विवश करके, मुँह खोलकर (अपनी ज़बान से) न मार ने का निवेदन करने तक मारकर, संसार के समस्त किरातों को नाश करके लौटूँगा। मुझे आज्ञा दीजिए।" राम ने इस तरह अपने पिता से आज्ञा माँगी। ५० —इस तरह निवेदन कर, पिता से बिदा लेकर, राम-लक्ष्मण ऐसे चल पड़े जैसे अपरिमित चतुरंगिणी सेना का बल उनके सहायक नहीं हैं और कोदंड (धनुष) धारण किए वे (राम-लक्ष्मण) दंडपाणि (यमराज) के समान हैं। ५१ देखनेवाले आश्चर्यचकित होकर कह रहे थे कि इस तरह जनक के धनुर्धारियों को पराजित करना त्रैलोक भर में किसी के लिए भी असाध्य कार्य है। बलाच्युत (राम-लक्ष्मण) नित्यप्रमाण से इस तरह जनक के पास आये। ५२ —आये हुए राम-लक्ष्मण का उचित उपचारों से स्वागत करके, मानो ज़मीन से ही जन्मी असंख्यात किरात-सेना को पराजित करने के लिए, जंगली हाथी ने मानो क्रूर दाढ़ पा ली हो, उपयुक्त सहायता पाने की ख़ुशी से जनक फूल गया। ५३ —तत्पश्चात् उदात्तराघव, अमोघ धनुषबाणों एवं विविध आयुधों से सुसज्जित रथ में चढ़ा और लक्ष्मण रक्षक बनकर पैदल ही चल रहा था कि जनक अनुज कनक के साथ हाथी

बलबारक्कें बिगुर्त सुय्यें फणिराजं सुय्दसुय्लि धरा-
वलयं किल्तु नभक्कें पारिदपुदो पेळ्बिनं भानुमं-
डलमं मंडलिसित्तु तद्बल पदप्रोद्भूत धूलीच्छटा-
वलि कल्पांत कृशानुधूम पटली शंका समुत्पादकं ॥ ५४ ॥

अनंतरं नेलं बेसलेयादंतें बर्पबेडवडें रसेयिनोगेवसुर रपडेयंतेयुं, व्योमतळादिनिळि धूमखेतुगळंतेयुं कडेगालदोळडेवोत्ति सुत्तलुं नेगेवनलन पोगेयंतेयुं, नडेवनंजिन बिबदंतेयुं, कर्बुलिय पिंडिनंतेयुं, सिंगद जंगुळियंतेयुं, जवनेमें वोरिविंडिनंतेयुं, बरसिडिल बळगदंतेयुं, कालायस कालपुरुष परिषज्जनदंतेयुं, काळरक्कसन संतानदंतेयुं, कुलनग महत्तरकुलदंतेयुं, अर्धप्रहारवर्धनदंतेयुं यमघंटासंघातदंतेयुं, मारियमूरियंतेयुं, क्रूरग्रह परिग्रहदंतेयुं, आगुर्वमद्भुतमुमादुदर्लिल-बळियं—

करिगळेरंकेवेट्टुगळ्वोल् नडेतंदुवु वाजिराजिगळ्
तेरेगळ तेरें यंतें कवितंदुवु लुब्धक सैनिकाब्धियोळ्
करिमकरंगळंतें रथकोटिगळासुरमागें बंदुवा
वरिसिदुवावगं गगनमं वृक काक सृगाल केतुगळ् ॥ ५५ ॥

पर सवार होकर सामने (प्रथम पंक्ति में) रहकर, देश की सीमा के पास आ रहा था कि, ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो सेना के भार से शेषनाग निश्वास छोड़ रहा है और उस श्वास का वेग पृथ्वी को मानो उखाड़कर आकाश की ओर उछाल रहा है। सेना के पैरों की धूल को देखकर ऐसा लग रहा था मानो सूर्यमंडल को प्रलय की अग्निज्वाला के धुवें ने घेर लिया हो। ५४ —तत्पश्चात् किरात-सेना, जिसे भूमाता ने ही जना हो और जो पाताल से निकलनेवाली राक्षस-सेना की भाँति या आकाश से उतरनेवाले धूमकेतु की तरह या प्रलयकाल की अग्नि से निकलते हुए धुवें की तरह, या चलता हुआ विषवन की भाँति, बाघों के समूह के सदृश, सिंहझुंड के समान, यम के भैंसों के समूह की तरह घनर्जगना के परिवार की भाँति लोहे की सलाख की तरह, क्रूर राक्षस संतान की तरह, कुलपर्वत शिखरों की तरह, यम के घंटानाद की भाँति, मृत्युसमूह की तरह, क्रूर ग्रह-संघात-सदृश भयानक एवं अद्भुत हुई तो, किरात-सेनसमुद्र में हाथी इस तरह चले आए जैसे पंख पाये हुए पर्वत; घोड़ों के समूह ऐसे फैल गए मानो लहरों की परम्परा हों, असंख्य रथ समुद्र के मछली-समूह के समान दिखाई पड़े तो आकाश में गिद्ध और कौवे एवं सियार उनपर झपटने की ताक में रहे। ५५ युद्धवाद्य की विशिष्ट ध्वनि ने दिक्पालकों को

रुजेंय दनि दिक्पालर * नंजिसें तळ्तोंगेंब कोड काळेंय दनि दि-
क्कुंजरमं बेदरिसे नभ * मं जेवोंडेंयुलिपु सुत्ति मुत्तित्तागळ् ।।५६।।

पलदिवसक्कें तानुं
कलहं दोरेंकोंडुदेंदु केलवर् बिल्लं
गोंलेंगोंत्ति तीवि तेंगेंदें
नलिवरिदरो जवन दूतरेंनिसि किरातर् ।। ५७ ।।

करिघंटानादं हय * खुरपुट निनदं वरूथ चीत्कारं किं-
कर चाप टंकृतं भो- * गरेंविनमादेंत्तिदत्तु वनचर सैन्यं ।। ५८ ।।

मत्तित्त रामचंद्रन बलुमें चंद्रबलमागें—

आनें हयं तेरालें- * बीनाल्कुं सेनें बेडवडेंयोंडेंन पे
रानें हयं तेराळें- * बीनाल्कुंसेनेंयोंडनें तागिदुवागळ् ।। ५९ ।।

पंदलें पारें पुट्टे बिसुनेंत्तर सुट्टरें बाणजालदिं
पंदरविक्किदंतरें नभं मददानेंय वंत शल्कवें-
टुदेंसेंगुळ्कदंतेंसेंयें कूरसि कूरसियोंळ्पळंचें भो-
रेंदोंडनुण्में तोरगिडि तागिदुवंदेंरडुं चतुर्बलं ।। ६० ।।

अंतु काडुवागळ्—
इनितु सिडिलगें काय्पिनितु नंजिन गाळिगें वेगविल्लेंनल्
कनकननाजियोंळ् पिडिदु कट्टिदनळ्कुरें सुत्तिमुत्तिदं

भयभीत करा दिया; रणभेरी की ध्वनि ने दिग्गजों को डरा दिया; धनुषों की टंकार आकाश भर में फैल गई। ५६ किरातों ने यह सोचकर कि युद्ध करने का मौका बहुत सालों के बाद मिला है, धारण किए हुए धनुषों से अपने शत्रुओं का प्राणहरण करके संतुष्ट हुए। ५७ हाथियों का घंटानाद, घोड़ों के खुरों की ध्वनि, रथचक्रों का चीत्कार और वीरों के धनुषों की टंकारों से किरात-सेना की वीरता बढ़ गई। ५८ इधर रामचंद्र का सेना-बल बढ़ गया तो, राम का बलरूपी चतुरंग (हाथी, घोड़ा, रथ, और पैदल) सेना किरात के चतुरंग बल से भिड़ गई। ५९ कटा सिर उड़कर गिरने पर रक्त का तूफ़ान उत्पन्न हुआ; बाण-समूह छप्पर के समान दिखाई पड़ा; मदमाते हाथियों के दाँतों की कांति आकाश में दिखाई देनेवाले उल्का के सदृश थी; खड्ग से खड्ग टकराते पर जिस तरह अग्नि की चिनगारी निकलती है, उसी तरह दोनों चतुरंग बल लड़ने लगे। ६० इस तरह लड़ते समय, कनक को इस फ़ुर्ती से बाँध दिया कि (देखनेवालों को) ऐसा प्रतीत हुआ कि घनगर्जना में इतनी गरमी (उष्णता) नहीं है, तूफ़ान में इतनी तीव्रता (वेग) नहीं है। भयभीत

जनकननेच्चनच्चुडियॆ लक्ष्मणनेरिद तरेनावनां-
पनों यमनंतरंग सुभटोत्तमनं महाजियॊळ् ॥ ६१ ॥
तेरच्चं मुरियॆच्चु बिल्लिनुडियॆच्चश्वंगळं सूतनं
कूरंबि कॆडॆयॆच्चु तां गडॆनगं मारींथ गंडं गडॆं
दारुत्तुं गॆलॆ कादॆ लक्ष्मणनॊळं कंडंतदं लोक सं-
हारंमाळ्प कृतांतनंतॆ रघुजं कॊंडॆं धनुर्दंडमं ॥ ६२ ॥
ऒंदविद चापटंकृति भयंकरमागॆ वरूथभारदिं-
ददिरॆ नॆलं मनः पवनवेगदिनॆय्दि बलं महाबलं
कदन मदाविलं करॆयॆ बल्सरियॆंबिनमंबनंबु न-
ट्टुदॆ नॆरनागॆ कूडॆ गतजीवितमाय्तु किरातसाधनं ॥ ६३ ॥
आगळ्—
गॆळ्दारॆ जनकसेनॆ स- * डिल्दिगियॆ किरातसेनॆ दशरथरामं
बिल्दॆगॆदिसॆ मार्पडॆयॊळ्- * बल्दलॆयर् शबरनायकर् पडलिट्टर् ॥६४॥
आ समयदॊळ् लक्ष्मणं लयसमय समुत्पादन समग्रवीर
ग्रहावेशमनुप्पुकॆय्दु—
पारदॆ कॆदुव बलभं- * पारदॆ नॆखलमनॊदॆ तोळ्वलदिं सं-
हारिसिदं मार्बलमं- * वारिजनाभंगॆ संगरक्किकदिरूंटे ॥ ६५ ॥

जनक के रथ को बाणों से ऐसा मारा कि रथ टूट जाय। लक्ष्मण के रथ को खींच लिया। इस तरह की वीरता यमराज के अंतरंग मित्रों (वीरों) के अलावा और किसमें हो सकती है? । ६१ रथचक्र को चकनाचूर करनेवाले, धनुष को तोड़कर, घोड़ों एवं सारथियों को क्रूरबाणों से बेधकर इस अभिमान से कि मुझ से कौन पुरुष भिड़ सकता है, लक्ष्मण से लड़नेवाले किरात को देखकर रघुराम ने लोक-संहार करनेवाले यम-सा धनुष धारण किया। ६२ धारण किए हुए धनुष की टंकार भयानक हुई; रथ के भार से पृथ्वी काँपने लगी; साथ की सेना मनोवेग (अत्यंत तीव्रता) से आगे बढ़ने लगी और धनुष से छूटे हुए बाण वर्षा की भाँति निरंतर चलने लगे तो किरात सेना का बल निर्जीव-सा हुआ। ६३ तब, जनक-सेना में विजयोत्सव-संचार हुआ और किरात-सेना भयभीत हो भाग खड़ी हुई (पीछे हटी)। श्रीराम ने पुनः धनुष उठा लिया तो किरात-सेना के नायक डरके मारे (त्रस्त हो) गिड़गिड़ाने लगे। ६४ उस समय लक्ष्मण प्रलय-काल के यम-सा भयंकर शौर्य-आवेश की प्रतिमूर्ति बन गया—धनुष-बाण धारण किए बिना, (अपने पक्ष की) सेना की सहायता की अपेक्षा किए बिना, केवल बाहुबल से किरात-सेना का संहार करने लगा।

चिह्नो देह विषे धरेर अहिले जाऊ र हाँक् देउ फेर् ।
वालीलाइ म मारिदिन्छु सहजै लाग्वैन ऐले त बेर् ॥
यस्ता बात् गरिखुप् शपथपनि गर्‍या सुग्रीवको मन् भरी ।
आज्ञा लक्ष्मणलाइ बक्सनुभयो फूल् ल्याउ मालाधरी ॥३६॥
सो माला पहिराइ भाइ तिमिले जल्दी पठाऊ तहाँ ।
हाँक् दीउन् अब वालिलाइ अहिले मार्छू म छोड्छू कहाँ ॥
लक्ष्मण्ले पनि यो हुकूम् सुनि तहाँ माला लगाईदिया ।
त्यो माला पहिरेर सुग्रिव गया वाली जहाँ वीर् थिया॥३७॥
वालीलाइ सुनाइ हाँक् बहुत दी सुग्रीव् बस्याथ्या जसै ।
वालीले पनि शब्द सुग्रिवजिको सून्या र ऊठ्या तसै ॥
आश्चर्यैं मनमा भयो अघि भन्या ऊठ्यो पछी रिस् अनि ।
मुक्का खवाइ लगारियो तपनि फेर् फर्क्यो भगूवा पनि ॥३८॥
वालीले पनि फेर् कछाड् कसि तयार् भै जान लाग्या जसै ।
ताराले त नजाउ यस् बखतमा भन्दै समातिन् तसै ॥
कोही वीर् बलवान् सहाय मिलि पो सुग्रीव आया यहाँ ।
साहायै नभया त येहि घडिमा सुग्रीव फिर्थ्याकहां ॥३९॥

और शत्रु की जगह कहीं मित्र का ही बध न हो जाय इसी डर से मैंने प्रहार करना रोक दिया और बालि बच गया । ३५ अपने शरीर पर कोई चिह्न धारण करके जाओ और फिर से बालि को ललकारो । मैं बालि को सहज ही में मार डालूँगा । आज इस कार्य में कोई विलम्ब नहीं होगा । ऐसा कहकर सुग्रीव को आश्वासन दिया और उसके सामने इस कार्य की शपथ ली । फिर लक्ष्मण से बोले कि एक फूलों की माला बना लो । ३६ यह माला पहनाकर सुग्रीव को वहाँ भेजो । अब बालि को जाकर वह ललकारे । मैं इस बार उसे नहीं छोड़ूँगा, अभी मार डालूँगा । राम की यह आज्ञा सुनकर लक्ष्मण ने सुग्रीव को माला पहना दी और सुग्रीव वह माला धारण किये हुए बालि के पास गया । ३७ बालि को ललकार कर जैसे सुग्रीव बैठा ही था कि बालि भी सुग्रीव के शब्दों को सुनकर उठ बैठा । पहले तो बालि आश्चर्य में डूब गया, लेकिन फिर तुरन्त ही क्रोधित होकर बोला कि मुक्का खाकर और इस प्रकार खदेड़े जाने पर भी वह फिर कैसे लौटकर आया है । ३८ बालि भी कमर कसकर लड़ने के लिए तैयार होने लगा । पर तारा ने उसे 'इस समय न जाओ' ऐसा कहकर रोक लिया । निश्चय ही किसी वीर का सहयोग पाकर ही सुग्रीव यहाँ आया है । यदि कोई सहारा न होता तो सुग्रीव इसी समय

ताराका इ वचन् सुनेर बलवान् वीर् वालि बोल्छन् तहां ।
हे प्यारी ! नडराउ को छ म सरी वीर् आज दोस्रो यहां ॥
सुग्रीव्लाइ सहज् सहाय सहितै मारेर फिर्न्या म छु ।
वीर हूँ हांक दिंदा कसो गरि बसूँ शङ्का नमान्या कछु ॥४०॥
वालीका इ वचन् सुनीकन तहां ताराजिले फेर् पनि ।
भन्छिन् नाथ्! कछु सूनि बक्सनुहवस् क्या भन्दछे यो भनी ॥
बिन्ती गर्छु म हित् कुरा हजुरमा साक्षात् अयोध्यापति ।
श्रीराम्चन्द्र सहाय छन् अब तहां चल्दैन जोर् एक् रती॥४१॥
सुग्रीव्सीत मित्यारि लाइ रघुनाथ् ज्यूले पिछामा लिया ।
वाली मारि म राज्य आज दिउँला भन्न्या वचन् यो दिया ॥
भन्न्या बात् अरुमा हुँदा बनमहाँ सूनेर अङ्गद् यहाँ ।
आई सब् इ कुरा मलाइ अघि नै भन्थ्यो न जाऊ तहाँ॥४२॥
सुग्रीव्सीत विरोध् नराख तिमिले जाऊ र ल्याऊ यहाँ ।
यो राज् सुग्रीव्लाइ देउ अब ता जित् छैन तिम्रो तहाँ ॥
श्रीराम्का दुइ पाउमा पर तिमी गर्नन् प्रभूले दया ।
साँचा हुन् इ कुरा बुझी लिनु हवस् भोग् गर्न इच्छा भया॥४३॥

कैसे लौटता । ३९ तारा के ऐसे वचनों को सुनकर बलवान वीर बालि बोला, हे प्यारी, डरो मत । मेरे समान वीर आज यहाँ और कौन है ? सुग्रीव को उसके सहयोगी-सहित आज मार कर ही मैं आऊँगा । मैं वीर हूँ । शत्रु के ललकारने पर मैं किस प्रकार बैठा रहूँ ? अतः तुम शंका मत करो । ४० बालि के इन बचनों को सुनकर तारा पुनः कहती है— हे नाथ ! यह (दासी) क्या कहती है, कुछ तो सुनने की कृपा करें । मैं (आपके और) अपने हित की बात कहती हूँ— अयोध्यापति साक्षात् श्री रामचन्द्रजी सुग्रीव के सहायक हैं, अतः अब तो कुछ भी बश नहीं चलेगा ! ४१ सुग्रीव के संग मित्रता करके रघुनाथ जी ने बालि का वध कर राज्य दिलाने का बचन दिया है और यह बात वन में औरों के मुँह से सुनकर अंगद ने पहले ही आकर मुझे सूचित किया है, और इसीलिए पहले भी मैंने आपको वहाँ जाने से रोका था । ४२ आप सुग्रीव के साथ शत्रुता न करें । जाइए और उन्हें यहाँ ले आइए आप उनसे जीत नहीं सकते । अब यह राज्य सुग्रीव को सौंप दीजिए । जाकर श्रीराम जी के चरणों में पड़े, वे प्रभु निश्चय ही दया करेंगे । यदि जीवन की इच्छा हो तो इन बातों को सत्य समझने की कृपा करें । ४३ यह विनती

येती बिन्ति गरेर पाउ दुइमा पक्रेर रोइन् जसै ।
तारालाइ बुझाउनाकन तहाँ फेर् वालि बोल्या तसै ॥
हे प्यारी ! नडराउ कत्ति रघुनाथ् साक्षात् रमाका पति ।
नारायण् भनि चिन्दछू म पनि सो नाथ् हुन् जगत्का गति॥४४॥
ताहाँ छन् रघुनाथ् भन्या चरणमा पर्न्याछु चाँडै वहाँ ।
सुग्रीवै छ फगत् भन्या सहजमा मार्न्याछु छाड्छू कहाँ ॥
सुग्रीव् कुन् बलियो छ पाजि भगुवा त्यो लड्न मन्सुव् लिन्या ।
तेस् पाजीकन डाकि आज कसरी यो राज्य मैले दिन्या॥४५॥
तस्मात् शोक् नगरी बसीरहु तिमी जान्छू म ताहाँ भनी ।
लड्नैलाइ कछाड् कसीकन तयार् भै बालि दौडया पनि ॥
बाली सुग्रिव दूइ भाइ रिसले फेर् लड्न लाग्या जसै ।
रूख्को आड गरी तहाँ प्रभुजिले एक्बाण छोड्या तसै ॥४६॥
वाण् बज्यो जब बालिका हृदयमा सर्वाङ्ग बाधा गरी ।
पृथ्वी कम्प गराइ झट् तहिं गिऱ्या वीर् वालि मूर्छा परी ॥
मूर्छा दूइ घडी पऱ्या पछि अलिक् चैतन्य आयो जसै ।
देख्या श्रीरघुनाथलाइ खुशि भै साम्ने बस्याका तसै॥४७॥
भन्छन् श्रीरघुनाथलाइ रघुनाथ् ! तिम्रो बिराम् क्या गऱ्याँ ।
धर्मै छाडि लुकेर आज तिमिले मार्‍यौ म ऐले मऱ्याँ ॥

कर, दोनों पाँव पकड़कर रोती हुई तारा को समझाने के लिए बालि पुनः बोला,— हे प्यारी ! तुम किंचित्मात्र भी भयभीत न हो। साक्षात् रमा के पति जगत्-पति नारायण रघुनाथ को मैं भली प्रकार पहचानता हूँ । ४४ यदि रघुनाथ वहाँ होंगे तो मैं तुरन्त उनके चरणों में पड़ जाऊँगा और यदि केवल सुग्रीव ही अकेला होगा तो उसे नहीं छोड़ूँगा, सहज ही मार डालूँगा। सुग्रीव कौन ऐसा बलवान है, भगोड़ा कहीं का ! मुझसे युद्ध करने की इच्छा करता है ! उस दुष्ट को बुलाकर मैं किस प्रकार यह राज्य सौंपूँ ? ४५ इसलिए शोक न करो ! तुम यहीं बैठी रहो, मैं वहाँ जाता हूँ। यह कहकर लड़ने के लिए लँगोट कसकर तैयार हो बालि दौड़ पड़ा। बालि-सुग्रीव दोनों भाई क्रोधित हो पुनः युद्ध करने लगे। वैसे ही पेड़ की आड़ से प्रभु ने एक बाण छोड़ा। ४६ जैसे ही राम का बाण, बालि के हृदय में, सर्वांग को छेदता हुआ टकराया, पृथ्वी में कम्पन हुआ और बालि मूर्च्छित होकर तुरन्त वहीं गिर पड़ा। दो घड़ी मूर्छित रहने के पश्चात् बालि को जैसे ही थोड़ी चेतना आई, वैसे ही श्रीरघुनाथ को प्रसन्नचित्त सामने बैठा पाया। ४७ बालि ने श्रीरघुनाथ जी से कहा—

यो क्या क्षत्रिय धर्म हो लुकिलुकी वीर् वाँण छोड्छन् कहीं ।
क्षत्री भैकन धर्म छोडि लडन्या एक् आज देख्याँ यहीं॥४८॥

साम्ने भैकन बाण छोडि तिमिले माथ्यौं त खुप् यश थियो ।
सुग्रीव्हो कति साख् म हूँ कति कुसाख् हादैव ! क्या मन् दियो ॥
सीता रावणले हर्‍यो भनि बहुत् सन्ताप मन्ले गरी ।
सुग्रीव्लाइ सहाय ली मकन ता लूकेर चोर् झैं गरी ॥४९॥

मार्‍यौ यो अति चुक् भयो गरुँकसो बाँच्थ्याँ त याहीं बसी ।
रावण्लाइ कुलै समेत् सहजमा झिक्थ्याँ म पाता कसी ॥
लङ्का पूरी समेत् पनी म बलले झिक्थ्याँ सहज्मा यहीं ।
पाजी रावणलाइ मार्न तिमिले क्या जानुपर्थ्यो उहीं ॥५०॥

चोरी मारि लिंदा न यश् हुन गयो मासू न खानू भयो ।
धर्मात्मा तिमि पापि झैं हुन गयौ ज्यान् व्यर्थ मेरो गयो ॥
वालीका इ वचन् सुनेर रघुनाथ् भन्छन् तँ बोल्छस् कति ।
वाली हूँ भनि गर्व गर् त पनि हेर् साँचै तँ होस् दुर्मति ॥५१॥

हे रघुनाथ ! मैंने आपका क्या बिगाड़ा था। धर्म को त्याग कर आज आपने मुझे छिपकर मारा और मैं अब मरा। क्या वीर के लिए, छिप-छिपकर बाण प्रहार करना कोई क्षत्रिय-धर्म है। क्षत्रिय होते हुए भी धर्म को त्यागकर लड़नेवाले को आज ही मैंने देखा। ४८ सामने आकर बाण छोड़कर यदि तुम मुझे मारते तो यश की बात थी। सुग्रीव कितने सज्जन हैं और मैं कितना बुरा हूँ। हा दैव ! यह कैसा हृदय है। सीता को रावण-द्वारा हरण करने पर अत्यन्त सन्तापग्रस्त होकर सुग्रीव से तो यह सहायता ली और मुझे छिपकर चोरों की भाँति मारा। ४९ भयंकर भूल हो गई। क्या करूँ ! यदि बच जाता तो यहीं रहकर रावण को उसके सम्पूर्ण कुल-सहित, सहज ही में बँधवाकर यहाँ प्रस्तुत करता। मैं अपनी शक्ति से सरलतापूर्वक लंकापुरी सहित उसे यहाँ उठा लाता। दुष्ट रावण को मारने के लिए तुम्हें वहाँ जाने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। ५० मरते समय बालि कहता है कि चोरी से यों मारने से कोई लाभ नहीं हुआ। न तो तुम्हें ही यश प्राप्त हुआ न मेरा मांस ही किसी काम आया। तुमने छिपकर मुझे मारा इसलिए मुझे मारकर भी तुम धर्मात्मा नहीं, पापी के समान हो। बालि के इन वचनों को सुनकर रघुनाथ कहते हैं—"चाहे भले ही तुम बलिष्ठ होने का गर्व करते हो फिर भी तुम दुर्मति से युक्त हो। ५१ तुमने किंचित्मात्र भी पाप का भय नहीं

पाप्को डर् रतिभर् नराखि तइँले खुश् भै बुहारी हरिस् ।
सोही पाप् अहिले प्रकट् हुन गयो तेस् पापले पो मरिस् ।।
धर्म स्थापन गर्नलाइ त यहाँ औतार मैले लियाँ ।
धर्मैं जानि अधर्म ठानि अहिले तैंलाइ मारीदियाँ ।।५२।।

श्रीराम्का इ वचन् सुनी प्रभु भनी जानी चरण्मा पऱ्या ।
बानर् हूँ रघुनाथ् ! क्षमा गर भनी हात् जोरि बिन्ती गऱ्या ।।
नामोच्चारणले फगत् सहजमा संसार सागर् तरी ।
स्वामित् ! जान्छ हजूरमा,अब भन्या मैले त दर्शन् गरी ।।५३।।

पायाँ मर्न म भाग्यको कति बखान् मेरो म ऐले गरूँ ।
को पाऊँछ हजूरलाइ भगवान् ! मर्न्या बखत्मा अरू ।।
मेरो ता गति यै थियो मिलिगयो जान्छू परम्धाम् म ता ।
अङ्गद्माथि दया रहोस् हजुरको हाजिर् छ सेवक् उता।।५४।।

मेरा छातिमहाँ छ बाण् हजुरको यो खैंचि छोईदिया ।
शीतल् देह हुने थियो सहजमा प्राण आज जान्या थिया ।।
बालीका इ वचन् सुनी प्रभुजिले वाण् झीकि छूँदा भया ।
ठाकुर्का अगि देह छाडि खुशि भै बाली परम्धाम् गया।।५५।।

किया और प्रसन्नतापूर्वक अपनी बहू का हरण किया। तेरा वही पाप अब प्रगट हुआ है और इस प्रकार मृत्यु को प्राप्त हो रहा है। धर्म-स्थापना के लिए ही मैंने यहाँ अवतार लिया है और धर्म-अधर्म दोनों का विचार करके ही मैंने तुम्हारा इस समय वध किया है। ५२ श्रीराम के इन वचनों को सुनकर, उन्हें प्रभु जानकर बालि तुरन्त ही उनके चरणों में गिर पड़ा और बोला, 'हे रघुनाथ ! मैं वानर हूँ' यह कहते हुए हाथ जोड़कर क्षमा-याचना करने लगा। प्राणी केवल आपके नामोच्चारण से सहज ही में संसार-सागर तर जाता है। फिर मैंने तो अन्त समय में आपके दर्शन कर लिए हैं, अतः हे स्वामी अब मैं बैकुण्ठलोक को जाता हूँ। ५३ हे भगवन् ! मैं कहाँ तक आपकी सराहना करूँ। मुझे आपके हाथों मरने का अवसर प्राप्त हुआ। मृत्यु के समय आपको कौन पा सकता है। मेरी तो गति यही थी कि मैं आपको न पाता। लेकिन मैंने तो आपको पा लिया। अब मैं परमधाम को जाता हूँ। अंगद के ऊपर आपकी कृपा दृष्टि बनी रहे, वह आपके सेवक के रूप में तत्पर है। ५४ मेरे वक्ष पर आपके बाण हैं, आपके करकमलों से इन्हें बाहर खींचकर स्पर्श कर देने से मेरी देह शीतल हो जायगी और प्राण सहज में निकल जायेंगे।

वालीका सँगमा थिया जति तहाँ बानर् ति भागी गया ।
ताराजी सित गै वहाँ सब हवाल् विस्तार गर्दा भया ॥
राम्‌जीले लुकि बाण छोडि सहजै वाली त मारीदिया ।
सुग्रीव् मंत्रि समेत् बहुत् खुशि भई राम्‌कै हजूर्‌मा थिया॥५६॥
यो राज् अङ्गदलाइ बक्सनुहवस् ढोका शहर्‌को थुनी ।
बस्छौं जल्दि हुकूम् हवस् हजुरको क्या हुन्छ धेरै गुनी ॥
येती बिन्ति गऱ्या र वानरहरू जल्दी तयारी भया ।
हूकूम् माफिक काम गर्न भनि सब् वानर् खडा भै रह्या॥५७॥
वालीको परलोक् भयो भनि खबर् सूनिन् र तारा रुँ दै ।
हा नाथ् ! आज कता गयौ भनि बहुत् बिह्वल् निरन्तर् हुँदै ॥
क्या गर्छू अब पुत्र राज्य धनले भन्दै ति तारा जहाँ ।
वालीको परलोक् भयो उहि जगा सोधेर पौंचिन् तहाँ ॥५८॥
वालीको दुइ पाउ पक्रि बहुतै रूँदी विलाप् खुप् गरी ।
भन्छिन् श्रीरघुनाथलाइ रघुनाथ् फेर् वाण ऐले धरी ॥
मारीदेउ मलाइ जान्छु म पनी मेरा पतीका सँगै ।
खोज्छन् स्वर्गविषे मलाइ पतिले काहाँ म बस्छू नगै ॥५९॥

बालि के इन बचनों को सुनकर प्रभु प्रसन्न होकर बाण निकालकर बालि का शरीर छू देते हैं, जिससे बालि प्रभु के समक्ष प्रसन्नतापूर्वक देह त्याग कर परम-धाम चला गया । ५५ बालि के मरने के बाद वहाँ (बालि के पक्ष के) जितने वानर थे सब भाग गए और तारा के पास जाकर सारा हाल कह सुनाया कि राम ने (किस प्रकार) छिपकर बाण-प्रहार करके बालि को मार डाला । सुग्रीव अपने मंत्री-सहित अत्यन्त हर्षित हो वहीं श्रीराम के पास बैठे हैं । ५६ हम लोग शहर के द्वार को बन्द कर देंगे । आप यह राज्य अंगद को सौंपने की कृपा करें । शीघ्र ही आदेश देने की कृपा करें, अब अधिक विचार करने से क्या होगा । इस प्रकार विनती करके सब वानर तत्पर हो गए; आदेशानुसार सब वानर कार्य करने को खड़े हो गए । ५७ बालि के देहावसान होने की सूचना सुनकर तारा रोती हुई अत्यन्त विह्वल हो विलाप करती है—"हे नाथ ! आज आप कहाँ चले गये ? मैं अब पुत्र-धनादि लेकर क्या करूँगी ।" यह कहती हुई तारा उसी स्थान पर पहुँची जहाँ बालि का देहावसान हुआ था । ५८ बालि के दोनों चरणों को पकड़ कर रोती और अत्यन्त विलाप करती हुई तारा कहती है—"हे रघुनाथ, मुझे भी बाण-प्रहार कर मार डालें । मैं भी अपने पति के साथ जाऊँगी । मेरे पति मुझे स्वर्ग में ढूँढेंगे, अतः मैं

पत्नी सीत वियोग् हुँदा यति विलाप् हूँदा रह्याछन् भनी ।
मालुम् सब् त तहीं छ फेर् म भनुँक्या पर्दैन भन्नू पनि ॥
पत्नीदान् गरि पुण्य हुन्छ जति सो मिल्न्याछ पुण्यै पनि ।
तस्मात् आज अवश्य हान शरले जावस् पतीथ्यैं भनी ॥
येती बात् अघि रामसीत गरि फेर् सुग्रीव् जिलाई पनि ।
भन्छिन् लौ गर राज्य आज खुशिले मित्ले दियाको भनी ॥
ताराका इ वचन् सुनीकन बहुत् आयो प्रभूमा दया ।
तारालाइ बुझाउनाकन तहाँ एक तत्त्व भन्दा भया॥६१॥

हे ताराजि विचार् नराखि तिमिले शोकै कती गर्दछ्चौ ।
यो मेरो पति हो भनेर नबुझी व्यर्थैं शरीर् हर्दछ्चौ ॥
जीवै हो पति भन्दछ्चौ पनि भन्या मर्दैन जीव् ता कहीं ।
देहै हो पति भन्दछ्चौ त किन शोक् गछ्चौं छ ऊ ता यहीं॥६२॥

श्रीराम्का इ वचन् सुनीकन तहाँ ताराजि चुप् भै रहिन् ।
जुन् सन्देह पऱ्यो वहाँ मनमहाँ सो मात्र सोद्धी भइन् ॥
हेनाथ् ! मर्जि भयो सुन्याँ सब कुरा बुझ्दैनि मन् तैपनि ।
सन्देहै मनमा रह्यो मकन ता कोगर्छ यो भोग् भनी ॥६३॥

कैसे यहाँ रह सकती हूँ ? ५९ पत्नी-वियोग में कितनी पीड़ा होती है, यह सब आपको ज्ञात है। अतः इस विषय में और मैं आपको क्या कहूँ। पत्नीदान करने पर जो कुछ पुण्य प्राप्त होता है वही सब पुण्य आपको प्राप्त होगा। इसीलिए आप अब अवश्य ही बाण-प्रहार करें, जिससे मैं पति के पास शीघ्र पहुँच जाऊँ।" ६० राम से इतनी बात कहने के बाद तारा पुनः सुग्रीव से बोली--"आज प्रसन्न होकर अपने मित्र के दिए हुए राज्य का भोग कर लो।" तारा के इन वचनों को सुनकर प्रभु को अत्यन्त दया आयी अतः तारा को समझाने के लिए एक तत्त्व कह सुनाया। ६१ "तारा ! तुम बिना विचारे ही शोक करती हो। इसे अपना पति कहकर व्यर्थ ही अपने शरीर को कष्ट देती हो। यदि आत्मा को ही पति कहती हो तो आत्मा कभी नहीं मरती और यदि शरीर ही को पति कहती हो तो व्यर्थ शोक क्यों करती हो, वह तो यहीं पड़ा है।" ६२ श्रीरामजी के इन वचनों को सुनकर तारा चुप हो गई। जिस बात का संदेह हुआ केवल वही बात पूछी--"हे नाथ! आपने सब कुछ सुनाया फिर भी मन नहीं मानता है। यदि मेरे मन में संदेह बना रहा तो यह भोग कौन करेगा। ६३ यदि मैं यह कहूँ कि शरीर ही

देहै गर्दछ भोग् भनूँ पनि भन्या जड् पो छयो देह ता।
ईश्वर् हो उहि गर्छ भोग् भनुँ भन्या सक्तीनँ भन्नै म ता॥
साह्लै मोह भयाँ म ता हजुरको एकै वचन्ले गरी।
माया राखि बुझाइ बक्सनु हवस् अज्ञान मेरो हरी॥६४॥
ताराका इ वचन् सुनीकन बहुत माया मनैमा धरी।
तत्त्वज्ञान् सब ताहिं बक्सनुभयो खोलेर विस्तार् गरी॥
हे ताराजि! नरोउ आज मनले संसार् छ झूटो भनी।
झूटो कुन् रितले छ यो भनि भन्या भन्छू म विस्तार् पनि॥६५॥
म ता नित्यै पो हूँ यहिं शरिरमा लागि म गयाँ।
शरीर् मर्दा आफै मइँ मरिगयाँ झैं पनि भयाँ॥
अहो! अज्ञान् मेरो भनिकन जहाँतक् मनमहाँ।
लिंदैनन् ताहींतक् फजिति पनि छन् यै जनमहां॥६६॥
स्फटिक् जस्तो जीव् हो शरिरहरु लाहा बुझिलिनू।
स्फटिक् लाहाका सङ् धरिकन त दृष्टान्त छ दिनू॥
लाहाका सङ् बस्ता स्फटिक म छु लाल् भन्छ जसरी।
शरीर् मर्दा मर्छू म पनि भनि जीव् भन्छ तसरी॥६७॥
स्फटिक्ले रातो छू भनिकन सुहावस् त उ पनि।
सुहावस् यस् जीव्ले शरिर सँगमा मर्छु म भनी॥

भोग करता है तो शरीर तो जड़ (निश्चल) है। मैं यह भी नहीं कह सकती कि जो आत्मा है वही भोग करता है। मैं अत्यधिक मोह में डूबी हूँ, अब आप कृपा करके अपने वचनों द्वारा मुझे समझाकर मेरी अज्ञानता को हरण करने का कष्ट करें।" ६४ तारा के इन वचनों को सुनकर राम के मन में करुणा भर आई और उन्होंने सारा तत्त्व-ज्ञान विस्तार-पूर्वक बताने की कृपा की। उन्होंने कहा कि तारा! अपने मन से इस संसार को झूठा समझो और रोओ मत। किस प्रकार यह झूठा है वह मैं तुम्हें विस्तार-पूर्वक बताता हूँ। ६५ मैं तो वर्तमान हूँ। यदि किसी के शरीर में प्रवेश करता हूँ तो शरीर मृत होने पर मैं भी मरा सा लगता हूँ और जब तक 'मैं शरीर नहीं, आत्मा हूँ' मन में ऐसा अनुभव नहीं होता, तब तक इस संसार में कष्ट विद्यमान रहता है। ६६ यह समझ लेना कि जीव स्फटिक के समान है और शरीर लाख के समान है। स्फटिक को लाख के संग रखकर दृष्टांत दिया जाता है। जिस प्रकार लाख के संग स्फटिक अपने को लाल होने का दावा करता है उसी भाँति शरीर के मरने पर जीव भी मृत कहा जाता है। ६७ स्फटिक के कहने से ही वह लाल नहीं होता,

दिवान वंन्य संन्य वौंगुन्य तति पोशि बाग़न ।
छ सीता रामुच्रंन्दुरस पोश लागन ।।
दौहि अकि गंयि तमिस निशि पथ हवावा ।
वुछन सीतायि निशि गव पांदह कावा ।। १० ।।

ह्युतुस तंम्य रामुच्रन्दुरन दरबि हुन्द तीर ।
च्रलिथ गव वुनि छस च्रलुनस कुनुय ज़ीर ।।
समय छु क्रूठ क्रेंछर आसि च्रालुन ।
ति आस्यस राखिसन हुन्द ब्योल गालुन ।।
कौरुख येंलि साविदान समसार ह्न हन ।
बौरुख आनंद येंलि ड्यूठुक डंडक वन ।।
तपीश्वर रेंश्य स्यठाह तति आंस्य आसन ।
तिमय यिम सारिनुय खुर आंस्य कासन ।। १४ ।।

श्रपनखि सज़ा द्युन

रेंशव वौंन तति तिमव येंलि आशरम थौंव ।
च्रयतस थाव प्रोन पथकुन बोज़ वौंन्य नौंव ।।

जिधर-जिधर से वे गुज़रते, उधर-उधर फूलों के बाग़ खिल जाते तथा उनमें विपुल सुगंध (राशि) भर जाती । जहाँ पर (बैठकर) कुछ खाते वहाँ पर झरने फूट पड़ते । (इस प्रकार) वे फूलों के इन बाग़ों में बिहार करते व घूमते । एक दिन सीताजी रामचन्द्रजी को फूल लगा रही थीं कि वह कुछ पीछे हटीं और उन्होंने (रामचन्द्रजी ने) देखा कि सीता के सामने एक कौवा पैदा हो गया है । १० तब रामचन्द्रजी ने कुश का एक तीर उसपर चलाया और वह (कौआ) उड़ चला, तथा उड़ता ही गया । कुछ अशुभ जानकर रामचन्द्रजी कहने लगे--आनेवाला समय बड़ा ही कठिन होगा और हमें वह सब सहना होगा । राक्षसों का बीज समाप्त करना होगा । इस प्रकार संसार को रहस्यमय लीला-क्षेत्र समझ कर वे आगे बढ़ते गए । वे उस समय बहुत आनंदित हुए, जब उन्होंने दण्डक वन देखा । वहाँ पर ऐसे अनेक तपीश्वर, ऋषि आदि थे जो सभी प्रकार की गुत्थियों को सुलझाने वाले (तत्वज्ञानी) थे । १४

शूर्पणखा को सज़ा देना

तब ऋषियों के कहने पर उन्होंने वहाँ अपना आश्रम बनाया । (इसी के साथ) अब तक जो हो चुका उसे याद कर और नया (आगे की

डंडक वन मंज़ रॅटुख आखुर बिहिन्य जाये ।
दोह् अकि रॉंटसा लारन तोतुय आये ॥
वर्‌यम ना रामुजुव रुत्य वॅह् करान आस ।
अमा सीतायि कुन वुछ्य वुछ्य मरान आस ॥
करिथ रुत्य वॅह् वुछिथ सीता रोटुन ग़म ।
दोपुन मॅच़रिथ निमस बरथा दिमस ब्रम ॥
दोपुस तॅम्य रामच़न्दुरन रछ पनुन दिल ।
दोयुम नॅथुर करुन असि निश छु मुश्किल ॥ ५ ॥
दोपुस तॅम्य रामच़न्दुरन लॅखिमनस वन ।
योहय बोज़ी योहय थावी कथन कन ॥
वनुनि लॅज्य रामच़न्दुरस वारुह् वाराह् ।
महाराजा च़ुह् कर कॅंह् म्योन चाराह् ॥
दोपुस तॅम्य गछ यिथय पॉठ्य हाल बावुस ।
तगी युथ त्युथ लोचर च़ुह् हावुस ॥
वरी योदवय च़े लॅखिमन तस छु आसान ।
बनीये यछ च़ुह् छख अदुह् रछ पनुन पान ॥
ति यां बूज़ लॅखिमनन तां कोर नमस्कार ।
दोपुन बायिस अॅमिस कर यियि में सुत्य वार ॥ १० ॥

कथा) भी सुन । दण्डकवन में उन्होंने आख़िर अपने रहने का एक स्थान चुन लिया । अनन्तर, एक दिन वहाँ पर एक राक्षसी आ निकली । रामचन्द्रजी उसे वरण करें—इसके लिए वह अनेक तरह के उपाय करने लगी । मगर सीता को देख-देखकर वह (भीतर-ही-भीतर) मरने लग गई । सुन्दर रूप धारणकर तथा सीता को ग़मभरी दृष्टि से देखकर उसने कहा कि मैं इस (सीता) को भ्रमित कर पति की याद से विमुख कर दूँगी । तब रामचन्द्रजी ने कहा—जाकर अपने दिल की रक्षा कर । मेरा दूसरा विवाह करना मुश्किल है । ५ रामचन्द्रजी ने (पुनः) कहा—जाकर लक्ष्मण से बात कर । वही तेरी सुनेगा और तेरी बातों पर कान धरेगा । वह रामचन्द्रजी से पुनः धीरे-धीरे अपना हाल कहने लगी—हे महाराज ! मेरा कुछ चारा कीजिए । उन्होंने कहा—जाकर ऐसे ही (लक्ष्मण से) अपना हाल कह और जितना हो सके उतना उसे रिझा । यदि लक्ष्मण तुझे वरण करना चाहे तो यह उसके लिए आसान है और यदि वह समझ गया कि तू यक्षिणी है तब फिर तेरी ख़ैर नहीं है ।

दोंपुस तंम्य लंखिमनन छुय तंबु लावन ।
अपज़ छय कथ यि छुय वथ रावुरावन ।।
अमिस परवाह छु नु योंदवय वरी च्रे ।
अखा छस योंद तंमिस प्यठ कुन वरी च्रे ।।
च्रुह छुख राज़ा परी योंदवय च्रुह वरहन ।
अखा छय योंद सों त्रांविथ ब्याख करहन ।।
ति यां तमि बूज़ वाराह गंयि क्रूदी ।
तसंदि क्रूदु सुतिन दयत मूदी ।।
दोंपुन लंखिमन जुवस कुन बोज़ म्योनुय ।
च्रुह नय बोज़ख बु लागय ज़ूनि ग्रहनुय ।। १५ ।।
त्युतुय बूज़िथ सों रांटस आयि दरजोश ।
दोंपुन लंखिमन जुवस ख़ामोश ख़ामोश ।।
म फिर गर्दन दपान छुय ज़्युठ बरादर ।
च्रे योंदवय बेख़ दोलत छय में सुत्य कर ।।
परी छस कंह नु रुह रांटस न छस पंन्ज़ ।
ग़नीमत ज़ान आवुय दारि किन्य अंन्ज़ ।।

यह बात जैसे ही लक्ष्मण ने सुनी वैसे ही उसने नमस्कार करते हुए भाई से कहा कि इसका मेरे साथ भला कैसे निबाह हो सकता है । १० तब उसने (लक्ष्मण ने उस राक्षसी से) कहा--तुझे (रामचन्द्रजी) भरमा रहे हैं । ऐसा कदापि नहीं हो सकता, वे तो तुझे पथ-भ्रमित कर रहे हैं । (तुझे मेरे पास भेजने में तेरा मज़ाक उड़ाने, का भाव निहित है) उनको कोई परवाह नहीं है । वे चाहें तो तुझे वरण कर सकते हैं । उनके पहले से ही (पत्नी) है और तुम दूसरी हो जाओगी । इसके बाद लक्ष्मण ने उस राक्षसी पर व्यंग्य करते हुए रामचन्द्रजी से कहा—आप राजा हैं, इस परी को आप चाहें तो वरण कर सकते हैं । एक (पत्नी) आपके पास पहले से ही है, उसे त्यागकर दूसरी कर सकते हैं । ऐसे (व्यंग्यपूर्ण) वचन सुनकर वह क्रुद्ध हो उठी और उसके इस क्रोध से (कितने ही) दैत्य मर गए । उसने लक्ष्मणजी से कहा--मेरी बात मान । यदि नहीं मानता है तो मैं चन्द्रमा (सीता) को ग्रहण लगाऊँगी । १५ इतना कहते ही वह राक्षसी जोश में आगई और लक्ष्मणजी से बोली, ख़ामोश ! ख़ामोश ! अब तू अपनी गर्दन न फेर (इन्कार न कर) । ऐसा तेरे बड़े बिरादर भी कहते हैं । तुझे अगर दौलत की अपेक्षा है तो मेरे साथ (विवाह) कर । मैं परी हूँ, राक्षसी या बन्दरी नहीं । तू यह ग़नीमत जान कि तेरी खिड़की पर स्वयं

खटन छि मोख कथन छि अथु दारन ।
सिरी चन्दुरमु तिमन राज़ह कोमारन ।।
वनुनि लंज्य श्रुपुनख यथ क्याह छु चारुह ।
बु ज़ाजिनस रामुचन्दुरन लोलु नारुह ।। २० ।।
मुरुनि लंज्य अथु योद बोज़्यम सु रावुन ।
तिथय दज़ि दादि सुत्य हेयि प्रान त्रावुन ।।
वोन्दस यी गोस वोन्य सीता बु मारन ।
सो मारिथ आसुनम यिम पतु लारन ।।
वुछन येलि रामुचन्दुरन क्याह गयस राये ।
चटुनस नस्त चंज बारव दिवान द्राये ।।
वोनुन वति खर द्यवस लारन योदस आव ।
वुछिथ बुथ रामुचन्दुरुन ज़न नु ज़ायाव ।। २४ ।।

सीताहरण

दपन बोन ओस तस ज़्युठ बोय रावुन ।
चलिथ गयि तस ह्योतुन अहवाल बावुन ।।

हंस आकर बैठ गया है (बिना परिश्रम के तुझे सुफल मिल रहा है) । वह अपने असली मुख को छुपाए हुए थी और बातों में उन दोनों राजकुमारों को उलझा रही थी । शूर्पणखा (मन में) कहने लगी--अब इसमें कोई चारा नहीं रहा, मुझे तो रामचन्द्रजी की लगी ने जला डाला है । २० वह हाथ मलने लगी (और सोचने लगी) कि यदि रावण को (मेरी असफलता का) पता चल जाय तो पीड़ा के कारण प्राण त्याग देगा । उसने दिल में कहा--मुझे अब सीता को मार देना चाहिए । उसे मार देने के बाद ये दोनों मेरे पीछे-पीछे चल देंगे । जब रामचन्द्रजी को यह ज्ञात हो गया कि उसके दिल में क्या राय (कुटिलता) छिपी हुई है, तब उन्होंने (तुरन्त) उसकी नाक काट डाली और वह वहाँ से फ़र्याद करती हुई भाग खड़ी हुई । रास्ते में उसने खर दैत्य से (यह समाचार) कहा । वह तत्काल युद्ध करने को आ गया । मगर रामचन्द्रजी का मुख देखकर उसकी ऐसी हालत हो गई जैसे वह जन्मा ही न हो । २४

सीता हरण

कहते हैं नीचे (पाताल में) उसका (शूर्पणखा का) एक बड़ा भाई रावण रहता था, वह भागकर उसके पास चली गई और उसके सामने अपना

वनुनि लंज्य श्रुपुनख तस रावुनस यी ।
मे नय फ़रियाद बोज़ख पाप माछी ।।
शोंगिथ आसुस मनूशा गाल दिनि आम ।
च्रलिथ आयस दोपुम लगि रावुनस पाम ।।
खरस बोवुम सु तम्य पोवुम ब यक तीर ।
लंजिस कमि वावुह वोन्य कस बावुह यिम सीर ।।
दपन छिस नाव सारी रामु अवतार ।
वनस मंज़ क्याह करान असरन छु समहार ।। ५ ।।

महा सोन्दर वनय तस क्याह छि रूपीठ ।
सोरुगु लूकस अन्दर यन्दुरन तिमा डीठ ।।
ति बूज़िथ रावुनस सापनुन बदल रंग ।
खंनिन तम्य गंग गयि तस तथ्य अन्दर ज़ंग ।।
योहय ओसुस मरुनुक नाम व पैग़ाम ।
तिथय तसुन्दिस मंद्यानस गोंट सपुन शाम ।।
वंथिथ आकाश्य गव छोरुन सु मारिंज ।
ख्योमुत यम्य रामुच्रन्दुरुन तीरि हारिंज ।।
जहलु सुत्य आव येलि मारिंज छोरुन ।
ज़िन्दय छा रामुच्रन्दुरन मा सु मोरुन ।। १० ।।

अहवाल कहा। शूर्पणखा यह कहने लगी कि यदि मेरी फ़र्याद न सुनोगे तो तुम्हें पाप लगेगा। मैं सोई हुई थी कि एक मनुष्य आकर मुझे गाली देने लगा। तब मैं यह जानकर वहाँ से भाग आई कि कहीं रावण (की इज़्ज़त) को आँच न आये। खर से अपना (दुखड़ा) कहा, मगर उसे उस (मानव) ने एक ही तीर में धराशायी कर दिया। मुझ पर यह क्या आन बनी है और अब यह (दुखड़ा) किससे कहूँ। सभी उसका नाम रामावतार बताते हैं। वन में वह असुरों का क्या संहार कर रहा है! ५ क्या कहूँ, वह कितना सुन्दर और तेजस्वी है—स्वर्गलोक के इन्द्र को भी इतना (सुन्दर व तेजस्वी) नहीं देखा। यह सुनकर रावण का रंग बदल गया। उसने (राम-लक्ष्मण के लिए) गंगा (नदी) खोदनी चाही, मगर उसमें उसकी स्वयं की टाँगें फँस गईं। यही उसकी मृत्यु का पैग़ाम था और उसका मध्याह्न काली शाम में परिवर्तित हो गया। वह आकाश में उड़ गया और मारीच को ढूँढने लगा जिसने रामचन्द्रजी का तीर खाया था। क्रोध से भरकर वह मारीच के पास पहुँचा और यह देखने लगा कि

वुछुन गोमुत सु राख्यस बोज़ निश दूर ।
यंगर नारस गोमुत सूरस सुतिन सूर ।।
शम्योमुत ओस तस ख़फ़ख़ानु द्रामुत ।
कफालस यस सु निशतर ज़ोरह आमुत ।।
अमा येलि आस रावुन बेयि लोगुस वाव ।
च्यतस तेलि येलि तमिस पतु बास्य रथ द्राव ।।
वुछुन तम्य ओस ह्योतुमुत ख़रुकु बरतन ।
ति डीशिथ रावुनस दंज़ नारह हन हन ।।
दोपुन तस कुन च्रह वनतम क्याह गोवुय हाल ।
शिकस्त आयी यि कमि आफ़ंच्र वोलुय नाल ।। १५ ।।

वोलुथ क्यथु जन्दुह क्याह गोय ताज त्रोवुथ ।
च्रे केंह ओसुय नु रावुन मन्दु छोवुथ ।।
दोपुस तम्य रामुचंन्दुरुन तीर यनु आम ।
तनु प्यठु लूब प्रचथ चीज़ुक मनस द्राम ।।
दोपुस तम्य रावुनन वोन्य कर म्यथुरु कार ।
मे बोज़ुम यी तु ह्योतनम जिगरस नार ।।
दोपुस तम्य रावुनन यथ क्याह छु तदबीर ।
कोरुस बो रामुचंन्दुरन सख़्त दिलगीर ।।

क्या अभी तक वह ज़िन्दा है, रामचन्द्रजी के तीर से मर तो नहीं गया ? १० (रावण ने) देखा कि वह तो अब राक्षसी बुद्धि से दूर हो चुका है और उसकी तामसी वृत्ति की राख बन गई है। उसका अंग-अंग शिथिल पड़ गया है और उसके कपाल पर (रामचन्द्रजी का) वह नश्तर (तीर) ज़ोरों से लगा है। जब उसने (मारीच ने) रावण को अपने पास देखा तो उसके ज़ख़्म और हरे हो गए और उसको पुरानी सारी घटनाएँ याद हो आईं। वह सब कुछ त्यागकर विरक्त हो गया है— ऐसा देखकर रावण का अंग-अंग जल उठा। उसने उससे कहा—यह तुमने अपना क्या हाल बना रखा है ? यह किस दरिद्रता व आफ़त ने तुझे आघेरा है ? १५ यह तूने चिथड़े क्या पहन रखे हैं ? तुझे क्या ऐसे ही रावण का नाम लजाना था ? तब उस (मारीच) ने कहा कि जब से रामचन्द्रजी का तीर मुझे लगा है तब से मेरे मन से सारी चीज़ों का लोभ निकल गया है। रावण ने कहा—उठो, अब अपने मित्र का एक कार्य करो। मेरी विनती सुनो, मेरा जिगर जल रहा है। रावण ने कहा—

कौरुन यौंद वारयाह् खर दीव मोरुन ।
रंटुन तंम्य श्रुपुनख तस सीनु छोरुन ।। २० ।।

दौंयिम सौंन्दरा छ तंमिस बागि आमुत्र ।
ख़बर छा पांपिस कस आसि ज़ामुत्र ।।
तिथिस व्यरांगिस दित्र यिछ् परी कंम्य ।
गंंडिथ कंन्य कौंलि तमि निशि कोनु छुन्य तंम्य ।।
तिछुय प्रज़लन छि यिछ् प्रज़ुलन त्रोंदुश ज़ून ।
बु कस वनु वौंन्य छौंकस प्योमुत मे छुम नून ।।
सरोक़द ख़ौंश यिवान ज़ेबा यंम्बुर ज़ल ।
कनव बूज़ुम अमा वनि छम अंछिन तल ।।
तिछ् छस तन वनन युथ छु हियि पोश ।
कंड्यन प्यठ जाय शूब्या तस त्रुह् कर होश ।। २५ ।।

छि कोसम पोश हि तंमि संुद्य अथु खोर ।
छि मा तिम त्रे त्रुह् गंंज़रावुक छि न त्रोर ।।
दौंपुस तंम्य तोरु फीरिथ छुम मे मोलूम ।
मे छुम मोलूम तेंलि येंलि ओस मोसूम ।।

अब इसकी कोई तदबीर निकालो। मुझे रामचन्द्र ने सख़्त दिलगीर (उदास) कर रखा है। उसने खर दैत्य से युद्ध कर उसे मार डाला तथा शूर्पणखा को पकड़कर उसका सीना (वक्षस्थल) टटोलना चाहा। २० सुनते हैं, उसके संग कोई सुन्दरी है। न जाने किस पापी की वह संतान है। उस वैरागी को ऐसी परी न जाने किस (मूर्ख) ने सौंप दी है। इससे तो ठीक था कि उसे पत्थर बाँधकर नदी में फेंक दिया जाता। (सुनते हैं) वह ऐसे चमकती है जैसे चौदहवीं का चाँद चमकता है। अब मैं अधिक और क्या कहूँ। मेरे ज़ख़्मों पर तो (उसके रूप का वर्णन करने से) नमक छिड़क जाता है। सरो-क़द वाली वह नरगिस की तरह आकर्षक और ख़ूबसूरत है। उसके बारे में केवल सुना ही है, मगर लगता है जैसे सामने हो। कहते हैं उसका तन चमेली की तरह है। भला काँटों पर उसका रहना शोभा थोड़े ही देता है—तू ज़रा होशकर (इस पर विचार कर)। २५ उसके हाथ-पैर कुसुमों की तरह (कोमल) हैं। वे सिर्फ़ तीन हैं, उनको चार न गिन (यानी उनसे भिड़ना मुश्किल नहीं है)। तब उसने (मारीच ने) कहा—मुझे (सब) मालूम है। मुझे तभी से मालूम है जब वे मासूम (छोटे) थे। खेलते-खेलते उन्होंने मुझे ऐसा तीर मारा था जिसकी बात

गिन्दन द्युतनम त्युथुय तीरा छ क्याह् कथ ।
अंछिव वुछ वुनि ज़ख़मन छुम पकन रथ ।।
ज़ख़ुम हाविन पंथरि प्यठ पान त्रोवुन ।
वोंदुन वाराह् तमिस अह्वाल बोवुन ।।
पज़्या बरबादवुन्य बेयि ज़िन्दुगानी ।
सु आमुत आसि वुनिक्यन दर जवानी ।। ३० ।।
दोपुस तम्य रावुनन फीरिथ व तदबीर ।
तगी ये केंह मु कर वुन्यकेन च्रु तक़सीर ।।
च्रे वोनमय सुत्य युन वोथ शा निमोनख ।
मुफ़्त नय श्रुपुनख मावज़ु दिमोनख ।।
च्रु छुख ग़मख़्वार कर तम चारुह् साज़ी ।
यितम सुतिन च्रलोनख ह्यथ ब बाज़ी ।।
दोपुस तम्य तोरु कम इफ़लास आयी ।
बसख कर कुनि सु योंद अख तीर लायी ।।
च्रे कर छुय वुनि वुछमुत मोख तसुन्द ज़ात ।
वुछख तोलि येलि गछ़ी ना च्रे दोह्स रात ।। ३५ ।।
बु छुस ज़ानिथ सु यामत मोख च्रे हावी ।
लगी दोख सारिकुय सोनुलांक रावी ।।

ही क्या है ! अपनी आँखों से देख, अभी भी इन ज़ख़्मों से रक्त बह रहा है। उसने पृथ्वी पर लेटकर अपने ज़ख़्म दिखाए तथा बहुत रोकर अपना अह्वाल (हाल) कह डाला। अब पुनः इस ज़िन्दगानी को बर्बाद करवाना नहीं चाहता और फिर अब तक तो वह पूरी जवानी में आ गया होगा। ३० इस पर रावण ने तदबीर निकाल कर कहा—यदि इस समय तुझसे कुछ होता हो तो कर और यों बहाने न बना। तू मेरे साथ चल और (हम लोग) उसकी पूँजी को उड़ा लें। मुफ़्त में नहीं, अपितु बदले में शूर्पणखा को मुआवज़े में उन्हें दे देंगे। तू मेरा ग़मख़्वार है, अतः मेरी चारासाजी कर। मेरे साथ चल ताकि उसे छल से उड़ा लें। इस पर उस (मारीच) ने कहा—यह तुझे क्या दरिद्रता सूझी है। यदि वह एक तीर तुझे मार दे तो तू कहीं भी नहीं बस सकता। तू ने अभी उसका मुख ही कहाँ देखा है, यदि तू देख ले तो तेरा दिन रात में बदल जायगा। ३५ मेरा विश्वास है कि जैसे ही वह तुझे अपना मुख दिखाएँगे तो तुझे हर प्रकार के दुःख (सताने) लगेंगे और तेरी सोने की लंका जाती रहेगी।

है ? माया मोह की आँधी के झोंके उसे कैसे दीप्तिमान रहने दे सकते हैं ? कभी न छली जा सकने वाली माया के समक्ष लोभी मन सदैव डोल जाया करते हैं। यह प्रभू-लीला है कि जो उस परमात्मा का यशगान नहीं करते, उसकी इच्छा में नहीं रहते, वे सदैव मायाजाल में फँस जाया करते हैं। हम अपना यह जीवन धर्मानुकूल बनावें, परमात्मा का डर इस शरीर में सदैव विद्यमान रहे—उस प्रभू से गाढ़ा प्यार रखें, तभी इस जीवन-रूपी दीये की सच्ची रोशनी में हम ईश्वर के दर्शन का साक्षात् कर सकते हैं; और तभी माया-मोह-जाल की आँधी के झोंके हमारा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते। जिस मानव-हृदय में धर्मोपदेश असर करता है, उस हृदय में आत्मिक आनन्द से ओतप्रोत होकर मानव यह समझने लगता है कि अब उसका यह शरीर ही नश्वर नहीं अपितु अखिल ब्रह्माण्ड ही नाशवान् है। अतः हे भाइयो ! इस असार संसार में जन्म लेकर प्रभू का यशगान करो; उसका नाम स्मरण करो; पर-निंदा, पराया हक़, पराई वस्तुओं और माया-मोह की ओर से ध्यान हटाकर परमात्मा के चरण-कमलों में एकाग्रचित्त होकर उसकी स्तुति करने से ही हमारा जीवन सार्थक हो सकता है।

सिरीरागु महला ३ घरु १

१ ओं सतिगुर प्रसादि। हउ सतिगुरु सेवी आपणा इक-मनि इकचिति भाय। सतिगुरु मनकामना तीरथु है जिस नो देय बुझाय। मनंचिंदिआ वरु पावणा जो इछै सो फलु पाय। नाउ धिआईऐ नाउ मंगीऐ नामे सहजि समाय ॥ १ ॥ मन मेरे हरिरसु चाखु तिख जाय। जिनी गुरमुखि चाखिआ सहजे रहे समाय ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिनी सतिगुरु सेविआ तिनी पाइआ नामु निधानु। अंतरि हरिरसु रवि रहिआ चूका मनि अभिमानु। हिरदै कमलु प्रगासिआ लागा सहजि धिआनु। मनु निरमलु हरि रवि रहिआ पाइआ दरगहि मानु ॥ २ ॥ सतिगुरु सेवनि आपणा ते विरले संसारि। हउमै ममता मारि कै हरि राखिआ उरधारि। हउ तिन कै बलिहारणै जिना नामे लगा पिआरु। सेई सुखीए चहु जुगी जिना नामु अखुटु अपारु ॥ ३ ॥ गुर मिलिऐ नामु पाईऐ चूकै मोह पिआस। हरि सेती मनु रवि रहिआ घर ही माहि उदासु। जिना हरि का सादु आइआ हउ

तिन बलिहारै जासु। नानक नदरी पाईऐ सचु नामु गुण-तासु ॥ ४ ॥ १ ॥ ३४ ॥

श्रीराग महला ३ घर १—मन को समझाते हुए गुरुदेव कहते हैं कि ऐ मेरे मन! ईश्वर-नाम का रसास्वादन कर, जिससे तेरी सांसारिक तृष्णाएँ तृप्त हो जायें और तू अडोल हो जाए। मैं एकाग्रचित्त होकर प्रभू की प्राप्ति-हेतु परमात्मा की शरण प्राप्त करता हूँ, जिससे सभी सांसारिक ईच्छाएँ स्वयमेव तृप्त हो जाती हैं। जो लोग प्रभू की शरण में आए हैं, प्रभू-नाम की प्राप्ति कर चुके हैं, उनका अहंकार नष्ट हो गया और वे स्वच्छ हृदय से प्रभू-दर पर मान-सम्मान प्राप्त कर रहे हैं। गुरुदेव कहते हैं, ऐसे चन्द एक ख़ुशक़िस्मत लोगों पर मैं बलिहार होता हूँ जो अपने जीवन में कभी न ख़त्म होनेवाले ईश्वरीय नाम के भंडार को प्राप्त कर रहे हैं। जिन्होंने उस प्रभूनाम का रसास्वादन कर लिया है, उनके हृदयों से माया-मोह-अहं का नाश हो चुका है, और वे सांसारिक कर्म करते हुए भी निविकार रूप से ईश्वर के साथ एकाकार हो रहे हैं। मैं उन सब पर बार-बार बलिहार होता हूँ। यह सब तभी प्राप्त हो सकता है जब प्रभु की कृपादृष्टि हो और सदैव स्थिर रहनेवाला ईश्वरीय नाम एवं गुणों का ख़जाना प्राप्त हो जावे।

सिरीरागु महला ३

बहु भेख करि भरमाईऐ मनि हिरदै कपट कमाय। हरि का महलु न पावई मरि विसटा माहि समाय ॥ १ ॥ मन रे गृह ही माहि उदासु। सचु संजमु करणी सो करे गुरमुखि होय परगासु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुर कै सबदि मनु जीतिआ गति मुकति घरै महि पाय। हरि का नामु धिआईऐ सतिसंगति मेलि मिलाय ॥ २ ॥ जे लख इसतरीआ भोग करहि नवखंड राजु कमाहि। बिनु सतगुर सुखु न पावई फिरि फिरि जोनी पाहि ॥ ३ ॥ हरि हारु कंठि जिनी पहिरिआ गुर चरणी चितु लाय। तिना पिछै रिधि सिधि फिरै ओना तिलु न तमाय ॥ ४ ॥ जो प्रभ भावै सो थीऐ अवरु न करणा जाय। जनु नानकु जीवै नामु लै हरि देवहु सहजि सुभाय ॥ ५ ॥ २ ॥ ३५ ॥

श्रीराग महला ३—धार्मिक वस्त्र धारण एवं भेष बनाकर कोरे उपदेश देनेवाले, हृदय में कपट रखकर ऊपरी दिखावा करनेवाले, बजाए प्रभु दर की प्राप्ति के, आवागमन के चक्करों में फँसकर भटकने लगते हैं।

परन्तु गृहस्थ आश्रम में रहते हुए भी जिन मनुष्यों ने अपने मन को वश में कर लिया है, वे ऊँची आत्मिक अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं और उनके विकारों का नाश हो जाता है। अतः हे मन ! सत्संगत में बैठकर परमात्मा के नाम का स्मरण करना सर्वोत्तम है। हे भाई ! यदि काम-वासना की पूर्त्ति हेतु तू लाख स्त्रियों का भी भोग कर ले, सारी धरती पर तेरा राज्य हो जावे, तब भी गुरु की शरण के बिना आत्मिक आनन्द की प्राप्ति तू नहीं कर सकता, और तू आवागमन के चक्करों में फँसा रह जावेगा। ये ऋद्धियाँ एवं सिद्धियाँ तेरे क़दमों पर स्वयमेव सिर झुका देंगी जब तू परमात्मा के नाम-स्मरण की माला अपने गले में डाल लेगा, अर्थात् प्रभु-यश गाने-सुनने एवं सुनाने लगेगा। परन्तु यह सब जीव के वश का नहीं। वही होता है जो मंज़ूरे ख़ुदा होता है। अतः हे प्रभू ! अपना नाम दान दे, ताकि मैं अडोल होकर तेरे प्रेम में लीन हो, तेरा नाम स्मरण कर, तेरा सुयश गायन कर, अपना जीवन सार्थक कर सकूँ।

सिरीरागु महला ३ घरु १

जिस ही की सिरकार है तिस ही का सभु कोय। गुरमुखि कार कमावणी सचु घटि परगटु होय। अंतरि जिस कै सचु वसै सचे सची सोय। सचि मिले से न विछुड़हि तिन निजघरि वासा होय ॥ १ ॥ मेरे राम मै हरि बिनु अवरु न कोय। सतगुरु सचु प्रभु निरमला सबदि मिलावा होय ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सबदि मिलै सो मिलि रहै जिस नउ आपे लए मिलाय। दूजै भाइ को ना मिलै फिरि फिरि आवै जाय। सभ महि इकु वरतदा एको रहिआ समाय। जिस नउ आपि दइआलु होय सो गुरमुखि नामि समाय ॥ २ ॥ पड़ि पड़ि पंडित जोतकी वाद करहि बीचारु। मति बुधि भवी न बुझई अंतरि लोभ विकारु। लख चउरासीह भरमदे भ्रमि भ्रमि होय खुआरु। पूरबि लिखिआ कमावणा कोय न मेटणहारु ॥ ३ ॥ सतगुर की सेवा गाखड़ी सिरु दीजै आपु गवाय। सबदि मिलहि ता हरि मिलै सेवा पवै सभ थाय। पारसि परसिऐ पारसु होय जोती जोति समाय। जिन कउ पूरबि लिखिआ तिन सतगुरु मिलिआ आय ॥ ४ ॥ मन भुखा भुखा मत करहि मत तू करहि पूकार। लख चउरासीह जिनि सिरी सभसै देय अधारु। निरभउ सदा दइआलु है सभना करदा सार। नानक गुरमुखि बुझिऐ पाईऐ मोखदुआरु ॥ ५ ॥ ३ ॥ ३६ ॥

श्रीराग महला ३ घर १—जैसे सच्ची प्रजा सदैव अपने राजा की होकर रहती है, उसी में अपनी निष्ठा रखती है, उसी प्रकार सच्चे मनुष्य अपने प्रभू-परमात्मा-पति में एकाकार होने की चेष्टा करते हैं। उसी में अपनी सच्ची निष्ठा रखते हैं और प्रभू-दर की प्राप्ति करते हैं। ऐसा करने से फिर उनके मन-मंदिर में प्रभू की ज्योति का प्रकाश हो जाता है और वे सभी स्थान पर शोभा प्राप्त करते हैं। परमात्मा के चरण-कमलों में जुड़े रहनेवाले व्यक्ति ही उसकी प्राप्ति करते हैं। परन्तु यह प्राप्ति तभी संभव है जब प्रभू की कृपादृष्टि प्राप्त हो जावे। अन्य सभी माया-मोह में फँस कर आवागमन के चक्करों में भटकते रहते हैं। पूर्व-कर्मों के आधार पर ही हम इस जीवन में सुख-दुख भोगते हैं, चौरासी लाख योनियों में जीव भटकता रहता है और सच्चे दर को प्राप्त नहीं कर पाता। क्योंकि केवल शास्त्रार्थ करने से, कोरी बहसें करने से किसी ठोस वस्तु की प्राप्ति नहीं होती। जीवन में कुछ प्राप्त करने के लिए कोरी बातें नहीं, सच्चे कर्मों की आवश्यकता होती है। जब तक हम सच्चे गुरु द्वारा दर्शाए मार्ग पर नहीं चलते, अपना आप नहीं वार देते, उस परमात्मा से एकाकार होने की चेष्टा नहीं करते, सेवा भाव, जन-हिताय एवं बहु-हिताय की भावना का आदर नहीं करते, तब तक हमारा कल्याण संभव नहीं। गुरू (पारस) से मिलने पर ही हम पारस-स्वरूप हो सकते हैं, परमात्मा की ज्योति में एकाकार हो सकते हैं, और उसकी दयादृष्टि के पात्र बन सकते हैं। वह दयालु प्रभु जिसने चौरासी लाख योनियाँ बनाई हैं, सारी सृष्टि की साजना की है—अखिल ब्रह्माड का स्वामी है, सभी जीवों को रोजी देता है, वह दया का सागर सबकी देख-भाल करता है। अतः गुरु की शरण प्राप्त कर के अपना जीवन सार्थक करो, माया के बंधनों को तोड़ डालो।

सिरीरागु महला ३

जिनी सुणि कै मंनिआ तिना निजघरि वासु। गुरमती सालाहि सचु हरि पाइआ गुणतासु। सबदि रते से निरमले हउ सद बलिहारै जासु। हिरदै जिन कै हरि वसै तितु घटि है परगासु ॥ १ ॥ मन मेरे हरि हरि निरमलु धिआय। धुरि मसतकि जिन कउ लिखिआ से गुरमुखि रहे लिव लाय ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हरि संतहु देखहु नदरि करि निकटि वसै भरपूरि। गुरमति जिनी पछाणिआ से देखहि सदा हदूरि। जिन गुण तिन सद मनि वसै अउगुणवंतिआ दूरि। मनमुख गुण तै बाहरे बिनु नावै मरदे झूरि ॥ २ ॥ जिन सबदि गुरू सुणि मंनिआ तिन

मनि धिआइआ हरि सोय। अनदिनु भगती रतिआ मनु तनु निरमलु होय। कूड़ा रंगु कसुंभ का बिनसि जाय दुखु रोय। जिसु अंदरि नामु प्रगासु है ओहु सदा सदा थिरु होय ॥ ३ ॥ इहु जनमु पदारथु पाय कै हरिनामु न चेतै लिव लाय। पगि खिसिऐ रहणा नहीं आगै ठउरु न पाय। ओहु वेला हथि न आवई अंति गइआ पछुताय। जिसु नदरि करे सो उबरै हरि सेती लिव लाय ॥ ४ ॥ देखा देखी सभ करे मनमुखि बूझ न पाय। जिन गुरमुखि हिरदा सुधु है सेव पई तिन थाय। हरिगुण गावहि हरि नित पड़हि हरिगुण गाय समाय। नानक तिन की बाणी सदा सचु है जि नामि रहे लिव लाय ॥ ५ ॥ ४ ॥ ३७ ॥

श्रीराग महला ३—वे व्यक्ति, जो परमात्मा का नाम स्मरण कर उसे अपने मन-मंदिर में बसा लेते हैं, उनके मन बाहरी भटकावों में न आकर गुण-सागर परमात्मा की प्राप्ति करते हैं। प्रभू-यश में रमे हुए लोगों के आचरण पवित्र एवं ऊँचे हो जाते हैं। गुरुदेव कहते हैं, मैं उन पर बलिहार होता हूँ। प्रभू-परमात्मा का उनके हृदयों में वास होते ही उनका मुखमण्डल दिव्यज्योति से देदीप्यमान हो जाता है और वे वास्तविक जीवन जीने की कला प्राप्त कर लेते हैं। जिन्होंने उस ईश्वर को सर्वव्यापी सर्वप्रतिपालक, सर्वशक्तिमान करके जाना है वे उसे सदैव अपने सन्निकट महसूस करते हैं। परन्तु जिनके हृदयों में छल-कपट, भेद-भाव है वे उसे सदैव दूर, बहुत दूर करके जानते हैं। अपने मन को वश में न कर सकनेवाले, सदैव अवगुणों को एकत्रित कर अपना जीवन व्यर्थ गँवा देते हैं और आवागमन के चक्कर में फँस जाते हैं। गुरु-शिक्षा द्वारा जिन्होंने परमात्मा को प्राप्त कर लिया है, वे अहर्निश उसका पवित्र नाम स्मरण करते हैं। उनका तन-मन पावन-पवित्र हो जाता है और वे मायावी दुनिया में रहकर भी थोड़े समय के माया-मोह के भुलावे से बाहर निकल जाते हैं। जिस प्रकार कुसुम का रंग अल्पकालीन होता है—जल्दी ही उतर जाता है वैसे ही माया-मोह थोड़े समय का है। जिसने अपने आपको इस मायाजाल से बचा लिया वह परम पद को प्राप्त कर चिर-सुखी जीवन व्यतीत करता है। जिन्होंने इस बहुमूल्य जीवन को प्राप्त करके भी प्रभू-यशगान, नाम-स्मरण नहीं किया, वे कौड़ियों के बदले जीवन को यों ही निरर्थक गँवा बैठते हैं। उन्हें न तो इस लोक में और न ही परलोक में कोई स्थान प्राप्त होता है। परन्तु जिन जीवों पर ईश्वर की कृपादृष्टि हो जाती है, वे मायाजाल के बंधनों को तोड़ अपना जीवन सार्थक कर लेते हैं। अपने मन को वश में न कर सकनेवाले,

मन के पीछे मृगतृष्णा में भटकनेवाले मनुष्य-सदैव दिखावटी जीवन जीते हैं—परन्तु जिन पर प्रभु की दयादृष्टि हो गई उनका हृदय पवित्र हो जाता है, उनकी सेवा उस महान् दर पर स्वीकार कर ली जाती है। अतः गुरुदेव कहते हैं, जो मनुष्य ईश्वर के रंग में रंगे हुए हैं, सदैव स्थिर प्रभू-भक्ति में लीन हैं, परमात्मा का अहर्निश यशगान कर रहे हैं, वे धन्य हैं। मैं उन पर बलिहार जाता हूँ।

सिरीरागु महला ३

जिनी इकमनि नामु धिआइआ गुरमती वीचारि। तिन के मुख सद उजले तितु सचै दरबारि। ओय अंम्रितु पीवहि सदा सदा सचै नामि पिआरि॥ १॥ भाई रे गुरमुखि सदा पति होय। हरि हरि सदा धिआईऐ मलु हउमै कढै धोय॥ १॥ रहाउ॥ मनमुख नामु न जाणनी विणु नावै पति जाय। सबदै सादु न आइओ लागे दूजै भाय। विसटा के कीड़े पवहि विचि विसटा से विसटा माहि समाय॥ २॥ तिन का जनमु सफलु है जो चलहि सतगुर भाय। कुलु उधारहि आपणा धंनु जणेदी माय। हरि हरि नामु धिआईऐ जिस नउ किरपा करे रजाय॥ ३॥ जिनी गुरमुखि नामु धिआइआ विचहु आपु गवाय। ओय अंदरहु बाहरहु निरमले सचे सचि समाय। नानक आए से परवाणु हहि जिन गुरमती हरि धिआय॥ ४॥ ५॥ ३८॥

श्रीराग महला ३—जिन्होंने एकाग्रचित्त होकर गुरुदीक्षा से परमात्मा का नाम प्राप्त कर लिया है, वे सदैव स्थिर रहनेवाले ईश्वर के परम दरबार में शोभायमान होते हैं, एवं आत्मिक जीवन जीना सीख जाते हैं। परन्तु अपने मन के पीछे दौड़नेवाले अपनी शोभा गँवा बैठते हैं। उनका मान-सम्मान सबकुछ चला जाता है। उन्हें प्रभू-यशगायन करने में अथवा सुनने में आनन्द प्राप्त नहीं होता, इसीलिए विकारों में फँसकर आवागमन के चक्करों में पड़ जाते हैं। प्रेममय जीवन व्यतीत करनेवाले स्वयं तो सफल होते ही हैं अपने परिवार, माता-पिता एवं सगे-सम्बन्धियों की भी शोभा करवाते हैं। अतः परमात्मा के नाम को सदैव स्मरण करना चाहिए, उसकी कृपा-दया-दृष्टि प्राप्त करनी चाहिए। जिन्होंने अपने-पराये का भेद-भाव दूर करके, आपा गँवा के, परमात्ना का नाम स्मरण किया है, वे उस ईश्वर में एकाकार हो जाते हैं, उसका रूप हो जाते हैं, पवित्र-पावन जीवन व्यतीत करने लगते हैं। अतः गुरुदेव कहते हैं, *केवल उन्हीं जीवों का इस संसार में जन्म लेना सार्थक है जिन्होंने*

परमात्मा की सृष्टि से प्यार किया है; सबको ईश्वर-रूप जाना है और गुरु की कृपा से ईश्वर का पवित्र नाम जपने में ही अपना यह बहुमूल्य जीवन व्यतीत किया है।

सिरीरागु महला ३

हरि भगता हरिधनु रासि है गुर पूछि करहि वापारु। हरिनामु सलाहनि सदा सदा वखरु हरिनामु अधारु, गुरि पूरै हरिनामु द्रिड़ाइआ हरि भगता अतुटु भंडारु ।। १ ।। भाई रे इसु मन कउ समझाय। ए मन आलसु किआ करहि गुरमुखि नामु धिआय ।। १ ।। रहाउ ।। हरि भगति हरि का पिआरु है जे गुरमुखि करे बीचारु। पाखंडि भगति न होवई दुबिधा बोलु खुआरु। सो जनु रलाइआ ना रलै जिसु अंतरि बिबेक बीचारु ।। २ ।। सो सेवकु हरि आखीऐ जो हरि राखै उरि धारि। मनु तनु सउपे आगै धरे हउमै विचहु मारि। धनु गुरमुखि सो परवाणु है जि कदे आवै हारि ।। ३ ।। करमि मिलै ता पाईऐ विणु करम पाइआ न जाय। लख चउरासीह तरसदे जिसु मेले सो मिलै हरि आय। नानक गुरमुखि हरि पाइआ सदा हरिनामि समाय ।। ४ ।। ६ ।। ३९ ।।

श्रीराग महला ३—ईश्वर का यशगान करनेवाले प्रभुभक्तों के पास ईश्वरीय नाम ही धन-सम्पदा है—वे गुरूशिक्षा से नाम का व्यापार करते हैं—सदैव प्रभू का नाम सलाहते हैं और वह नाम ही उनके जीवन का आसरा है—उनकी संपत्ति-सम्पदा है, अर्थात् उनका सबकुछ ईश्वरीय नाम ही है। सच्चे हृदय से की गई भक्ति कभी व्यर्थ नहीं जाती, अपितु हृदय में अपना एक विशेष स्थिर स्थान बना लेती है। अतः पाखंड का त्यागकर, सत्य का आश्रय लेकर, खोटे-खरे की पहचान करके सत्यस्वरूप परमात्मा की शरण ग्रहण करो। परमात्मा का बनने के लिए अपने तन-मन को पूर्णरूपेण उसके चरणों में अर्पित करना होगा; अंह का नाश, मायाजाल के बंधनों को तोड़ना होगा, तभी उसके पवित्र दर पर हमको आश्रय प्राप्त होगा; हम मोक्ष प्राप्त कर पायेंगें। मानव चौरासी लाख योनियों में भटकता फिरता है, परन्तु उस प्रभू को तब तक प्राप्त नहीं कर पाता जब तक स्वयं उस परमात्मा की कृपादृष्टि मानव पर नहीं हो जाती। अतः ईश्वर के पवित्र दर की प्राप्ति हेतु हे भाइयो ! गुरू की शरण प्राप्त करो, प्रभु भक्ति में लीन हो जाओ, सत्य आचरण बनाओ, तभी कल्याण संभव है।

सिरीरागु महला ३

सुख सागरु हरिनामु है गुरमुखि पाइआ जाय। अनदिनु नामु धिआईऐ सहजे नामि समाय। अंदरु रचै हरि सच सिउ रसना हरिगुण गाय॥ १॥ भाई रै जगु दुखीआ दूजै भाय। गुर सरणाई सुखु लहहि अनदिनु नामु धिआय॥ १॥ रहाउ॥ साचे मैलु न लागई मनु निरमलु हरि धिआय। गुरमुखि सबदु पछाणीऐ हरि अंम्रित नामि समाय। गुर गिआनु प्रचंडु बलाइआ अगिआनु अंधेरा जाय॥ २॥ मनमुख मैलु मलु भरे हउमै त्रिसना विकारु। बिनु सबदै मैलु न उतरै मरि जंमहि होय खुआरु। धातुरबाजी पलचि रहे ना उरवारु न पारु॥ ३॥ गुरमुखि जप तप संजमी हरि कै नामि पिआरु। गुरमुखि सदा धिआईऐ एकु नामु करतारु। नानक नामु धिआईऐ सभना जीआ का आधारु॥ ४॥ ७॥ ४०॥

श्रीराग महला ३—स्थिर हृदय एवं जिह्वा द्वारा अहर्निश प्रभु-यश गान कर, गुरु की शरण पकड़, आत्मिक अडोलता का आश्रय ले। जब हम ईश्वर की भक्ति करेंगे तभी परमात्मा का नाम जो सुखों का समुद्र है, प्राप्त होगा एवं हम ईश्वर के साथ एकाकार हो सकेंगे। परमात्मा जो सदैव सत्यस्वरूप है उसे विकारों की मैल नहीं लगती इसलिए उसकी पूजा करनेवाले, उसमें आस्था रखनेवाले भी पवित्र हो जाते हैं। जब हम प्रभु के पवित्र चरणों का आश्रय ग्रहण कर लेंगे—उसके यशगान में तन-मन से जुड़ जायेंगे तो हमें उस परमात्मा में लीन होने का ढंग आ जावेगा, अज्ञान-रूपी अंधकार का नाश हो जावेगा एवं ज्ञान का प्रकाश चहुदिश फैला सकेंगे। अपने मन के पीछे भागनेवाले सदैव विकारों में में फँसे मलीन-मन रहते हैं—विकारों की मैल उन पर हावी हुई रहती है, उनके अंदर अहं भावना भरी रहती है एवं वे लालची पुरुष सदैव माया-जाल के फँसे रहते हैं; अतः आवागमन के चक्करों में तब तक फँसे रहते हैं जब तक ईश्वर की कृपादृष्टि उन पर न हो जावे। न तो उनका यह जन्म सफल होता है और न ही वे अपना परलोक सुधार पाते हैं। प्रभू का यशगायन करने में अथवा श्रवण करने में प्यार उसी को प्राप्त होता है जो ईश्वर के सन्मुख रहता है, नाम स्मरण करता है, सेवाभाव रखता है और विकारों से बच कर सदैव परमात्मा का प्यारा नाम जपता रहता है। अतः सारी सृष्टि के जीवन का सहारा-प्रभू का नाम ही सदैव स्मरण करना चाहिए।

इति श्रुत्वा स्मितं कृत्वा भवानी वदति स्म तान् । विज्ञानिनो मुनिवरा युक्तमेवोदितं वचः ॥
इदानीं दग्धवान् कामं भवद्बुद्ध्या महेश्वरः । एतावत्कालपर्यन्तं सविकारो हरोऽभवत् ॥
मम बुद्ध्या किन्तु नूनमस्ति योगी सदा शिवः । अजोऽनवद्यो निष्कामस्तथा भोगविवर्जितः ॥
मया चेत्थं परिज्ञाय शिवो यद्यस्ति सेवितः । कर्मणा मनसा वाचा सन्ततं प्रीतिसंयुतम् ॥
नूनं मुनीशाः शृण्वन्तु प्रतिज्ञां तर्हि तां मम । ईशः कृपानिधिः सत्यां करिष्यत्येव शङ्करः ॥
भवद्भिर्यत् तु कथितं मदनं दग्धवान् हरः । ध्रुवं स एव भवतामविवेको महत्तमः ॥
ताता! वैश्वानरस्यास्ति स्वभावः सहजस्त्वयम्। यत् सन्निधिं तस्य गन्तुं न शक्नोति हिमं क्वचित्॥
अवश्यमेव नश्येत् तद् गच्छेच्चेत् तस्य सन्निधिम्। अयमेव मतो न्यायः प्रसङ्गे कामरुद्रयोः ॥

हृष्टा मुनीशा हृदि गां निशम्य प्रीतिञ्च विश्वासभरं विलोक्य ।
नत्वाद्रिकन्यां शिरसाचलंस्ते ततः समीपं प्रययुर्हिमाद्रेः ॥ ९० ॥

श्रावयन्ति स्म सर्वं ते प्रसङ्गं तं गिरीश्वरम्। श्रुत्वा स कामदहनं बभूवातीव दुःखितः ॥
रतेर्वरप्राप्तिवार्तां श्रावयन्ति स्म ते ततः । श्रुत्वा हिमाचलोऽतीव मन्यते स्म सुखं हृदि ॥
विचार्य शम्भोः प्रभुतां स्वचित्ते भूधरेश्वरः । आहूतवान् मुनिवरान् स समादरपूर्वकम् ॥
सुवासरं सुनक्षत्रं सुघटीञ्च प्रशोध्य सः । वेदविध्यनुसारं सल्लग्नं निश्चित्य च द्रुतम् ॥
सप्तर्षिभ्यश्च पश्चात् तां प्रददौ लग्नपत्रिकाम्। गृहीत्वा चरणांस्तेषां चकार विनयं गिरिः ॥
ते च गत्वा पत्रिकां तां प्रददुः परमेष्ठिने । तस्य वाचयतः प्रीतिर्मानसे न ममौ तदा ॥
वाचयित्वा च तां सर्वान् ब्रह्मा श्रावयति स्म च। श्रुत्वा प्रसन्ना सञ्जाता सर्वा देवर्षिसंहतिः ॥
व्योम्नो जाता पुष्पवृष्टिर्वाद्यानि क्वणितानि च। आशासु मङ्गलघटा दशस्वपि सुसज्जिताः ॥

सर्वेऽप्यसज्जन्त सुरास्तदानीं नाना विमानानि च वाहनानि ।
निमित्तजातं हितभद्रमासीच्चक्रुर्मुदैवाप्सरसश्च गानम् ॥ ९१ ॥

तदा शम्भुगणाः शम्भोः शृङ्गारं समपादयन् । जटामुकुटमाबध्य तत्राहिं समचूडयन् ॥
शम्भुर्दधार सर्पाणां कुण्डले कङ्कणानि च । देहे विभूतिं सन्दध्रे वस्त्रार्थं व्याघ्रचर्म च ॥
चन्द्रो ललाटे रुचिरे मस्तके जाह्नवी तथा । नेत्राणि त्रीणि यज्ञोपवीतं विषधरात्मकम् ॥
ग्रीवायां गरलं माला नृमुण्डानामुरःस्थले । स वेषेणाशिवोऽपीत्थं कृपालुः शिवधाम च ॥
त्रिशूलडमरू तस्य करयोः सुविराजितौ । वृषारूढः प्राचलत् स वाद्यानि क्वणितानि च ॥
सुरस्त्रियः शिवं दृष्ट्वा प्राकुर्वन्त स्मितं तदा । ऊचुश्चास्य वरस्यार्हा वधूः कापि न भूतले ॥
ततो विष्णुविधात्राद्याः सर्वे सुरगणा मुदा । प्राचलन् वरयात्रायामारुह्य स्व-स्ववाहनम् ॥
आसीदनुपमः सर्वैः प्रकारैर्विबुधव्रजः । वरयात्रा न सा किन्तु वरयोग्या तदाभवत् ॥

विहस्य विष्णुस्तत एतदाह सर्वान् समाहूय दिशामधीशान् ।
पृथक् पृथग्भूय चलन्तु सर्वे त्वितः परं स्वस्वसमाजयुक्ताः ॥ ९२ ॥

वरयात्रास्माकमेषा हे भद्रा ! न वरोचिता । करिष्यथोपहासं किं गत्वा परपुरं त्वितः ॥
श्रीविष्णोर्वचनं श्रुत्वा सस्मिता अभवन् सुराः ।क्षणात् पृथक् च सञ्जाताः सहिताः स्वस्वसेनया॥
मनस्येव महेशोऽपि तदानीं सस्मितोऽभवत् ।अद्यापि व्यङ्ग्यवाक्यानि यत् त्यक्तानि न विष्णुना॥
अतिप्रियाणि वाक्यानि श्रुत्वैतानि प्रियस्य सः ।सम्प्रेर्य भृङ्गिनं सर्वान् ह्वयति स्म गणान् स्वकान्॥
निशम्य शङ्करस्याज्ञां सर्वे एव समागताः । स्वशिरो नमयामासुस्ते प्रभोः पादपद्मयोः ॥
नानावाहनसंयुक्तं नानावेषधरं तथा । निजं समाजमालोक्य शङ्करः सस्मितोऽभवत् ॥
मुखहीनः कश्चिदासीत् कश्चिद् बहुमुखस्तथा ।अङ्घ्रिदोरहितः कश्चित् कश्चिद् बह्वङ्घ्रिदोर्युतः॥
अनेकनयनः कश्चित् कश्चिन्नयनवर्जितः । हृष्टपुष्टः कश्चिदन्यस्तथातिक्षीणविग्रहः ॥

छंद—तन-खीन कोउ अति पीन, पावन कोउ अपावन गति धरें।
भूषन कराल, कपाल कर, सब सद्य सोनित तन भरें॥
खर, स्वान, सुअर, सृकाल-मुख—गन-बेष अगनित को गनै।
बहु जिनस प्रेत, पिसाच, जोगि-जमात! बरनत नहिं बनै॥

सो०—नाचहिं, गावहिं गीत, परम तरंगी भूत सब।
देखत अति बिपरीत, बोलहिं बचन बिचित्र बिधि॥ ९३॥

जस दूलहु तसि बनी बराता। कौतुक बिबिध होहिं मग जाता॥
इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना। अति बिचित्र नहिं जाइ बखाना॥
सैल सकल जहँ लगि जग माहीं। लघु-बिसाल, नहिं बरनि सिराहीं॥
बन, सागर, सब नदीं, तलावा। हिमगिरि सब कहुँ नेवत पठावा॥
कामरूप सुंदर तन धारी। सहित समाज, सहित बर नारी॥
गए सकल तुहिनाचल गेहा। गावहिं मंगल सहित सनेहा॥
प्रथमहिं गिरि बहु गृह सँवराए। जथाजोगु तहँ-तहँ सब छाए॥
पुर-सोभा अवलोकि सुहाई। लागइ लघु बिरंचि-निपुनाई॥

छं०—लघु लाग बिधि की निपुनता, अवलोकि पुर-सोभा सही।
बन, बाग, कूप, तड़ाग, सरिता सुभग सब, सक को कही॥
मंगल बिपुल तोरन, पताका, केतु गृह-गृह सोहहीं।
बनिता-पुरुष सुंदर-चतुर, छबि देखि मुनि-मन मोहहीं॥

दो०—जगदंबा जहँ अवतरी, सो पुर बरनि कि जाइ।
रिद्धि, सिद्धि, संपत्ति, सुख—नित नूतन अधिकाइ॥ ९४॥

नगर निकट बरात सुनि आई। पुर खरभरु, सोभा अधिकाई॥
करि बनाव, सजि बाहन नाना। चले लेन सादर अगवाना॥
हियँ हरषे सुर-सेन निहारी। हरिहि देखि, अति भए सुखारी॥
सिव-समाज जब देखन लागे। बिडरि चले, बाहन सब भागे॥
धरि धीरजु तहँ रहे सयाने। बालक सब लै जीव पराने॥
गएँ भवन पूछहिं पितु-माता। कहहिं बचन भय-कंपित गाता॥
कहिअ काह, कहि जाइ न बाता। जम-कर धार, किधौं बरिआता॥
बरु बौराह, बसहँ असवारा। ब्याल, कपाल, बिभूषन छारा॥

छं०—तन छार, ब्याल, कपाल भूषन, नगन, जटिल भयंकरा।
सँग भूत, प्रेत, पिसाच, जोगिनि, बिकट-मुख रजनीचरा॥
जो जिअत रहिहि बरात देखत, पुन्य बड़ तेहि कर सही।
देखिहि सो उमा बिबाहु, घर-घर बात असि लरिकन्ह कही॥

दो०—समुझि महेस समाज सब, जननि-जनक मुसुकाहिं।
बाल बुझाए बिबिध बिधि, निडर होहु, डर नाहिं॥ ९५॥

गणेषु केऽपि दुर्बलाः परेऽतिपीनविग्रहा अमेध्यवेषिणस्तथा सुमेध्यवेषिणः परे।
करालभूषणास्तथा कपालयुक्तपाणयः समेऽपि नूत्नशोणितप्रलिप्तपूर्णमूर्तयः॥
खराश्वकोलजम्बुकाननाश्च केपि भासुरा गणोत्करस्य वेषगां गणक्रियां करोतु कः।
परेतयुक्पिशाचगश्चयश्च योगिनीयुतस्तदीदृशस्य वर्णनं चयस्य नैव शक्यते॥

नृत्यन्ति गायन्ति मुदा सुगीतं भूतास्तरङ्गेण युताः समेऽपि।
विलोमरूपाः प्रतिभान्ति दृष्टौ वाचं प्रयुञ्जन्ति विचित्ररीत्या॥ ९३॥

तादृशी वरयात्रा सा तत्रासीद् यादृशो वरः। आसन् मार्गे कौतुकानि विविधानि प्रगच्छताम्॥
इतश्च भूधराधीशो रचयामास मण्डपम्। विचित्ररूपमत्यन्तमशक्यं यस्य वर्णनम्॥
संसारे सकला ये ये यावन्तोऽपि महीधराः। लघुरूपा विशालाश्च येषामन्तो न वर्णने॥
वनानि सागरा नद्यस्तडागा अपि ये समे। आमन्त्रणं समेभ्योऽपि प्रेषयामास शैलराट्॥
कामरूपा धारयन्तो विग्रहान् सुमनोरमान्। समाजैः संयुताः स्वीयैर्वरस्त्रीभिश्च संयुताः॥
हिमाचलस्य भवनमगच्छन् सकला अपि। गायन्ति स्म शुभार्थानि गीतानि स्नेहसंयुताः॥
असज्जयत् पूर्वमेव गृहाण्यद्रिर्बहून्यपि। यथायोग्यं तत्र तत्र सर्व एव सुसंस्थिताः॥
नगरस्य तदानीं तां छविं दृष्ट्वा सुशोभनाम्। भासते स्म ब्रह्मणोऽपि नैपुण्यं सृष्टिगं लघु॥

प्रतीयते स्म वेधसः सुकौशलं लघु ध्रुवम् पुरस्य शैलभूपतेर्विलोक्य तादृशीं छविम्।
अरण्यपुष्पवाटिकातडागकूपनिम्नगा मनोरमाः समा अपि प्रवक्तुमेव कः शकः॥
सुमङ्गलान्यनेकधा पताकतोरणान्यपि सुमङ्गलाश्च केतवो गृहे गृहे विराजिताः।
सुरूपदक्षयोषितां नृणाञ्च कान्तिमीप्सितां मनांसि मोहमागतान्यवेक्ष्य योगिनामपि॥

यत्रावतीर्णा जगदम्बिका सा किं शक्यते वर्णयितुं पुरन्तत्।
ऋद्धिश्च सिद्धिः सुखसम्पदोऽपि वृद्धिं गताः प्रत्यहमेव नूत्नाम्॥ ९४॥

श्रुत्वा पुरस्य सविधे वरयात्रां समागताम्। पुरे कोलाहलो जातः शोभा तस्याधिका ततः॥
वेषान् सज्जीकृत्य नाना वाहनानि च नैकधा। सादरं स्वागतं कर्तुं चेलुः स्वागतकारिणः॥
प्रसन्ना हृदये जाता देवसेनां विलोक्य ते। अतीव सुखिनो जाता विलोक्य तु रमापतिम्॥
यदा शिवसमाजं ते द्रष्टुमारेभिरे तदा। भीतानि तेषां सर्वाणि वाहनानि प्रदुद्रुवुः॥
धृत्वा धैर्यं स्थितास्तत्र ते केचिद् ये वयोऽधिकाः। प्राणान् धृत्वा बालकास्तु पलायन्ते स्म सर्वतः॥
गृहान् गतांस्तान् पितरौ यदा हेतुमपृच्छताम्। तदा कम्पितगात्रास्ते सभयं जगदुर्वचः॥
किमुच्यते न वचनं वक्तुं किञ्चन शक्यते। किमियं वरयात्रास्ति किं वेयं यमवाहिनी॥
वरोऽस्त्युन्मादसंयुक्त आरूढो जरठं वृषम्। व्यालाः कपालं क्षारञ्च भाति तस्येति भूषणम्॥

तनौ तु भस्मपन्नगाः कपालमेव भूषणं विवस्त्र एव भासते जटाधरो भयङ्करः।
परेतभूतमण्डलीपिशाचयोगिनीयुतो विचित्रतुण्डधारिभिर्निशाचरैश्च संयुतः॥
वरस्य यात्रिकाञ्च यो विलोक्य जीवितो भवेद् ध्रुवं सुपुण्यसञ्चयो महांश्च तस्य वर्तते।
स एव चाद्रिकन्यकाकरग्रहं विलोकयेद् गृहे-गृहेऽपि बालकैः कथेयमीरिता तदा॥

विज्ञाय शम्भोः सकलं समाजं स्मितञ्च चक्रुर्जनका जनन्यः।
बालाश्च नानाविधि बोधितास्तैर्यन्निर्भयाः स्तास्ति भयं न किञ्चित्॥ ९५॥

लै अगवान बरातहि आए। दिए सबहि जनवास सुहाए॥
मैनाँ सुभ आरती सँवारी। संग सुमंगल गावहिं नारी॥
कंचन-थार सोह बर पानी। परिछन चली हरहि हरषानी॥
बिकट बेष रुद्रहि जब देखा। अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा॥
भागि भवन पैठीं अति त्रासा। गए महेसु जहाँ जनवासा॥
मैना-हृदयँ भयउ दुखु भारी। लीन्ही बोलि गिरीसकुमारी॥
अधिक सनेहँ गोद बैठारी। स्याम सरोज-नयन भरे बारी॥
जेहिं बिधि तुम्हहि रूपु अस दीन्हा। तेहिं जड़, बरु बाउर कस कीन्हा॥

छं०—कस कीन्ह बरु बौराह बिधि, जेहिं तुम्हहि सुंदरता दई।
जो फलु चहिअ सुरतरुहिं सो बरबस बबूरहिं लागई॥
तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं, पावक जरौं, जलनिधि महुँ परौं।
घरु जाउ, अपजसु होउ जग, जीवत बिबाहु न हौं करौं॥

दो०—भईं बिकल अबला सकल, दुखित देखि गिरिनारि।
करि बिलापु, रोदति, बदति, सुता-सनेह सँभारि॥ ९६॥

नारद कर मैं काह बिगारा। भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा॥
अस उपदेसु उमहि जिन्ह दीन्हा। बौरे बरहि लागि तपु कीन्हा॥
साचेहुँ उन्ह कें मोह न माया। उदासीन, धनु-धामु न जाया॥
पर-घर-घालक, लाज न भीरा। बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा॥
जननिहि बिकल बिलोकि भवानी। बोली जुत-बिबेक मृदु बानी॥
अस बिचारि सोचहि मति माता। सो न टरइ जो रचइ बिधाता॥
करम लिखा जौं बाउर नाहू। तौ कत दोसु लगाइअ काहू॥
तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका। मातु ब्यर्थ जनि लेहु कलंका॥

छं०—जनि लेहु मातु कलंकु, करुना परिहरहु, अवसर नहीं।
दुखु-सुखु जो लिखा लिलार हमरें, जाब जहँ, पाउब तहीं॥
सुनि उमा-बचन बिनीत कोमल, सकल अबला सोचहीं।
बहु भाँति बिधिहि लगाइ दूषन, नयन बारि बिमोचहीं॥

दो०—तेहि अवसर नारद सहित, अरु रिषि-सप्त-समेत।
समाचार सुनि तुहिनगिरि, गवने तुरत निकेत॥ ९७॥

तब नारद सबही समुझावा। पूरुब-कथाप्रसंगु सुनावा॥
मयना! सत्य सुनहु मम बानी। जगदंबा तव सुता भवानी॥
अजा, अनादि सक्ति, अबिनासिनि। सदा संभु-अरधंग-निवासिनि॥
जग-संभव-पालन-लय-कारिनि। निज इच्छा लीला-बपु-धारिनि॥
जनमीं प्रथम दच्छ-गृह जाई। नामु सती सुंदर तनु पाई॥
तहँहुँ सती संकरहि बिबाहीं। कथा प्रसिद्ध सकल जग माहीं॥
एक बार आवत सिव-संगा। देखेउ रघुकुल-कमल-पतंगा॥
भयउ मोहु, सिव-कहा न कीन्हा। भ्रम-बस बेषु सीय कर लीन्हा॥

आनयन् वरयात्रां तां ततः स्वागतकारिणः । तद्गतेभ्यो जनावासान् प्रददुः सुमनोहरान् ॥
आरार्तिक्यं ततो मेना सज्जयामास मङ्गलम् । नार्योऽगायन् सुभद्राणि गीतानि च तया सह ॥
स्वर्णपात्रे शोभते स्म श्रेष्ठे तस्याः करद्वये । हृष्टा विधातुं सा शम्भोरारार्तिक्यं तदाचलत् ॥
यदा विकटवेषं तं रुद्रं नार्यो व्यलोकयन् ।तदा तु तासां नारीणां चित्ते जातं महद्भयम् ॥
प्रपलाय्यातिभयतस्ताः सर्वा विविशुर्गृहम् ।शिवोऽपि तत्रागाद्यत्र जनावासः स्थितोऽभवत् ॥
जातं तीव्रतमं दुःखं मेनाया हृदये ततः । गिरीश्वरकुमारीञ्च सा स्वपार्श्वे समाह्वयत् ॥
अतिप्रीत्या निजाङ्के तामुपवेशयति स्म सा । श्यामाब्जाक्षणोरश्रुवारि प्रपूर्योवाच मेनका ॥
तुभ्यं येन विधात्रेदं प्रदत्तं रूपमुत्तमम् । कथं तव वरस्तेन जडेनोन्मादवान् कृतः ॥

स्वयम्भुवा कथं कृतो वरस्तवोन्मदान्वितः प्रदायि येन ते तनौ मनोज्ञतात्मजे ! मम ।
यदर्हति प्रियं फलं दिवौकसां द्रुमे स्थितिं तदेव कण्टकद्रुमे हठादुपागतं स्थितिम् ॥
करोम्यहं सह त्वयाधुनैव पातमद्रितः कृशानुदाहमेव वा करोमि पातमर्णवे ।
गृहं विनाशितं भवेज्जगत्यकीर्तिरेव वा करग्रहं न किन्तु तेऽनुमोदयामि जीवती ॥

सर्वाबला व्याकुलतां प्रयाताः सन्दृश्य खिन्नां गिरिराजपत्नीम् ।
कृत्वा विलापं रुदती जगाद स्मृत्वात्मजायाः प्रियतां ततः सा ॥ ९६ ॥

नारदस्य मुनेः कुत्र किं मयापकृतं जनाः । भवनं प्रतितिष्ठद् यद्येनोच्छिन्नं मम क्षणात् ॥
उपदेशः शैलजायै दत्तो येनेदृशः पुरा । यतस्तयोन्मत्तभर्तुः प्राप्त्यै सम्पादितं तपः ॥
सत्यमेव न तस्यास्ति मोहो मायाथवा क्वचित् । न धनं न गृहं जाया तदुदासीन एव सः ॥
अतः सोऽन्यगृहध्वंसी नास्य लज्जा न वा भयम् । वन्ध्या कथं विजानीयाद् वेदनां प्रसवोद्भवाम् ॥
इत्थं स्वमातरं दृष्ट्वा विकलां गिरिनन्दिनी । मृद्वीं विवेकसंयुक्तां वाचं प्रावर्तयत् तदा ॥
इत्थं विचार्य हे मातः शोकं मा कुरु सम्प्रति । न निवर्तयितुं शक्यं विधात्रा यद् विरच्यते ॥
यर्हि दैवे मदोन्मत्तो लिखितोऽस्ति मम प्रियः । तर्हि कस्मै किमर्थञ्च कुतो दोषः प्रदास्यते ॥
त्वया प्रोञ्छयितुं शक्या किं विधात्राङ्किता लिपिः । अतो मातर्व्यर्थमेव त्वं कलङ्कं गृहाण मा ॥

कलङ्कमेनमद्य मा गृहाण जन्मदायिनि परित्यजाशु रोदनं प्रसक्तिरस्त्यमुष्य न ।
सुखञ्च दुःखमेव वा यदङ्कितं ममालिके व्रजामि यत्र लप्स्यते मया तदेव तत्र च ॥
विनीतमञ्जु पार्वतीवचो निशम्य तत्क्षणात् समारभन्त शोचितुं समा अपि स्त्रियस्तदा ।
बहुप्रकारमेव च प्रदूष्य पद्मसम्भवं स्वनेत्रपद्मसन्ततेः समत्यजन् पयस्ततिम् ॥

तस्मिन् प्रसङ्गे मुनिनारदेन सप्तर्षिभिश्चोपयुतः समैस्तैः ।
श्रुत्वा हिमाद्रिर्घटनामितीमां क्षिप्रं निकेतं प्रययौ स्वकीयम् ॥ ९७ ॥

ततः प्राबोधयत् सर्वान् नारदो मुनिपुङ्गवः । पूर्वं कथाप्रसङ्गं स श्रावयामास चादितः ॥
यन्मेनके वचः सत्यं प्रोच्यमानं शृणुष्व मे । तव पुत्री भवानीयं जगतां जननी ध्रुवम् ॥
अनादिर्जन्मरहिता शक्तिर्नाशविवर्जिता । अर्धाङ्गे शङ्करस्येयं सर्वदैव निवासिनी ॥
कर्त्रीयं जगतां सृष्टे रक्षायाः संहृतेस्तथा । इच्छया स्वीयया चैषा लीलाविग्रहधारिणी ॥
एषा गत्वा पूर्वकाले जज्ञे दक्षस्य सद्मनि । अस्या नाम सतीत्यासीत् प्रापेयं सुन्दरं वपुः ॥
तत्रापि शङ्करेणैव सती देवी विवाहिता । इयं कथा प्रसिद्धास्ति जगत्सु सकलेष्वपि ॥
आगच्छन्ती सती देवी शङ्करेण सहैकदा । रघुवंशारविन्दस्य भानुं मार्गे ददर्श सा ॥
अस्या मोहोऽभवत् तीव्रः शिवप्रोक्तं न चाकरोत् । ततो भ्रमवशा वेषं सीताया जगृहे त्वियम् ॥

छं०—सिय-बेषु सतीं जो कीन्ह तेहिं अपराध संकर परिहरीं।
हर-बिरहँ जाइ बहोरि पितु कें जग्य जोगानल जरीं॥
अब जनमि तुम्हरे भवन, निजपति लागि, दारुन तपु किया।
अस जानि संसय तजहु, गिरिजा सर्बदा संकर-प्रिया॥

दो०—सुनि नारद के बचन तब, सब कर मिटा बिषाद।
छन महुँ ब्यापेउ सकल पुर, घर-घर यह संबाद॥ ९८॥

तब मयना - हिमवंतु अनंदे। पुनि - पुनि पारबती - पद बंदे॥
नारि - पुरुष, सिसु - जुबा - सयाने। नगर - लोग सब अति हरषाने॥
लगे होन पुर मंगल गाना। सजे सबहिं हाटक घट नाना॥
भाँति अनेक भई जेवनारा। सूपसास्त्र जस कछु ब्यवहारा॥
सो जेवनार कि जाइ बखानी। बसहिं भवन जेहिं मातु भवानी॥
सादर बोले सकल बराती। बिष्नु, बिरंचि, देव सब जाती॥
बिबिधि पाँति बैठी जेवनारा। लागे परुसन निपुन सुआरा॥
नारिबृंद सुर जेवँत जानी। लगीं देन गारीं मृदुबानी॥

छं०—गारीं मधुरस्वर देहिं सुंदरि, बिंग्य बचन सुनावहीं।
भोजन करहिं सुर अति बिलंबु, बिनोदु सुनि, सचु पावहीं॥
जेवँत जो बढ़्यो अनंदु सो, मुख कोटिहूँ न परै कह्यो।
अचवाँइ दीन्हे पान, गवने बास जहँ जाको रह्यो॥

दो०—बहुरि मुनिन्ह हिमवंत कहुँ, लगन सुनाई आइ।
समय बिलोकि बिबाह कर, पठए देव बोलाइ॥ ९९॥

बोलि सकल सुर सादर लीन्हे। सबहि यथोचित आसन दीन्हे॥
बेदी बेद - बिधान सँवारी। सुभग सुमंगल गावहिं नारी॥
सिंघासनु अति दिब्य सुहावा। जाइ न बरनि, बिरंचि बनावा॥
बैठे सिव बिप्रन्ह सिरु नाई। हृदयँ सुमिरि निज प्रभु रघुराई॥
बहुरि मुनीसन्ह उमा बोलाईं। करि सिंगारु सखी लै आईं॥
देखत रूप सकल सुर मोहे। बरनै छबि, अस जग कबि को है॥
जगदंबिका जानि भव - भामा। सुरन्ह मनहिं - मन कीन्ह प्रनामा॥
सुंदरता - मरजाद भवानी। जाइ न कोटिहुँ बदन बखानी॥

छं०—कोटिहुँ बदन नहिं बनै बरनत जगजननि-सोभा महा।
सकुचहिं कहत श्रुति-सेष-सारद, मंदमति तुलसी कहा॥
छबिखानि मातु भवानि गवनीं मध्य-मंडप, सिव जहाँ।
अवलोकि सकहिं न सकुच, पति-पदकमल मनु मधुकरु तहाँ॥

दो०—मुनि - अनुसासन गनपतिहि, पूजेउ संभु - भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि, सुर अनादि जियँ जानि॥ १००॥

पुरा चकार जानकीस्वरूपधारणं सती तदादसोऽपराधतः शिवोऽपि तां समत्यजत् ।
कपर्दिनो वियोगतस्ततो जनिप्रदस्य सा प्रगत्य चाध्वरं तनं ददाह योगवह्निना ॥
जनिं गृहीतवत्यहो तवालयेऽधुना त्वियं तपः समाचरन् महत् प्रियाय चाष्टमूर्तये ।
अवेत्य चेत्थमेव भो जहीहि सर्वसंशयान् इयं सुता तु ते ध्रुवं सदैव शङ्करप्रिया ॥

श्रुत्वेति वाचं मुनिनारदस्य नाशं विषादः प्रययौ समेषाम् ।
व्याप्तं क्षणादेव पुरे समग्रे गृहे-गृहे वृत्तमिदं मनोज्ञम् ॥ ९८ ॥

ततो मेना हिमाद्रिश्च सञ्जातौ हर्षनिर्भरौ । पुनः पुनश्च पार्वत्या अवन्देतां पदद्वयम् ॥
नार्यो नरास्तथा बाला युवानः स्थविरा अपि । सर्वेऽपि नागरा लोका अत्यन्तं प्रीतिमाप्नुवन्॥
गानानि शुभशंसीनि प्रारभ्यन्त पुरे तदा । सर्वे सुवर्णकलशान् सज्जन्ते स्म बहूञ्जनाः ॥
तथा भोजनसामग्री बहुधा तत्र सज्जिता । सूपशास्त्रे यथा तस्याः पद्धतिः प्रतिपादिता ॥
तस्य वर्णयितुं शक्या सामग्री भोजनस्य किम् । अन्नपूर्णा भवानी सा स्वयं यस्मिन् गृहे वसेत् ॥
ततोऽद्रिराह्वयत् सर्वान् सादरं वरयात्रिणः । विष्णुं विरञ्चिमन्यांश्च देवान् सर्वविधानपि॥
उपविष्टा बहूविधास्तदा जेमनपङ्क्तयः । सूपकाराः प्रारभन्त निपुणाः परिवेषणम् ॥
विज्ञाय देवान् भुञ्जानान् मण्डलानि तु योषिताम्। गालीदानं प्रारभन्त वाण्या मृदुलया मुदा॥

अयोजयन्त गालिकाः स्त्रियः स्वरैर्मनोरमैर्मनोरमाध्वनिं वचः प्रचक्रुरन्यकर्णगम् ।
अतीव मन्थरं सुरा जजक्षुरात्मभोजनं यतोऽलभन्त ते मुदं निशम्य तद् विनोदनम् ॥
मुदां परम्पराभवत् क्षणे तु जेमनस्य या न शक्यतेऽत्र शंसितुं त्वसौ नु कोटिभिर्मुखैः।
करौ मुखं प्रशोध्य च प्रदाप्य नागवल्लिका विसर्जिता जना ययुर्यथा च यत्र संस्थितिः ॥

आगत्य भूयो मुनयो हिमाद्रिमश्रावयन्नुद्वहनैकपत्रम् ।
विवाहयोग्यं समयं विलोक्य समाह्वयन् देवगणान समस्तान् ॥ ९९ ॥

आदरेण समाहूताः सर्वं एव दिवौकसः । सर्वेभ्योऽपि प्रदत्तानि विष्टराणि यथोचितम्॥
वैदिकेन विधानेन वेदिकापि सुसज्जिता । सुमङ्गलानि रम्याणि जगुर्गीतानि योषितः ॥
सिंहासनं वेदिकायामतिदिव्यं विराजितम् ! न शक्यं वर्णनं तस्य यतो धात्रैव तत् कृतम् ॥
विप्रानानम्य शिरसा शिवस्तस्मिन्नुपाविशत् । स्मृत्वा च हृदये देवं रघुराजं निजेश्वरम् ॥
ततो मुनीश्वरा देवीमाह्वयन् गिरिनन्दिनीम् । श्रृङ्गारयित्वा सख्यस्तामानयन्ति स्म मण्डपम्॥
तस्या रूप विलोक्यैव सुराः सर्वेऽपि मोहिताः।वर्णयेत् तां रोचिषं यो लोके कोऽस्तीदृशः कविः॥
ज्ञात्वा जगन्मातरं तां तथा शङ्करभामिनीम् । मनस्येव सुराः सर्वे प्रणामान् समपादयन् ॥
सा सौन्दर्यस्य सीमैव वर्तते शङ्करप्रिया । कोटिसङ्ख्यैरपि मुखैस्तस्यास्तन्नैव वर्ण्यते ॥

न शक्यते प्रशंसितं मुखैस्तु कोटिसङ्ख्यकैर्महास्वरूपिणी द्युतिर्जगत्कदम्बसुप्रसोः।
श्रुतिश्च शेषशारदे त्रपान्विताः प्रवर्णने मतोऽस्ति तत्र कोऽल्पधीस्तुलस्यनन्यदासकः॥
सुकान्तिमञ्जुताखनिर्जगत्प्रसूर्भवप्रिया जगाम मण्डपान्तरे शिवोऽपि यत्र संस्थितः ।
त्रपाभरेण वीक्षितुं शशाक नैव सा तदा धवस्य पादपङ्कजे मनोऽलिरास तत्रगः ॥

आदेशतो विघ्नहरं मुनीनां पुपूजतुः शम्भुरुमा च तत्र ।
श्रुत्वा न कोऽपि प्रकरोतु शङ्कां विज्ञाय चित्ते विबुधाननादीन् ॥ १०० ॥

जसि बिबाह कै बिधि श्रुति गाई। महामुनिन्ह सो सब करवाई॥
गहि गिरीस कुस-कन्या-पानी। भवहि समरपी जानि भवानी॥
पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा। हियँ हरषे तब सकल सुरेसा॥
बेदमंत्र मुनिबर उच्चरहीं। जय-जय-जय-संकर, सुर करहीं॥
बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना। सुमनबृष्टि नभ भै बिधि नाना॥
हर-गिरिजा कर भयउ बिबाहू। सकल भुवन भरि रहा उछाहू॥
दासीं, दास, तुरग, रथ, नागा। धेनु, बसन, मनि, बस्तु-बिभागा॥
अन्न, कनकभाजन भरि जाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना॥

छं०—दाइज दियो बहु भाँति, पुनि कर जोरि हिम-भूधर कह्यो।
का देउँ पूरनकाम संकर! चरनपंकज गहि रह्यो॥
सिवँ कृपासागर ससुर कर संतोषु सब भाँतिहिं कियो।
पुनि गहे पद-पाथोज मयनाँ प्रेम-परिपूरन हियो॥

दो०—नाथ उमा मम प्रान सम, गृहकिंकरी करेहु।
छमेहु सकल अपराध अब, होइ प्रसन्न बरु देहु॥ १०१॥

बहु बिधि संभु सासु समुझाई। गवनी भवन चरन सिरु नाई॥
जननीं उमा बोलि तब लीन्ही। लै उछंग सुंदर सिख दीन्ही॥
करेहु सदा संकर-पद-पूजा। नारिधरमु पतिदेउ न दूजा॥
बचन कहत भरे लोचन बारी। बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी॥
कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं॥
भै अति प्रेम-बिकल महतारी। धीरजु कीन्ह कुसमय बिचारी॥
पुनि-पुनि मिलति, परति गहि चरना। परम प्रेमु कछु जाइ न बरना॥
सब नारिन्ह मिलि-भेटि भवानी। जाइ जननि-उर पुनि लपटानी॥

छं०—जननिहि बहुरि मिलि चली, उचित असीस सब काहूँ दईं।
फिरि-फिरि बिलोकति मातु तन, तब सखीं लै सिव पहिं गईं॥
जाचक सकल संतोषि संकरु, उमा-सहित भवन चले।
सब अमर हरषे सुमन बरषि, निसान नभ बाजे भले॥

दो०—चले संग हिमवंतु तब, पहुँचावन अति हेतु।
बिबिध भाँति परितोषु करि, बिदा कीन्ह बृषकेतु॥ १०२॥

तुरत भवन आए गिरिराई। सकल सैल-सर लिए बोलाई॥
आदर, दान, बिनय, बहुमाना। सब कर बिदा कीन्ह हिमवाना॥
जबहिं संभु कैलासहिं आए। सुर सब निज-निज लोक सिधाए॥
जगत-मातुपितु संभुभवानी। तेहिं सिंगारु न कहउँ बखानी॥
करहिं बिबिध बिधि भोगबिलासा। गनन्ह-समेत बसहिं कैलासा॥
हर-गिरिजा-बिहार नित नयऊ। ऐहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ॥
तब जनमेउ षटबदनकुमारा। तारकु असुरु, समर जेहिं मारा॥
आगम, निगम, प्रसिद्ध पुराना। षन्मुख-जन्मु सकल जग जाना॥

पदम भगत कृत

रुकमणी-मंगळ

(हरजी रो व्यांवलो)

राजस्थानी (हिन्दी अनुवाद सहित)

हिन्दी-भाषान्तर-कार

डा० सत्यनारायण स्वामी, एम० ए०, पीएच्० डी०

राजस्थानी (देवनागरी) वर्णमाला

अ	आ	इ	ई	उ
ऊ	ऋ	ए	ऐ	ओ
	औ	अं	अः	
क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म
य	र	ल	व	व़
श	ष	स	ह	ळ
क्ष	त्र	ज्ञ	ड़	ढ़

े ै ो ौ

अवतरणिका

प्रस्तुत कृति 'रुकमणी-मंगळ' राजस्थानी भाषा का एक मंगल-काव्य है। मंगल-काव्य विवाह-विषयक काव्यों की संज्ञा है। भारतीय संस्कृति में विवाह न केवल 'काम' के अंतर्गत आता है अपितु उसका 'धर्म' में भी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इसी कारण कवियों ने भी इस आह्लादक और मांगलिक विषय को लेकर अनेकानेक रचनाएँ की हैं। विवाह-विषयक रचनाएँ अनेक नामों से प्रचलित रही हैं जिनमें से मुख्य नाम ये हैं—मंगल; विवाहलउ (विवाहलो), विवाह; वेलि; हरण; और परिणय।

भारतीय भाषाओं में मंगलकाव्यों की लंबी परंपरा बंगला में मिलती है। ईसा की पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से मालाधर वसु का 'कृष्णविजय', जो 'कृष्णमंगल' या 'गोविंदमंगल' नाम से भी प्रसिद्ध है, बंगला भाषा का प्रथम मंगलकाव्य माना जाता है। पर बंगला के अधिकांश मंगलकाव्य व्रतकथाओं और चरितकाव्यों के रूप में आये हैं जबकि हिन्दी और राजस्थानी के मंगलकाव्यों में विवाह-वर्णन को ही प्रमुखता मिली है।

हिन्दी और राजस्थानी में मंगलकाव्यों का सर्जन १७ वीं शती से आरम्भ होता है। हिन्दी में नरहरि और नन्ददास के 'रुक्मिणी-मंगल' प्रथम मंगलकाव्य हैं। उसके बाद तुलसीदास की जानकी-मंगल और पार्वती-मंगल रचनाएँ आती हैं। राजस्थानी में भी अनेक मंगलकाव्यों की रचनाएँ हुईं। राजस्थानी में प्रमुखतः दो प्रकार के मंगलकाव्य देखे गये हैं—जैन और जैनेतर। जैनेतर लोकप्रिय मंगलकाव्यों में एक नाम प्रस्तुत पदम भगत रचित 'रुकमणी-मंगळ' का भी आता है। इसे 'किसनजी रो व्यांवलो' या 'हरजी रो व्यांवलो' भी कहते हैं।

कृष्ण और रुक्मिणी के विवाह से संबंधित राजस्थानी काव्यों की संख्या बहुत बड़ी है, पर महाकवि पृथ्वीराज राठोड़, जिन्होंने अपनी कलम के जादू से महाराणा प्रताप को मुगल सम्राट् अकबर की अधीनता स्वीकार करने से विरत किया था, ऐसी रचनाओं के आदि-प्रवर्तक माने जा सकते हैं। उनका 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' वेलिओ छन्द में रचा होने से प्रसिद्ध तो वेलि-संज्ञक काव्यों में ही हुआ, पर विषय-वस्तु की दृष्टि से उसे कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह संबंधी काव्यों का मुकुटमणि कहा जा सकता है। भाव और भाषा दोनों ही दृष्टियों से उक्त काव्य बेजोड़ ठहरता है। यहाँ पदम भगत का 'रुकमणी-मंगळ' हमारा प्रतिपाद्य है।

राजस्थान में इस काव्य ने लोककंठ पर बहुत बड़ा अधिकार कर रखा है। खेद है इसके रचयिता के बारे में, इसकी इतनी ख्याति होते हुए भी, कुछ भी ज्ञात नहीं

है। काव्य में एकाध स्थानों पर 'वैस पदम' अथवा 'पदमइयो तेली' शब्द आते हैं। अनुमान किया गया है कि पदम या तो जाति के तेली थे या तेल का व्यापार करनेवाले वैश्य।

राजस्थानी जनता इस काव्य को बड़ी रुचि से गाती और सुनती आयी है। आज भी इस व्यस्त जीवन में कभी-कभी, कहीं-कहीं लोग इसकी रसमाधुरी का आनन्द लेते दिखायी पड़ते हैं। जिस प्रकार श्रीमद्भागवत महापुराण के विधिपूर्वक वाचन-श्रवण का एक सप्ताह का कार्यक्रम आयोजित किया जाता है उसी प्रकार 'व्यांवले' का भी आयोजन होता है। इसके लिए पूरी मंडली होती है जिसमें एक प्रधान गायक होता है। मंडली के इतर लोगों में कोई ढोलक बजाता है कोई मंजीरे, कोई सारंगी बजाता है तो कोई करताल; ये लोग प्रमुख गायक के गाने में भी सहयोग देते हैं। कथा की समाप्ति पर, नित्य ही और विशेषत: अंतिम दिन, जनता अपनी श्रद्धा के अनुसार अन्न, वस्त्र और धन आदि का चढ़ावा चढ़ाती है तथा दूसरे दिन गायकों को भोजन कराया जाता है।

पदम भगत के 'रुकमणी-मंगळ' का रचनाकाल विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व का होना चाहिए। राजस्थानी के ख्यातिप्राप्त शोधविद्वान् श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रह में इसकी संवत् १६६९ की लिखी हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है जो इस ग्रंथ की उपलब्ध प्राचीनतम प्रति है। काव्य की और भी प्रतियाँ स्थान-स्थान पर हस्त-लिखित संग्रहों में मिलती हैं पर उनमें परस्पर बहुत विभेद है। परिमाण में भी बहुत अंतर है। बोलचाल की भाषा में होने के कारण इस काव्य की जनता में बहुत प्रसिद्धि हुई। उसने लोककाव्य का रूप धारण किया। वह मंडलियों द्वारा गाया जाने लगा। उसके लोक-प्रचलित रूप में परिवर्तन होने लगा। धीरे-धीरे वह बिखर गया। तब उत्साही संग्राहकों ने बिखरे हुओ काव्य का संग्रह करने का प्रयत्न किया। जिसको जितना अंश प्राप्त हुआ उसने उतना अंश संग्रह किया। इस प्रकार काव्य के छोटे-बड़े अनेक रूप हस्तलिखित प्रतियों में मिलते हैं। उत्साही संग्राहक श्री शिवकरण दरक और उनके पुत्र रामरतन दरक ने इसका संग्रह करके और त्रुटित अंश की पूर्ति करके इसको बहुत वर्ष पूर्व मुद्रित करवा दिया। इस मुद्रित रूप की साधारण जनता में बहुत प्रसिद्धि हुई।

प्रस्तुत काव्य एक लोककाव्य है। इसकी कथा तो शानदार है ही किन्तु इसकी मुख्य विशेषता है इसमें चित्रित राजस्थानी जीवन। इसमें राजस्थानी सामान्य जनता के जिस सरस और सरल जीवन का चित्रण हुआ है वह अनुपम है। मार्मिक स्थलों को तो इसमें सरल अभिव्यक्ति मिली ही है साथ ही राजस्थान की सांस्कृतिक परम्पराओं का चित्रांकन भी इसमें मिलता है। विवाह-सम्बन्धी सभी रीति-नीतियों का, विधिविधानों का, इसमें निदर्शन मिलता है।

राजस्थानी के इस सुप्रसिद्ध लोक-काव्य को हिन्दी-संसार के सम्मुख रखते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता है। काव्य का मूलपाठ मेरे विद्यागुरु श्रद्धेय पं० नरोत्तमदासजी स्वामी द्वारा संपादित प्रति से लिया गया है जिसका उन्होंने एक हस्तलिखित प्रति के आधार पर संपादन किया था। उनके पिता प्रसिद्ध कथावाचक पं० जयश्रीरामजी स्वामी अपनी मंडली के साथ इस 'रुकमणी-मंगळ' की कथा किया करते थे जिसमें अपने बाल्यकाल में वे भी संमिलित हुआ करते थे। 'वाणी सरोवर' के विद्वान् संपादक श्रीयुत नन्दकुमारजी अवस्थी के राजस्थानी-अनुराग ने प्रेरित किया कि 'वाणी-सरोवर' की नीति के अनुसार इस कृति को संपादित कर प्रकाशित किया जाय। पूज्य स्वामीजी ने अपनी संपादित प्रेसकापी सहर्ष मुझे इस काम के लिए प्रदान कर दी। उसी प्रति के मूलपाठ को अर्थसहित पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है। पाठ के अर्थ लिखने में जहाँ भी असुविधा अथवा संदिग्धता रही है वहाँ पूज्य स्वामीजी से यथेष्ट सहायता मिली है। ऐसे में, उनकी ही कृति के लिए उनके प्रति कितना आभार व्यक्त करूँ? सूत्रधार के बिना सूत्र का क्या प्रयोजन? ऐसे ही अनौपचारिक आभार-प्रदर्शन के दो पात्र और हैं—श्रद्धेय प्रोफ़ेसर गजानन नरसिंह साठे और श्री नन्दकुमार अवस्थी, जिन्होंने अपनी प्रेरणा से मुझे यह अनुवाद प्रस्तुत करने को बाध्य ही कर दिया। मैं हृदय की संपूर्ण श्रद्धा से इस त्रिमूर्ति को प्रणाम करता हुआ विज्ञ पाठकों के संमुख सहर्ष यह कृति प्रस्तुत कर रहा हूँ।

भ्रातृ-द्वितीया, २०३१ वि०, १९ नवंबर, १९७४
जस्सूसर दरवाज़े के भीतर, बीकानेर (राजस्थान) —सत्यनारायण स्वामी

* श्रीगणेशाय नमः *

रुकमणी-मंगळ

१—वंदना

गणेश-वंदना

दोहा— गवरीनंदन वीनवां सुरपत सुरत सुजाण
किसन तणो रे विवाहलो रिद्ध सिद्ध परमाण

मारू— रिद्ध सिद्ध परवाण भणीजै किसन तणो रे विवाहो
सूंडाडंबर कर धर फरसी लाला लोचन वारो

थूहळ गात ठमक्कै चालै सिर सोहंदो भारो
गवरीनंदन विघन-विहंडन दुख-खंडन सुख-सारो

दांतूसळ मुख दिनकर झिलकै उर पर वासग-हारो
पहली वेद-पुराण-अगोचर वरणीजै जस थारो

मूसां-वाहण कर-धर-फरसी पहली पूजा तेरी
पदम भणै प्रणवै पाय लागूं आसा पुरवो मेरी

सरस्वती-वंदना

दोहा— ब्रह्मसुता दे वीनवां सुरसुति हंसारूढ
वाणी माता वेग दयो मो मति माया-मूढ

मारू— वाणी माता वेग करौ नै मुख मंडण व्याकरणी
अेकै कर धर वीणा सोहै दूजै पुस्तक धरणी

तीजै अमी-कमंडळ झिलकै चौथै सोहै थाळो
आदि मध्य अवसान भवानी सेवक नै प्रतिपाळो

छंद पिंगळा भेव न जाणूं ना जाणूं व्याकरणी
केवळ भगति करूं केसव की कळि-मल मिथ्या हरणी

कासमीर मुख मंडण देवी दुख-हरणी सुख-दाता
पदम भणै प्रणवै पाय लागूं वर दयो जळदी माता

* श्रीगणेशाय नमः *

रुक्मिणी-मंगल

१—वंदना

गणेश-वंदना

हम गौरी के पुत्र की विनती करते हैं जो देवों के पति और स्मृति और ज्ञान के निधान हैं। हम श्रीकृष्ण के विवाह की कथा का गान करने जा रहे हैं। ऋद्धि और सिद्धि इसमें प्रमाण हैं।

ऋद्धि और सिद्धि इसमें प्रमाण हैं। यह श्रीकृष्ण के विवाह की कथा कही जा रही है। गणेश आडंबर (विशाल और सुन्दर) सूंडवाले हैं, उन्होंने हाथ में परशु धारण कर रखा है; उनकी आँखें रतनारी हैं। उनका शरीर स्थूल है। वे ठुमककर चलते हैं। उनका सिर विशाल और शोभायमान है। वे गिरिजा के पुत्र विघ्नों का नाश करते हैं, संकटों का नाश करते हैं और सुखों के सार हैं। उनके मुख में शल्य के समान दंत सूरज की तरह जगमगाता है, हृदय पर वासुकी नाग का हार है। हे गणेशजी! सर्वप्रथम आपका वेद और पुराणों के लिए भी अगम्य यश गाया जाता है। हे मूषकवाहन! हाथ में परशु धारण करनेवाले गणेशजी! सबसे पहले आपकी पूजा होती है। पदम भगत कहता है कि मैं झुककर आपके पैरों लगता हूँ। आप मेरी आशा पूरी कीजिये।

सरस्वती-वंदना

ब्रह्मा की पुत्री देवी हंसासिनी सरस्वती की विनती करते हैं। हे माता! मुझे शीघ्रता से वाणी (बोलने की = काव्य करने की शक्ति) दीजिये, मेरी बुद्धि माया से मूढ़ हो रही है।

हे माता! शीघ्र वाणी दो और मुख को शोभित करनेवाला व्याकरण का ज्ञान दो। आपके एक हाथ में वीणा सुशोभित हो रही है और दूसरे में (आप) पुस्तक धारण करती हैं। तीसरे हाथ में अमृत का कमंडलु जगमगा रहा है और चौथे में मांगलिक थाल शोभायमान है। हे इस जगत् का आदि, मध्य और अन्त करनेवाली भवानी! अपने इस सेवक की पालना करो। मैं न तो छंद-पिंगल का रहस्य जानता हूँ और न व्याकरण ही जानता हूँ। मैं तो केवल कलियुग के मलों और मिथ्या का नाश करनेवाली केशव की भक्ति करता हूँ। हे कश्मीर की निवासिनी मुख को शोभित करनेवाली देवी! हे दुख का नाश करनेवाली और सुख को देनेवाली! पदम भगत कहता है कि मैं झुककर (तुम्हारे) पैरों पड़ता हूँ। मुझे वर दो।

देवी-वंदना

दोहा— जै माता ज्वाळामुखी जै-जै जगत करी
सुभ दे अपणे वचन सें तुम सें काज सरी

पहलै ध्यायी पंडवां अरजन छोटै भींव
नगरकोट नागर रच्या उंडी दिवायी नींव

तुम गुण विद्या सरसुती जाचण नै सब कोइ
यो वर दीजै पदम नै आणंद मंगळ होइ

देव-वंदना

दोहा— सुर तेतीसूं वीनवां ब्रह्मा विष्णु महेस
जटाजूट गंगा वहै कंठ विराजै सेस

मारू— ब्रह्मा च्यार वेद रो नायक भूलां नै समझावै
चित दै सुणै कृष्ण रो मंगळ भुगत मुगत फळ पावै

मंगळ सुण्यां महासुख उपजै मन इंछाफळ पावै
काया कस्ट कदे नहिं व्यापै जन पदमइयो गावै

ब्रह्मा-वंदना

दोहा— ब्रह्माजी कूं सिवरियै जळ थळ कियो विचार
च्यार वेद चवदा भुवन सब मिल सिरजणहार

मारू— च्यार वेद अर चवदा भुवन में सब मिल सिरजणहारो
नारद इंदर सनक सनंदन संकर सेस पियारो

चवदा इंद्र राज सब करिहै दिन ब्रह्मा को सारो
व्रध्ध उमर ब्रह्मा वण बैठो पहर संकर को न्यारो

ब्रह्मा भवन तीन रो नायक अग्या सब वरतावै
हिरदै धर कै सुणै जौ मंगळ भगति-मुगति फळ पावै

मंगळ सुण्यां भगति हिय आवै प्रभु को दास कहावै
काया न्रिमळ सहज होय जावै पदमइयो जस गावै

Regd. No. R.N. 19347-70 Govt. of India

भुवन वाणी ट्रस्ट,

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८ चौपटियाँ रोड, लखनऊ–३

जो कार्य किये जा रहे हैं (सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण):—

१—(तमिळ) तिरुक्कुरळ्   २—(तमिळ) कम्ब रामायण
३—(तेलुगु) रंगनाथ रामायण ४—(कन्नड़) पम्प रामायण—जैनसाहित्य
५—(असमिया) माधवकंदली रामायण ६—(कश्मीरी) रामावतार चरित
७—(नेपाली) रामायण भानुभक्त कृत ८—(गुजराती) गिरधर रामायण
९—(मलयाळम) तुञ्चत्त् एळुत्तच्छन् कृत महाभारत
१०—(ओड़िआ) वैदेहीश-विळास—उपेन्द्र भञ्ज ११—(सिंधी) स्वामी के सलोक
१२—(मराठी) श्रीराम-विजय—श्रीधर स्वामी कृत मूल एवं अनुवाद
१३—(गुरमुखी) श्रीगुरुग्रंथ साहब १४—(उर्दू) गुज़श्त: लखनऊ—मौ० शरर
१५—(फ़ारसी) दाराशिकोह कृत ५० उपनिषदों की फ़ारसी-व्याख्या का धारावाहिक हिन्दी अनुवाद
१६—(राजस्थानी) रुक्मिणीमंगल—पदम भगत कृत
१७—(अ़रबी) रियाज़ुस्सालिहीन (हृदीस)—(ज़ादे सफ़र)
१८—रामचरितमानस (तुलसी)—संस्कृत पद्यानुवाद सहित, तथा ओड़िया लिपि में लिप्यन्तरण एवं ओड़िया गद्य-पद्यानुवाद
१९—इनके अतिरिक्त वेद, संस्कृत, पाली-प्राकृत, पारसी (ज़रथूस्त्र-गाथा) बाइबिल आदि के अनेक उद्धरण।
२०—(वाणी सरोवर)—उपर्युक्त अनुपम ग्रंथों का सानुवाद धारावाहिक देवनागरी लिप्यन्तरण का त्रैमासिक पत्र—वार्षिक १०·००

यह ग्रन्थ सम्पूर्ण हो चुके हैं (सानुवाद देवनागरी लिप्यन्तरण):—

२१—(बंगला) कृत्तिवास रामायण लंका काण्ड   मूल्य १२·००
२२—(उर्दू) श्री 'रुस्वा' कृत शरीफ़ज़ाद: (आर्यपुत्र)   ,, ५·००
२३—(गुरमुखी) जपुजी तथा सुखमनी साहब—गुरमुखी मूल पाठ तथा गीता के यशस्वी अनुवादक ख़ा०ब० ख़्वाज: दिलमुहम्मद कृत उर्दू पद्यानुवाद—दोनो देवनागरी लिपि में—मू० ५·००
२४—सिर्रे अक्बर (दाराशिकोह कृत ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय, श्वेताश्वतर) की फ़ारसीव्याख्या हिन्दी में—मू० १५·००
२५—(तमिळ) तिरुक्कुरळ् (धर्म खण्ड) —देवनागरी लिपि में ,, ५·००
२६—(मलयाळम्) महाभारत—पौलोम-आस्तीक पर्व   ,, ५·००
२७—ज़ादे सफ़र (इस्लामी हृदीस)   ,, १२·००

ट्रस्ट के अतिरिक्त, सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण के अन्य कार्य, जो अन्यत्र हो चुके हैं:—

१—(अ़रबी) क़ुर्आन (मूल आयतें अरबी व देवनागरी लिपि में, अनुवाद, टिप्पणी सहित)—इस्लामी धर्माचार्यों द्वारा प्रतिपादित—४०)
२—(बंगला) कृत्तिवास रामायण—(पाँच काण्ड) बंगला मूल देवनागरी में लिप्यन्तरित, अवधी पद्यानुवाद—मू० १६·००

वाणी प्रेस, लखनऊ-३ में मुद्रित एवं भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ–३ द्वारा प्रकाशित।